इकाई-1 : हिन्दी साहित्य का इतिहास

संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 चार काल
1.3 आदिकाल (वीर गाथा काल)
1.4 पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल)
1.5 रीतिकाल (उत्तर मध्यकाल)
1.6 आधुनिक काल (गद्य काल)
1.7 सारांश
1.8 अभ्यास प्रश्नावली

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.0 प्रस्तावना

काव्य शब्द का प्रयोग अति प्राचीन माना गया है। वाल्मीकि और व्यास जैसे कवियों की रचनाओं को काव्य की संज्ञा दी है। इसके अतिरिक्त प्राचीन राजनीतिज्ञों और नीतिकारों की रचनाओं, वैद्यक और ज्योतिष आदि के ग्रंथों को भी काव्य माना गया है। प्राचीनकाल में छन्दबद्धता को काव्य का आधार मान लिया गया था, कालान्तर में छन्द बद्ध रूप में रचने की प्रवृत्ति समाप्त हो गई और आह्लादक रचना को ही काव्य कहा जाने लगा। अत: ऐसी छन्दबद्ध रचना, जो हृदय आह्लादकारिणी हो और पाठक को भावानन्द प्रदान करे, काव्य कही जा सकती है। इस अर्थ में भावानन्द प्रदान करने वाली न केवल पद्यमयी अपितु गद्यमय रचनाएँ भी काव्य कहलाएँगी। यही काव्य का व्यापक अर्थ है। वैसे सामान्य अर्थों में केवल कविताएँ ही काव्य कही जाती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य में ऐसे भावों को महत्त्व दिया है, जो हमें स्वार्थ-भावों से ऊँचा उठाकर मानवता की उच्चभूमि में ले जाते हैं। काव्य का सम्बंध उदात्त भावों से है, जो रस रूप भी होते हैं। साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि ''काव्य समर्थ भाषाशैली में उदात्त या स्पृहणीय भावों की अभिव्यक्ति है। कविता हमारी रागात्मक वृत्ति का निखार या परिष्कार करती है, उसका मानव जीवन से अटूट सम्बंध रहता है।''

1.1 उद्देश्य

यहाँ हम हिन्दी साहित्य के इतिहास के बारे में जानकारी कर सकेंगे।

1.2 चार काल

जीवन परिवर्तनशील है और काव्य का इससे अटूट सम्बंध होने के कारण काव्य के स्वरूप भी तदनुरूप परिवर्तनशील रहते हैं। इन परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए हिन्दी काव्य को मुख्यतया चार कालों में विभाजित किया गया है — 1. वीरगाथा काल, 2. भक्तिकाल, 3. रीतिकाल और 4. आधुनिक काल। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने पूर्ववर्ती मिश्र बन्धुओं के काल-विभाजन को ध्यान में रखते हुए जो विभाजन प्रस्तुत किया है उसे ही विद्वान स्वीकार करते आये हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी काव्य-काल को इस प्रकार विभाजित किया है —

आदिकाल (वीरगाथा काल) — सं. 1050 से 1375 तक (सन् 993 से 1318 तक)
पूर्वमध्यकाल (भक्तिकाल) — सं. 1375 से 1700 तक (सन् 1318 से 1643 तक)
उत्तर मध्यकाल (रीति काल) — सं. 1700 से 1900 तक (सन् 1643 से 1843 तक)
आधुनिक काल (गद्य काल) — सं. 1900 से आज तक

1.3 आदिकाल (वीरगाथा काल)

आदिकाल को वीरगाथा काल के नाम से भी जाना गया है, यद्यपि अनेक विद्वानों ने इस काल को कई नामों से सम्बोधित किया है, यथा-सिद्ध सामन्त युग, चारण काल, आधार काल, नवजागरण काल, संक्रमण काल और संयोजन काल आदि। हिन्दी काव्य के आरंभिक काल में काव्य की विविध प्रवृत्तियों का उदय हुआ, इस दृष्टि से 'आदिकाल' कहना समाचीन है। यह नाम आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा दिया गया है। इस काल के राजनीतिक वातावरण तथा काव्य में वीर भावना की प्रधानता के आधार पर इस काल को वीरगाथा काल कह दिया गया है।

ऐतिहासिक दृष्टि से आदिकाल में राजनैतिक अराजकता और अव्यवस्था व्याप्त थी। सम्राट हर्षवर्धन के बाद उनके साम्राज्य का पतन हो गया था। भारत देश अधिकाधिक विघटित होने लगा। राजाओं में आपसी द्वेष के कारण युद्ध की स्थिति बन पड़ी थी। राष्ट्रीयता और देशभक्ति का क्षेत्र सीमित था। इस काल की धार्मिक स्थिति ठीक नहीं थी। धर्म के नाम पर समाज में अनाचार और आडम्बर का बोल-बाला था। वैदिक और पौराणिक धर्म ह्रासोन्मुख थे। बौद्ध और जैन धर्म तंत्रों और सिद्धियों के जाल में उलझ गये थे। उनकी अनेक शाखाएँ और प्रशाखाएँ हो गई थी। उस समय समाज में सिद्ध, नाथ, जैन, शैव, शाक्त, वैष्णव और स्मार्त आदि अनेक धार्मिक सम्प्रदाय प्रचलित थे। राजनैतिक और धार्मिक दुर्दशा के कारण उस काल का सामाजिक जीवन उन्नत नहीं हो पा रहा था। राजनीति पर इस्लाम का आधिपत्य हो चला था। इन परिस्थितियों में भी देश में साहित्य का सृजन हुआ था। दर्शन, ज्योतिष, कर्मकाण्ड आदि विषयों पर नवीन ग्रंथ लिखे गए। श्री हर्ष, राजाभोज, जयदेव, कुन्तक, क्षेमेन्द्र, महिमभट्ट जैसे विद्वानों ने ग्रंथों की रचनाएँ की थीं किंतु हिन्दी साहित्य ने इनसे विशेष प्रभाव ग्रहण नहीं किया। साहित्य में धार्मिकता और वीरता की भावना प्रधान रही। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा कि ''इस काल में वीरगाथात्मक ग्रंथों की प्रचुरता है, अत: जैन साहित्य को धार्मिकता मानकर साहित्य कक्ष से बहिष्कृत करना पड़ेगा।''

जहाँ तक वीरगाथा काल के काव्य की प्रवृत्तियों का प्रश्न है, वे उस समय के चारणों और भाटों द्वारा रचित काव्य के आधार पर स्पष्ट की जा सकती हैं। इस काव्य के काव्यग्रंथ प्राय: 'रासो' कहलाते हैं। रासो काव्य, प्रबंध और मुक्तक काव्य के रूप में लिखे गये। पृथ्वीराज रासो और बीसलदेव रासो प्रबन्ध काव्य हैं। खुमान रासो, परमाल रासो, हम्मीर रासो आदि के साथ भी 'रासो' शब्द जुड़ा है।

वीरगाथा काल के काव्य में मुख्यतया उस समय के राजाओं, सामन्तों आदि से सम्बंधित वर्णन किया गया। इस काव्य में जन-जीवन प्राय: अछूता रहा। इन काव्यों में दरबारी कवियों द्वारा अपने-अपने आश्रयदाता के मनोरंजन के लिए उसकी वीरता आदि की अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा करने के लिए रचनाएँ की जाती थीं। इस आधार पर यह काव्य 'स्वामिन: सुखाय' काव्य है।

बारह बरस लै कूकर जीये, औ तेरह लौ जिये सियार।
बरस अठारह छत्री जीये, आगे जीवन को धिक्कार॥

यह काव्य सामन्ती जीवन का चित्रण करता है। कवियों का ध्यान राजदरबारों तथा युद्धों तक ही सीमित रहा। देशद्रोही कहे जाने वाले जयचन्द जैसे राजाओं की प्रशंसा में भी उनके आश्रय में रहने वाले कवियों ने प्रशंसापरक काव्यों की रचना की।

इस काल की रचनाओं में प्रकृति का भी चित्रण है। इनमें प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन दोनों ही रूप मिलते हैं। इन काव्यों में जिन युद्धों का वर्णन है उनमें काव्य के रचयिताओं ने प्राय: भाग भी लिया था, इसी कारण उनका युद्ध वर्णन इतना सजीव बन पड़ा है मानो वह युद्ध पाठक के सामने ही हो रहा है। युद्धों के मूल में प्राय: नारी रही है। **''जिहि की बिटिया सुन्दर देखी, तेहि घर जाहि धरे हथियार''** यह उक्ति इस काल के लिए पूर्णत: चरितार्थ रही है। वैसे भी यह काल युद्धों का काल रहा था। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि ''लड़ने वाली जातियों के लिए सचमुच चैन से रहना असंभव हो गया था, क्योंकि उत्तर, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम सब ओर से आक्रमण की संभावना थी।''

इस काल का काव्य ''पिंगल'' भाषा में रचित है। उस समय साहित्यिक राजस्थानी भाषा का नाम ''डिंगल'' था। यह भाषा वीर रस के वर्णन के लिए बहुत ही उपयुक्त रही है। इसके अतिरिक्त इस काल की रचनाओं में पिंगल नाम से ब्रज, अरबी, फारसी, तुर्की भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

काव्य में छन्दों की विविधता के दर्शन होते हैं। छन्दों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। इस काल के काव्य में दोहा, तोमर, तारंक, तोरक, गाहा या गाथा, आर्या, रोला, कुण्डलियाँ, उल्लाला, पद्धति आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। छंदों के प्रयोग के सम्बंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि ''रासो के छन्द जब बदलते हैं तो श्रोता के चित्त में प्रसंगानुकूल नवीन कम्पन्न उत्पन्न करते हैं।''

वीरगाथा काल में कई प्रसिद्ध कवि हुए और उनकी रचनाएँ पर्याप्त प्रसिद्ध हुईं। इस काल के प्रमुख कवियों में चन्दवरदाई, दलपतिविजय, नरपतिनाल्ह, जगनिक, श्रीधर, कवि नल्लसिंह का नाम लिया जाता है। इनके अतिरिक्त अमीर खुसरो, शालिभद्रसूरी, कवि आसगु, स्वयंभू, विद्यापति, रामसिंह, कवि धनपाल, अब्दुर्रहमान आदि कवि भी महत्त्वपूर्ण रहे हैं। इस काल की मुख्य काव्य कृतियों में पृथ्वीराज रासो, खुमान रासो, बीसलदेव रासो, परमाल रासो, हम्मीर रासो, रणमल्ल छन्द, विजयपाल रासो, विद्यापति की पदावली, कीर्तिलता, कीर्तिपताका, संदेश रासक, पउम चरिउ, परमात्मा प्रकाश और बौद्धगान आदि प्रमुख हैं।

1.4 पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल)

भक्तिकाल के आते-आते भारत की परिस्थितियों में भी परिवर्तन आ गया। हिन्दू राजाओं की शक्ति क्षीण हो गई थी और मुस्लिम सत्ता का प्रसार होने लगा, ऐसी स्थिति में सभी हिन्दुओं में निराशा की भावना घर करने लगी थी। उधर दक्षिण में आलवार सन्तों ने भक्ति का सूत्रपात कर दिया था। इसके बाद कुछ आचार्यों ने इस कार्य को आगे बढ़ाया। इन आचार्यों में रामानुजाचार्य प्रमुख थे। इन्होंने दक्षिण से अपनी भक्तिधारा को उत्तर में फैलाया। यह भक्तिधारा निराश हिन्दुओं के मन का सहारा बनी। इस भक्तिधारा के प्रवाह में वल्लभाचार्य, मध्व, निम्बार्क, चैतन्य जैसे संतों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्य जैसे संतों ने राम और कृष्ण की सगुण भक्ति का प्रचार किया तथा सिद्धों व नाथों ने कर्मकाण्ड के आडम्बरों का विरोध कर निराकार ब्रहम की उपासना को महत्त्व दिया।

वीरगाथा काल के भी पहले से विदेशी मुसलमानों के आक्रमण का जो दौर सातवीं शती से प्रारम्भ हुआ था वह भक्तिकाल में भी जारी रहा। तुर्की, पठानों और मुगलों ने अनेक आक्रमण किये और मुसलमानों ने अपने साम्राज्य स्थापित किये। जो कुछ हिन्दू राजाओं की रियासतें थीं वे सब मुगलों की दया पर निर्भर थीं। साहित्यकारों ने राजनीतिक निराशा को अपने साहित्य में झलकने नहीं दिया। सामाजिक परिस्थितियाँ भी बदल रही थी। समाज में हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों का आदान-प्रदान होने लगा था। समाज में अनेक प्रकार की कुरीतियाँ व्याप्त थीं, यथा – आर्थिक विषमता, जातिभेद, सतिप्रथा, बालविवाह, बलिप्रथा और पर्दाप्रथा आदि। उस समय धर्म के क्षेत्र में एक संघर्ष सा चल रहा था। हिन्दू लोग राजनैतिक और सामाजिक दृष्टि से अपना महत्त्व खोकर भी धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में अपनी पराजय स्वीकार करना नहीं चाहते थे। पहले की तरह इस काल में भी हिन्दू लोग अनेक धार्मिक समन्वय का भी प्रयास कर रहे थे, जिनकी झलक भक्तिकालीन साहित्य में देखी जा सकती है। धर्म के क्षेत्र में संत और भक्त दो मत थे। धर्म का प्रचार-प्रसार जन भाषा में होने लगा था। सूफ़ी और संतों ने भी धार्मिक सहिष्णुता का रूप अपनाया जिससे भावात्मक एकता का मार्ग प्रशस्त हुआ। समन्वयवादी दृष्टिकोण इस युग की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है।

जिस साहित्य को हम भक्तिकालीन साहित्य कहते हैं, वह सम्पूर्ण एक जैसा नहीं है। साधना पद्धतियों की विभिन्नता के फलस्वरूप वह साहित्य दो प्रकार का है – 1. निर्गुण भक्ति काव्य और 2. सगुण भक्ति काव्य।

निर्गुण भक्ति काव्य धारा के दो भाग हैं – 1. संतमार्गी या ज्ञानमार्गी काव्य और 2. प्रेममार्गी या सूफ़ी काव्य। इन दोनों काव्यधारा के कवियों ने माना कि ईश्वर एक है और वह निराकार है। उसे ज्ञान और प्रेम के माध्यम से ही अपने अन्तर में अनुभव किया जा सकता है। ज्ञानमार्गी संतों ने प्रेम को अधिक महत्त्व दिया है परन्तु ज्ञान को वे सर्वोपरि महत्त्व देते हैं। प्रेम मार्गी संतों ने ज्ञान का महत्त्व स्वीकार करते हुए भी प्रेम के सहारे ईश्वर प्राप्ति की बात कही है।

भक्तिकाल में सगुण भक्तिकाव्य के दो रूप हैं। इनमें से एक रामभक्ति और दूसरा कृष्णभक्ति शाखा। दोनों के ही कवि यह मानते हैं कि जब निराकार ब्रह्म पृथ्वी पर अत्याचार, अधर्म के बढ़ने पर शरीर धारण कर अवतरित होता है, तब उसका रूप सगुण हो जाता है। इन कवियों ने ब्रह्म को लीलाएँ करते हुए दिखाया है। कृष्ण भक्त कवियों ने अपने काव्य में माधुर्यभाव का वर्णन किया है और रामभक्त कवियों ने मर्यादा का। निर्गुण-सगुण के उपासक इन सभी कवियों के काव्य में कुछ समान विशेषताएँ मिलती हैं। भक्तिकालीन काव्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

में एकेश्वरवाद, ज्ञान, प्रेम की महत्ता, गुरु की महिमा, नाम की महत्ता, आडम्बरों का विरोध, सत्संगति की भावना, अहंकार का विरोध और माया का अस्तित्व जैसी विशेषताएँ सामान्य रूप से देखने को मिलती है।

ज्ञानमार्गी और निराकार के उपासक कवियों का काव्य संत-काव्य कहलाता है। इस काव्य में ईश्वर प्राप्ति के लिए ज्ञान को सर्वाधिक महत्त्व दिया है। उन्होंने आत्मदर्शन को ब्रह्म के साक्षात्कार का मूल-प्रेरक तत्त्व माना है। इन कवियों ने एकेश्वरवाद का प्रचार किया और ईश्वर के नाम पर विविध रूपों की कल्पना करने का विरोध किया। इनके काव्य पर हठयोग, वेदान्त, सूफ़ी, प्रेमभाव और अहिंसा की भावना का प्रभाव है। इन काव्यों की विषय-वस्तु मुख्यतया आध्यात्मिकता है। इन कवियों ने 'आंखों देखी' अथवा अनुभव की बातें लिखीं। ईश्वर को प्राप्त करने, उसका अनुभव करने के लिए उन्होंने गुरुकृपा और ज्ञान की आवश्यकता बताई है। ये संत ब्रह्म और जीव में माया के कारण ही भेद मानते हैं। माया का आवरण हटने पर जीव और ब्रह्म एक जैसे प्रतीत होने लगते हैं। उस ब्रह्म के प्रति ये कवि दाम्पत्य भाव या पूर्ण प्रेम को आवश्यक मानते हैं। माया इनकी दृष्टि में जीव को भ्रम में डालने वाली है। इन संत कवियों के अनुसार संसार मिथ्या है, माया-विभ्रम है। जीव माया के वशीभूत होकर संसार को सत्य मान बैठता है। इस कारण संसार में आसक्ति उचित नहीं है। संत मत सब प्रकार के बन्धनों तथा भेदभावों से ऊपर उठने की प्रेरणा देता है। इन कवियों ने वैयक्तिक साधना और लोक साधना – दोनों को महत्त्व दिया है। इनके द्वारा वर्णित ज्ञान, उच्च जानकारी और योग-साधना का प्रतीक है।

संत कवियों ने वैष्णवों की भाँति भक्ति तथा योग-साधना दोनों का महत्त्व बताया है। इनके अनुसार भक्ति निश्छल और निष्काम भाव से की जानी चाहिए। इसके लिए मन की निर्मलता, नाम स्मरण, गुणगान, समर्पण का दाम्पत्य भाव आवश्यक है। ये कवि अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे। इनके काव्य में प्राप्त भाव तत्त्व ही इनकी अभिव्यक्तियों को काव्य की संज्ञा दिलाने वाला है। उन्होंने अवतारवाद और जाति-पाति की भावना का विरोध किया। इस दृष्टि से ये समाज में भाईचारा, समानता व व्यवस्था लाना चाहते थे। ईश्वर के प्रति प्रेम बढ़ाना वे खांडे की धार पर चलना मानते थे। इस पथ पर चलने के लिए व्यक्ति को अपना जीवन तक न्यौछावर करने के लिए तैयार रहना पड़ता था। **''सीस उतारे भुई धरे, तब पहुँचे घर माहिं।''** इस काव्य में वियोग शृंगार की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है –

आइ न सको तुज्झ पै, सकों न तुज्झ बुलाई।
जियरा यों ही लेहुगे, विरह तपाइ तपाइ॥

नारी का विरोध करते हुए भी ये कवि गृहस्थ धर्म के पोषक थे। इनकी यह मान्यता रही कि संसार में रहकर भी मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। उन्होंने लोक संग्रह की भावना की अच्छी अभिव्यक्ति की है, जैसे गुरु नानक ने लिखा है – **''किरत करो अते वण्ड के छको''** अर्थात् कर्म करो और बाँट के खाओ। इन कवियों ने दोहों, चौपाइयों और साखियों की रचना की है जो संध्या भाषा में है। इनकी भाषा में ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी, पूर्वी हिन्दी, फारसी, अरबी आदि भाषाओं के शब्दों का मेल हुआ है।

संत कवियों की भाँति प्रेममार्गी या सूफ़ी कवि भी निराकार के उपासक थे। ये कवि परमात्मा को पत्नी और आत्मा को पति मानकर अपने अटूट प्रेम की व्यंजना करते हैं।

प्रेममार्गी कवियों ने हिन्दुओं की परम्परागत प्रेमकथा को आधार बनाकर प्रबंध काव्य रचे हैं। इन्होंने समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाकर हिन्दू-मुसलमानों को निकट लाने का प्रयास किया है। प्रेम मार्गी काव्य पर आर्यों के अद्वैतवाद, विशिष्टता द्वैतवाद एवं हठयोगियों की अपनी हठ साधना का प्रभाव पड़ा है।

सूफ़ी कवियों के काव्य की भाषा अवधी है किन्तु तुलसी की अवधी भाषा के स्तर की नहीं है। भाषा पर क्षेत्रीय बोलियों का भी प्रभाव है। उनके प्रेम काव्यों में मुख्यतया दोहा, चौपाई वाली मसनवी शैली अपनाई गई है किंतु इनके अतिरिक्त सोरठा, बरवै, सवैया जैसे छन्द भी आये हैं। मुक्तक काव्य में फारसी की बैत-प्रणाली भी देखी जा सकती है। इन कवियों में अन्योक्ति, समासोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग मिलता है।

वैदिक रूप की प्रतिक्रिया के रूप में भारत में वैष्णव रूप का उदय हुआ। यही भावना आगे चलकर अवतारवाद के रूप में प्रचारित हुई। पुराणों में विष्णु का ब्रह्ममय रूप प्रतिष्ठित हुआ। राम और कृष्ण इसी विष्णु के अवतार माने गये। वैष्णव उपासना की यह धारणा दक्षिण से उत्तर भारत में आई, इसी में रामभक्ति शाखा राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप की उपासना को लेकर अलग से विकसित हुई।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रामभक्ति का प्रवर्त्तन रामानन्द के प्रयत्नों से ग्यारहवीं शती के बाद हुआ। रामानन्द रामानुजाचार्य की परम्परा के ही थे। रामभक्ति शाखा का मूल-स्त्रोत वाल्मीकि रामायण और राम से प्रचलित मान्यताएँ हैं। तुलसीदास रामभक्ति शाखा के उसी प्रकार प्रतिनिधि कवि हैं जिस प्रकार ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी शाखाओं के प्रतिनिधि कवि क्रमश: कबीर और जायसी थे। तुलसीदास ने राम के मर्यादापुरुषोत्तम रूप का चित्रण दास्यभाव से किया है। डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने लिखा है कि ''हिन्दी की रामभक्ति धारा में अनेक कवि हुए हैं किन्तु रामभक्ति धारा का साहित्यिक महत्त्व अकेले तुलसीदास के कारण ही है।''

रामभक्त काव्य की अपनी प्रवृत्तियाँ हैं। राम-भक्त कवि सगुणोपासक कवि की भाँति यह नहीं मानते हैं कि **''दशरथसुत तिहु लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।''** उनके लिए राम दशरथ सुत हैं, अवतारी पुरुष हैं। वे ब्रह्म के प्रतीक नहीं बल्कि विष्णु के अवतार हैं जो मानव रूप में अवतरित होकर अत्याचारियों का विनाश करते हैं और मानव जीवन की भंग मर्यादाओं को पुन: स्थापित करते हैं। राम की उपासना करके मानव सुख-शांति और मुक्ति प्राप्त कर सकता है। राम शील, शक्ति और सौन्दर्य के अवतार हैं।

रामभक्त कवियों ने ज्ञान, कर्म का अलग ही अस्तित्व स्वीकार कर भक्ति को सर्वश्रेष्ठ बताया है। उनका मानना है कि भक्ति अन्य साधनों की तुलना में सरल है और मुक्ति प्रदान करने में सक्षम है। इन कवियों की भक्ति दास्यभाव की है। परन्तु भक्ति के अन्य अंगों का भी इनकी दृष्टि में महत्त्व है। ये जीव को भी सत्य और नित्य मानते हैं।

राम काव्यधारा में सभी प्रकार के चरित्र हैं — देवता, मनुष्य, राक्षस, पशु, श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ। चरित्र-चित्रण एक विशेष उद्देश्य और विशेष आदर्श को लेकर किया गया है। कवियों ने असद् को सद् की ओर उन्मुख किया है। साथ ही व्यक्तिगत, पारिवारिक व सामाजिक जीवन पर सुन्दर विचार व्यक्त किये हैं।

रामभक्ति काव्य की भाषा मुख्यतया अवधी है जिसमें संस्कृत, अरबी, फारसी, ब्रज, बुन्देलखण्डी, पंजाबी आदि भाषाओं के शब्द भी आ गये हैं। कहीं-कहीं संस्कृत और ब्रज भाषा का भी स्वतंत्र प्रयोग किया गया है। तुलसी ने रामचरितमानस में मंगलाचरण तथा स्तुतियाँ संस्कृत में लिखीं हैं तो विनय-पत्रिका, कवितावली आदि की रचना ब्रज भाषा में सफलता पूर्वक की है। इस काव्य में सादृश्य मूलक उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों के साथ-साथ अन्य अलंकारों का भी समावेश हुआ है।

सगुण भक्तिधारा की दूसरी शाखा कृष्णभक्ति काव्यधारा है। महाभारत काल में कृष्ण की पूजा होने लगी। ईसा पूर्व चौथी शती में मथुरा के आस-पास कृष्ण की पूजा का प्रचलन था। चौथी-पांचवी शताब्दी में भागवत धर्म को राजधर्म स्वीकार कर लिया गया। संस्कृत साहित्य में कृष्ण भक्ति का स्वरूप पहले ही विकसित हो चुका था। गीतगोविन्द में जयदेव ने कृष्ण भक्ति का भी निरूपण किया है। श्रीमद्भागवत् पुराण के प्रभाव स्वरूप कृष्णभक्ति को पर्याप्त बल मिला।

आठवीं-नवमी शताब्दी में कुमारिल भट्ट तथा शंकराचार्य के मायावादी आन्दोलन की प्रतिक्रिया के रूप में भक्ति आन्दोलन में तीव्रता आई। निम्बार्क, वल्लभ, राधावल्लभ और चैतन्य के सम्प्रदायों ने कृष्णभक्ति आन्दोलन को विशिष्ट बल प्रदान किया। इनमें कृष्ण काव्य पर बल्लभ सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव रहा। आगे सूरदास कृष्ण भक्ति के हिन्दी काव्य के प्रतिनिधि कवि हुए। बल्लभाचार्य के अनुसार ब्रह्म ही सब कुछ है। जीव-जगत् उसी के रूप हैं। वह ब्रह्म की तरह-तरह से लीलाएँ किया करता है। कृष्ण चिरन्तन ब्रह्म ही है, मानवीय गुण तो उस पर आरोपित किये गये हैं।

कृष्ण काव्य में भक्ति भावना तथा सौन्दर्योपासना की प्रधानता है। कृष्ण काव्य का उपजीव भागवत पुराण है। भागवत में कृष्ण का ब्रह्मत्व और उनके चरित्र का आलौकिकत्व बना रहता है। हिन्दी के कृष्ण काव्य में भक्ति रस की प्रधानता है, जिसकी पीठिका शृंगार रस की है। सूरदास ने अपने काव्य में वात्सल्य व शृंगार रस का जो वर्णन किया है वह अनुपम है। सूरदास की भक्ति साख्य भाव की है। मीरा ने दाम्पत्य भाव की भक्ति की है। कृष्ण भक्त कवियों की राधा माधुर्य भाव की उच्चतम प्रतीक है। कृष्ण परमात्मा है और गोपियाँ जीवात्मा।

कृष्ण काव्य की भाषा ब्रजभाषा है। इस काव्य की भाषा में ब्रज भाषा का पूर्ण लालित्य और वैभव व्यक्त हुआ है। यह भाषा व्याकरण के नियमों का उल्लंघन भले ही करती हो, किंतु भावों की सम्यक् अभिव्यक्ति करने में यह पूर्णतया सक्षम है। गेय पदों के अतिरिक्त कृष्ण काव्य में चौपाई, सार, चौबोला, सरसी आदि छन्द भी आये हैं। अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त जैसे अलंकारों का सुन्दर वर्णन किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जहाँ तक भक्तिकालीन काव्य के प्रमुख कवियों का प्रश्न है, वे वीरगाथा कालीन कवियों और उनकी कृत्तियों से अधिक हैं। इस काल की रचनाएँ निराश जनता को सान्त्वना प्रदान करती हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में ''भारतीय जनता भक्ति साहित्य के श्रवण-श्रावण से उस युग में आशान्वित होकर सान्त्वना प्राप्त करती रही है और आज भी उसे तृप्ति मिल रही है।'' सन्त-काव्य के प्रमुख कवियों में कबीर, नामदेव, रैदास, नानक, दादूदयाल, सुन्दरदास आदि हैं। प्रेममार्गी या सूफ़ी काव्यधारा के कवियों में जायसी, कुतुबन, मंझन, उसमान, मुल्ला आदि हैं। राम भक्ति धारा के कवि हैं – तुलसीदास, हृदयराम, अग्रदास, प्राणचन्द चौहान आदि। कृष्ण काव्य के रचयिताओं में सूरदास, नन्ददास, मीरा, रसखान, रहीम, हरिराम व्यास आदि प्रमुख हैं।

भक्तिकाल की जो प्रमुख रचनाएँ हैं उनमें से कई संदिग्ध या विवादास्पद हैं। कबीर की वाणी का 'बीजक' में संकलन हुआ है। दादूदयाल की वाणी का संकलन 'हरदे वाणी' तथा 'अंगबधु' नाम से किया गया है। प्रेममार्गी कवि जायसी की प्रमुख रचनाएँ हैं – पद्मावत, अखरावट, आखरी कलाम, चित्ररेखा आदि। सगुण भक्ति कवियों की प्रमुख रचनाओं में – रामचरितमानस, विनय-पत्रिका, कवितावली, रामचन्द्रिका, सूरसागर, भँवरगीत, नरसीजी का मायरा, रहीम दोहावली आदि हैं।

1.5 रीतिकाल (उत्तर मध्यकाल)

भक्तिकाल के बाद का काल रीतिकाल है। भक्तिकाल में हिन्दी कविता श्रेष्ठता के शिखर पर थी। भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल माना गया है। भक्ति की धारा के क्षीण हो जाने पर हिन्दी साहित्य के इतिहास में जिस काव्य-धारा का विकास हुआ उसे रीतिकाल के नाम से जाना जाता है। इसे और भी अनेक नाम दिये गये हैं – शृंगारकाल, अलंकारकाल, कलाकाल आदि। रीतिकालीन कवियों ने अपने काव्य में काव्यांग निरूपण की ओर पर्याप्त ध्यान दिया है। इसी आधार पर इस काल को रीतिकाल नाम दिया गया है।

रीतियुग में काव्यांग निरूपण, काव्यांगों की चर्चा का बड़ा महत्त्व रहा है। इस युग के जिन कवियों ने न तो काव्यांग विवेचन किया और न काव्य शास्त्रीय प्रभाव माना उन्हें शुक्लजी ने रीतिमुक्त कवि कहा है। रीतिमुक्त कवियों के अलावा अन्य कवियों को रीति बद्ध और रीतिसिद्ध कवियों की श्रेणी में रखा गया है। रीतिबद्ध कवियों में केशवदास और बिहारी का नाम लिया जा सकता है। रीतिमुक्त कवियों में घनानन्द, आलम और बोधा प्रमुख माने गये हैं।

राजनैतिक दृष्टि से रीतिकाल मुगलों के शासन के वैभव और बाद में उसके पतन का युग था। यह काल शाहजहां के शासनकाल से दिल्ली के मुगल बादशाह बहादुरशाह द्वितीय के शासनकाल के मध्य तक फैला हुआ था।

शाहजहां के शासनकाल में विलासिता की प्रवृत्ति विद्यमान थी। औरंगजेब के बाद मुगल साम्राज्य का पतन होने लगा था। राजनीति के इस पतन को देखकर भारत में स्थित विदेशी व्यापारी कम्पनियाँ यहाँ शासन करने का स्वप्न देखने लगीं। अंग्रेजी कम्पनी भारत पर अपना राज्य स्थापित करने में सफल भी हो गई थी। अंग्रेजों ने भारतीय संस्कृति पर प्रहार शुरु किये। देश की जनता में अंग्रेजों के विरूद्ध घृणा और रोष का भाव उमड़ा परन्तु रीतिकाल के चिन्तामणि मतिराम, बिहारी आदि कवि शृंगार परक उदाहरण रचते रहे। वे अपने आश्रयदाताओं की विलासिता में वृद्धि करते रहे। उन्हें भय था कि विदेशी-शक्तियों के विरूद्ध लिखने पर कहीं उनके आश्रयदाता राज्य का अनिष्ट न हो जाए। कवियों ने उस विलासिता के माहौल में शृंगार परक काव्य की खूब रचनाएँ की। रीतिकाल के प्रथम प्रतिनिधि कवि चिन्तामणि और अन्तिम कवि प्रताप साही हैं।

उस समय भक्तिकालीन धार्मिक मान्यताएँ लगभग समाप्त होती चली गई। धर्म के क्षेत्र में आडम्बरों, अत्याचारों का बोलबाला था। नारी केवल मौज-शौक और विलासिता का मात्र साधन बन गई थी। राधा और कृष्ण के नाम पर लोग कुत्सित भावना रखने लगे। मठ और मन्दिर वासनाओं के अड्डे बना लिये गये थे। कलाएँ वासनाओं को भड़काने का साधन बन चुकीं थीं। कवियों को काव्य क्षेत्र में अपने मन का असंतोष व्यक्त करने का अवसर नहीं मिल पा रहा था। इसी कारण वे आचार्य बनने का प्रयास कर रहे थे। इस युग का साहित्य जन-जीवन से कटा हुआ था।

रीतिकालीन काव्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति शृंगारिकता की रही है। कवियों ने आश्रयदाताओं से पुरस्कार प्राप्त करने और अपना आश्रय बनाए रखने के लिए अपने आश्रयदाताओं के अनुकूल रचनाएँ लिखीं। कवियों ने अपनी शृंगारपरक रचनाओं में नायिकाओं के विभिन्न भेदों का, नारी के नख-शिख वर्णन में विविध अंगों का मनोयोग से वर्णन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने बारहमासा,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

षट्ऋतु-वर्णन भी किये। शृंगार रस में संयोग और वियोग इन दोनों पक्षों का बहुत बारीकी से वर्णन किया गया। नायिका की विभिन्न मुद्राओं, उनके हाव-भावों तथा विरह की दसों दशाओं का भी वर्णन किया गया।

''बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करे भौंहनि हंसै, दैन कहै नट जाय॥''

कवि बिहारी के इस दोहे में नायिका के विभिन्न हाव-भावों का वर्णन समझने को मिलता है।

जहाँ रीतिबद्ध कवियों का शृंगार वर्णन अश्लीलतापूर्ण और छिछला है, वहीं रीतिमुक्त कवियों का शृंगार-वर्णन उच्चकोटि का रहा है। रीतिमुक्त कवि घनानन्द, आलम, बोधा का वियोग वर्णन बहुत ही प्रभावपूर्ण, मार्मिक और मन को बांधने वाला रहा है। डॉ. भागीरथ मिश्र के अनुसार रीतिकालीन कवियों का शृंगारिकता के प्रति दृष्टिकोण भोगपरक रहा है।

रीतिकालीन कवियों की प्रवृत्ति अलंकारिकता की भी रही है। विलासिता के युग के काव्यों में इस प्रवृत्ति का होना तो स्वाभाविक ही था। केशव जैसे कवि अधिकाधिक अलंकारों का प्रयोग कर अपने पण्डित्य का प्रदर्शन करते थे। अलंकार शास्त्र के ज्ञान के बिना उस युग में कवि होना असंभव था। यही कारण था कि मिश्र बन्धुओं ने उस युग को ''अलंकृत काल'' नाम दिया। राधा-कृष्ण के माध्यम से प्राय: प्रेम सम्बंधों का ही वर्णन किया गया था। भक्ति के सम्बंध में कवियों के दृष्टिकोण को इन पंक्तियों से स्पष्ट किया जा सकता है –

''रीझिहैं सु कवि जो तो मानो कविताई।
न तो राधा गोविन्द को सुमिरन कौ बहानो है॥''

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार भक्ति रीतिकालीन कवियों की शृंगारिकता का एक अंग थी। सामान्यतया ये कवि वृद्धावस्था में भक्ति और नीतिपरक रचनाएँ करते थे। बिहारी के इस दोहे से यह स्पष्ट होता है –

''मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परै, स्याम हरित द्युति होय॥''

कवियों ने नीति सम्बंधित रचनाओं में जीवन की अनुभूतियों को अच्छी प्रकार से स्पष्ट किया है। रीतिकाव्य प्रकृति चित्र से शून्य नहीं हैं। इतना अवश्य है कि इसमें आलम्बन रूप के बजाय प्रकृति के उद्दीपन रूप का ही अधिक चित्रण किया है। प्रकृति का षट्ऋतु वर्णन और बारहमासा पद्धति पर उद्दीपन रूप में अधिक चित्रण किया है। प्रकृति संयोगावस्था में मनोहारी और विरहावस्था में दाहक बताई गई है। सेनापति जैसे कवियों ने भी प्रकृति का आलम्बन रूप में अच्छा चित्रण किया है। आश्रयदाता के बारे में वर्णन करने में व्यास रहने वाले, दरबारी शान-शौकत के बीच रहने वाले कवियों को प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में रहकर प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन का अवसर ही नहीं मिला था।

वैसे तो रीति काव्य शृंगारपरक काव्य है परन्तु इसमें वीरता परक काव्यधारा भी चलती रही है। इसी कारण से जातीय व सांस्कृतिक भावना कुछ सीमा तक सुरक्षित रही है। जब औरंगजेब हिन्दुओं पर मनमाने अत्याचार कर रहा था तब शिवाजी जैसे नरेश उसका विरोध करने का प्रयास करते रहे। उनके वीरतापूर्वक कार्यों का भूषण जैसे कवियों ने मनोयोग से वर्णन किया और साथ ही हिन्दुओं में वीरता का, उत्साह का भाव जगाने का प्रयास किया था। भूषण के अतिरिक्त सूदन, गुरु गोविन्दसिंह, गोरेलाल आदि ने भी वीरतापरक कविताएँ रचीं। औरंगजेब के अमानवीय, बर्बरतापूर्ण व्यवहार को देखकर दक्षिण में शिवाजी, पंजाब में गुरुगोविन्दसिंह, राजस्थान में महाराणा राजसिंह, मध्यप्रदेश में छत्र साल ने उसका विरोधी प्रयास किया था। इन राजाओं की वीरता की प्रशंसा में तथा इनके वीरता के भाव को और अधिक उकसाने के उद्देश्य से कवियों ने वीररस पूर्ण कविताएँ लिखीं। लालकवि का 'छत्रप्रकाश', सूदन का 'सुजान चरित्र' चन्द्रशेखर का 'हम्मीर हठ' ऐसी ही वीरतापरक रचनाएँ हैं।

रीतिकाव्य में मनोभावों का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण किया गया है। इस काल में कवियों पर कामशास्त्रीय ग्रंथों और वात्स्यायन के 'कामसूत्र' का प्रभाव था। उन्होंने संस्कृत साहित्य की परम्परा का भी लाभ उठाया है। इस काल में वासना का भी अबोध चित्रण किया गया है। बिहारी सतसई में विपरीत रति आदि से सम्बंधित दोहे मिलते हैं। चिन्तामणि की इन पंक्तियों में भी इसी प्रकार का वर्णन हुआ है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

''आँखिन मूँदबे के मिस आनि अचानक पीठि उरोज लगावै।
मैंहूँ कहूँ मुसकाय चितै अँगराय अनुपम अंग दिखावै॥''

इस काल के काव्य से कवियों के न केवल काव्यशास्त्रीय ज्ञान की जानकारी मिलती है, अपितु उनके ज्योतिष, आयुर्वेद, सामुद्रिकशास्त्र, कामशास्त्र, पाकशास्त्र, संगीतशास्त्र, गणित आदि विषयों में पारंगत होने का संकेत भी मिलता है। बिहारी 'सतसई' में अनेक विषयों से सम्बंधित संकेत मिल जाते हैं।

रीतिकाल में काव्य का माध्यम ब्रज भाषा थी। ब्रज भाषा विलासिता के उस युग के अनुरूप काव्य सृजन में उपयुक्त थी। इस भाषा में माधुर्य है, कोमलता है तथा लचीलापन है। रीतिकालीन कवियों ने इस भाषा का सदुपयोग किया है। उन्होंने भाषा की सुकुमारता की रक्षा की है। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है कि ''संगीत के रेशमी तारों में इनके शब्द मोती की तरह गुंथे हैं।'' भाषा का शुद्ध, सरस, आकर्षक, सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति कवि वाला सक्षम रूप घनानन्द, बिहारी, देव, मतिराम के काव्य में देखा जा सकता है। बिहारी ने तो 'गागर में सागर' भरने की उक्ति को चरितार्थ किया है।

अस्तु, रीतिकालीन काव्य भोग और आनन्द का काव्य रहा है। इसमें जीवन के महान् मूल्यों की ओर संकेत नहीं किया है। रीतिकाव्य भाव सौंदर्य, रूप-सौन्दर्य, कला-सौन्दर्य की दृष्टि से अति महत्त्वपूर्ण है। डॉ. नगेन्द्र ने इस काव्य के संदर्भ में कहा है कि ''नयनोत्सव का ऐसा रंग विद्यापति को छोड़कर प्राचीन साहित्य में दुर्लभ प्रतीत होता है।'' रीतिकाव्य की कड़ी आलोचना भी हुई है। द्विवेदी युग में इसे नैतिकता विरोध करार दिया गया है। छायावादी कवियों ने इस काव्य के स्थूल सौन्दर्य की आलोचना की है। प्रगतिवादियों ने इसे समाज विरोधी तथा प्रतिक्रियावादी कहा है। प्रयोगवादियों ने रीतिकाव्य के रूढ़ विषयों एवं बासी अभिव्यंजना प्रणाली की आलोचना की है। रीतिकाल साहित्य का एक लम्बा काल रहा है। इसमें अनेक कवि और आचार्य हुए और उनके द्वारा अनेक कृतियों का सृजन किया गया। चिन्तामणि, त्रिपाठी रीतिकाल के प्रवर्तक एवं रीतिबद्ध आचार्य माने जाते हैं। कुछ विद्वानों ने यह श्रेय आचार्य केशवदास जी को दिया है। चिन्तामणि की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'कवि कल्पतरू' है जिसका रचनाकाल सं. 1700 वि. है। अन्य कृतिकारों में जसवंतसिंह, मतिराम, भूषण, देव, कुलपति मिश्र, पद्माकर, अमीरदास और निहाल कवि हैं। रीतिबद्ध कवियों में बिहारी, प्रतिनिधि कवि हैं, जिनकी प्रसिद्ध कृति 'बिहारी सतसई' है। इनके अतिरिक्त कवि घनानन्द थे, जिनकी रचनाएँ – सुजान सागर, बिहारीलाल, कोकसार, रसकौलीवल्ली आदि प्रमुख हैं।

1.6 आधुनिक काल (गद्य काल)

किसी भी काल का सीमांकन और प्रारम्भ निर्धारण करना आसान नहीं है। इसका कारण है कि एक काल दूसरे काल से कब अलग हुआ, किस बिन्दु पर आकर पार्थक्य हुआ उसका निर्णय ठीक-ठीक वैज्ञानिक सत्य के रूप में नहीं किया जा सकता है। परिवर्तन की प्रक्रिया जितनी अनिवार्य और अहम् होती है, उतनी ही धीमी और अलक्षित भी रहती है। आधुनिक काल भी इसका अपवाद नहीं है। इस काल की भाव-चेतना का उन्मेष जिस धरातल पर हुआ वह न तो एकदम नवीन युग था और न पुरातन। हिन्दी पुरातन के इतिहास में प्रत्येक काल-खण्ड का प्रारम्भ इसी नियम की चोट सहता रहा है। प्रारम्भ और इसके नामकरण का जहाँ प्रश्न है, हम कह सकते हैं कि आधुनिक काल में विकसित भाव संचेतना के बीज तो 19वीं शताब्दी से कुछ पूर्व ही देखे जा सकते हैं, किन्तु परिवर्तन और तत्प्रेरित परिप्रेक्ष्य का स्वरूप पूरी तरह 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही सामने आया। इस समय जो आधुनिक दृष्टि विकसित हुई उसके पुरोधा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही बने। यही कारण है कि भारतेन्दु के आविर्भाव से ही आधुनिक काल का प्रारम्भ मान लिया गया। भारतेन्दु का जन्म वर्ष सन् 1850 है, किंतु तब से ही आधुनिक काल का प्रारम्भ मानना उचित नहीं होगा, क्योंकि इस समय की नवीनता और परिवर्तित स्थितियों की न तो कोई मूल्यवत्ता है और न ही अर्थवत्ता ही है। ऐसी स्थिति में यह वह समय नहीं है जबकि दो विभिन्न प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे से अपना पार्थक्य घोषित करती हो। कुछ मनीषियों के अनुसार 1857 से ही आधुनिक काल माना गया है। उनका मानना है कि नवीन सामाजिक, राजनैतिक चेतना के संवहन के कारण सन् 1857 को यह गौरव दिया जा सकता है।

भारतेन्दु ने 1868 से काव्य सर्जना का श्रीगणेश किया था। यह वह वर्ष था जबकि समूचा समाज रूढ़ियों, अंधविश्वासों और मृत परम्पराओं की श्रृंखला में निरंतर जकड़ा होने के कारण मुक्ति और नवजागरण के लिए कसमसा रहा था। आचार्य शुक्ल द्वारा रीतिकालीन कविता की अन्त्येष्टि सन् 1843 में की गई मान तो ली, परन्तु उनके तुरन्त बाद से लगभग 20 वर्षों तक नवजागरण का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कोई स्वर और स्वरूप नहीं उभर पाया था। ऐसी स्थिति और नवजागरण की भूमिका सन् 1870 के आस-पास दिखाई देती है और तब से अब तक वह निरन्तर गतिमान रही है। इसके अनेक सोपानें और पडावों से गुजरते हुए नित नवीन स्थितियों को स्वीकार किया है। अत: हम कह सकते हैं कि आधुनिक काल का प्रारम्भ सन् 1808 या 1870 से मानना ही समीचीन है। लगभग बीस वर्षों के समय को (1843-1868) को आधुनिक काल की पीठिका पर रख लेना चाहिए। यही वह पीठिका है जिस पर आधुनिक युग की नींव का पहला पत्थर रखा गया। 1867 में दो विरोधी शक्तियों – सामन्तवादी और पूँजीवादी शक्ति के मध्य टकराहट हुई। जब सामन्तवाद की समग्र संभावनाएँ समाप्त हो गई तो प्रबुद्ध वर्ग के मानस में हलचल प्रारम्भ हो गई। परिणामत: अंग्रेज शासकों के मन में भी भारत की आजादी व उसकी नवीनता का अर्थ समझ में आने लगा। स्थिति बदली तो मान्यताएँ भी परिवर्तित होती चली गई।

आधुनिक शब्द में कालसापेक्षता उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी कि भावचेतना की गुणात्मकता। साथ ही आधुनिक शब्द जिस नवीनता को व्यक्त करता है, वह रूढ़ियों और जड़ता से मुक्ति की नवीनता है। आधुनिकता वस्तुत: मानवीय प्रगति की सूचना देती है। साथ ही नवीन परिवेश को स्वीकार करके चलती है। आज का युग जिस संकट से गुजर रहा है वह बहुत व्यापक है। धर्म, विज्ञान, भाषा, नैतिकता, दर्शन के क्षेत्र में जो संकट उत्पन्न हुआ है वह अति गंभीर है। यही संकट का बोध हमें वर्तमान के प्रति जागरूक बनाता है। सांस्कृतिक विघटन और सामाजिक अराजकता की परिस्थितियों ने मानवमात्र को एक ऐसे मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है कि जहाँ पर आधुनिकता के अतिरिक्त और कुछ सोच ही नहीं सकता है।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल अपनी ही विविधता में अकेला है। इस काल में साहित्य की जितनी विविध घटनाएँ दिखाई देती हैं, उतनी पहले कभी नहीं उभरीं। कथ्य, शिल्प, विचार – तीनों ही दृष्टियों से आधुनिक काल का साहित्य विविधता और विचित्रता को लेकर लिखा गया है।

यदि हम आधुनिक कविता के विकास की कहानी को ही लें तो वह सीधी और सपाट नहीं है। उसमें भी अनेक परिवर्तन हुए हैं। अत: आधुनिक कविता अनेक शीर्षकों व उपशीर्षकों में विभाजित की गई। भारतेन्दु और महावीर प्रसाद द्विवेदी आधुनिक कविता के प्रारम्भिक उन्नायक हैं, जिनकी प्रेरणा पाकर मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय और मानवीय हित की कविताएँ विकसित हुईं। पंत, प्रसाद, निराला, महादेवी वर्मा इन कविताओं की भावना को स्वस्थ दिशा देने वाले व सूक्ष्म भाव संवेदनाओं वाले कवि हैं। इनके पश्चात् दिनकर, नागार्जुन, रांगेय राघव, शिवमंगल सिंह 'सुमन', शील और केदार आदि ऐसे कवि हैं, जिन्होंने कविता के प्रगतिशील तत्त्वों को उभारा है। इस प्रकार आधुनिक कविता का सूत्रपात जिस रूप में हुआ, उस रूप में आज तक अनेक परिवर्तन हुए हैं।

परिवर्तन के इस चक्र को हिन्दी कविता के समीक्षकों ने क्रमश: भारतेन्दु युगीन काव्य, द्विवेदी युगीन काव्य, छायावादी काव्य और छायावादोत्तर काव्य नामों से सम्बोधित किया है। छायावाद से पूर्व हिन्दी कविता ने दो मंजिलें पार की थीं, उन्हें राष्ट्रीयता, नवजागरण और सुधार परिष्कार की कविता मंजिलें कहा जा सकता है। छायावादी कविता को कल्पना वैभव और व्यक्तिवादिता की कविता कहा जा सकता है। आधुनिक कविता के विकास को मूल्यांकित और समीक्षित करने के लिए उसका अन्तर्विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है –

1. पुनर्जागरण की कविता : भारतेन्दु युगीन कविता
2. जागृति के परिष्कार की कविता : द्विवेदी युगीन कविता
3. कल्पना की प्रवृत्ति व व्यक्तिगत मनोभावों की कविता : छायावादी कविता
4. यथार्थ के स्वीकार की कविता : प्रगतिशील कविता
5. प्रयोगशील तत्त्वों की संवाहिका : प्रयोगवादी कविता
6. प्रगति और प्रयोग की संतुलित कविता : नयी कविता
7. मोह भंग व युवा आक्रोश की कविता : साठोत्तर कविता

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल विविध राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक संघर्षों के परिणाम का सूचक है। गद्य की अनेक नई विधाओं ने भी आकार ग्रहण किया और गद्य के क्षेत्र में बहुमुखी विकास हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.7 सारांश

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि अंग्रेजी राज्य की स्थापना, उसके प्रभाव, धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों की स्थिति से जो परिवर्तन हुआ उससे तो साहित्य भी अछूता नहीं रहा। वातावरण में राजनैतिक क्रान्ति का बीजारोपण हो चुका था, देश के विचारक असंतुष्ट थे, बंगाल में राजा राममोहनराय का ब्रह्म समाज आन्दोलन, उत्तरप्रदेश, पंजाब और गुजरात में स्वामी दयानन्द का आर्य समाज आन्दोलन देश की सामाजिक कुरीतियों के विद्रोह स्वरूप सामने आये। बाल गंगाधर तिलक व महात्मा गाँधी के राजनैतिक आन्दोलन देश की राजनैतिक पराधीनता के परिणामस्वरूप प्रसारित हुए। अत: कह सकते हैं कि ऐसी परिस्थितियाँ आधुनिक साहित्य के निर्माण के लिए पूरी तरह प्रेरणास्पद बनी हुई थीं। इन्हीं से प्रेरित और प्रभावित होकर आधुनिक काल का साहित्य रचा जा रहा है।

1.8 अभ्यास प्रश्नावली

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर प्रकाश डालिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 2 : भक्तिकाल काव्य का इतिहास

संरचना

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 भक्ति शब्द का अर्थ

2.3 भक्तिकाल की प्रेरक परिस्थितियाँ

2.4 भक्तिकालीन काव्यधाराएँ

2.5 भक्तिकाल : सामान्य विशेषताएँ

2.6 निर्गुण काव्यधारा

2.7 संत काव्य

2.8 संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

2.9 सूफी काव्य

2.10 प्रमुख सूफी प्रेमाख्यान

2.11 सूफी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

2.12 सगुण भक्तधारा

2.13 कृष्ण भक्तिधारा

2.14 सारांश

2.15 अभ्यास प्रश्नावली

2.0 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल मध्यकाल का प्रारम्भिक भाग है। यह वह काल है जो वैचारिक समृद्धता और कला वैभव के लिए विख्यात रहा है। इस काल में हिन्दी काव्य ने किसी एक दृष्टि से नहीं, अपितु अनेक दृष्टियों से उत्कृष्टता पाई है। इसी आधार पर विद्वानों ने भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण-काल घोषित किया है   वास्तविकता यह है कि हिन्दी साहित्य का यह काल आन्दोलन, प्रचार, विकास और चमत्कार का काल है। वैचारिकता और कलात्मकता दोनों ही दृष्टियों से इस काल के अनेक कवि आज तक न केवल सर्वश्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में आते हैं, अपितु अपनी विचारधारा से प्रासंगिक भी बने हुए हैं। तुलसी, सूर, कबीर ऐसे ही कवि हैं। इतना ही नहीं, भारत की सामान्य जनता पर इन अपराजेय व्यक्तित्व के धनी कवियों का प्रभाव भी आज तक बना हुआ है। सांस्कृतिक और नैतिक दोनों ही दृष्टियों से इस काल के कवियों की गहरी छाप आज भी जनमानस में व्याप्त है। भक्तिकाल में जो भक्ति चेतना विकसित हुई, वह आकस्मिक नहीं थी, उसका बीजारोपण आदिकाल में हो गया था। हाँ, उसका निखार और विकास भक्तिकाल में ही हुआ। सामान्यत: भक्तिकाल की सीमा रेखा 1 3 5 0 से सत्रहवीं शताब्दी के समापन से कुछ पूर्व तक है। इसे 1 6 5 0 तक स्वीकार किया जा सकता है। हाँ, कुछ विद्वान इसे 1 3 7 5 से 1 7 0 0 तक स्वीकार करते हैं।

2.1 उद्देश्य

यहाँ भक्तिकाल के बारे में विस्तार से जानकारी करेंगे।

2.2 भक्ति शब्द का अर्थ

'भक्ति' एक भावना है जिसका मूल आधार ईश्वर पूजा है। कविता भक्तिकाल में साधन है, साध्य नहीं। साध्य के रूप में तो

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

भक्ति को ही मान्यता प्राप्त हुई है। भक्ति शब्द के लिए कोषों में अनुराग, पूजा और उपासना आदि शब्द दिये गये हैं, किन्तु इन सभी में थोडी-थोडी भिन्नता है। श्रीमदभागवतकार ने भक्ति का अर्थ मन और बुद्धि से ईश्वर को अर्पित कर देना माना है। पाराशर ने भक्ति को अनुराग के अर्थ में ही लिया है। शाण्डिल्य और नारद ने भक्ति को ईश्वर के प्रति परम अनुराग अथवा ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा और अमृत स्वरूपा माना है। हमारी दृष्टि में भक्ति ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण के साथ किया गया प्रेम भाव है। श्री वल्लभाचार्य ने भगवान में माहात्म्यपूर्वक सुदृढ़ और सतत-निरन्तर स्नेह को ही भक्ति स्वीकार किया है। वे मानते हैं कि मुक्ति का इससे सरल उपाय और कोई नहीं है। भक्ति के विषय में व्यक्त किए गए सभी उपर्युक्त मत लगभग एक ही भाव के द्योतक हैं। आचार्य शुक्ल ने भक्ति को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।'' स्पष्ट ध्वनि यह निकलती है कि श्रद्धा और प्रेम के अभाव में ईश्वर भक्ति नहीं हो सकती है। प्रेम भक्ति नहीं है क्योंकि प्रेम व्यक्तिगत और श्रद्धा एक सामाजिक भाव है। सामान्य जीवन में भी हम अपने से अधिक उम्र वाले व्यक्ति के प्रति प्रेम नहीं, श्रद्धा ही व्यक्त करते हैं। श्रद्धा गुणों के आधार पर होती है। फिर इस सृष्टि का नियन्ता ईश्वर तो सबसे बड़ा है, सबसे अधिक आदरणीय एवं पूज्य है। अत: उसके प्रति तो श्रद्धा ही व्यक्त की जा सकती है। यह श्रद्धा तभी पूर्ण मानी जायेगी, जबकि उसमें समर्पण और प्रेम का रंग मिला हुआ हो। ईश्वर के प्रति केवल आदर पर्याप्त नहीं है, केवल श्रद्धा पर्याप्त नहीं है, उस श्रद्धा में प्रेम का अंश अथवा रंग गाढ़ा होकर मिल जाये, तो वही श्रद्धा भक्ति में परिणत हो जाती है। भक्तिकाल में जो भक्ति चेतना विकसित हुई है, वह इसी आधार पर समझी जा सकती है। भक्तिकाल के कवियों की भक्ति भावना एक अलौकिक आनन्द को प्रसारित करने वाली है। वही ईश्वरोन्मुखता है या कहें कि वही ईश्वर के प्रति व्यक्त किया गया श्रद्धापुष्ट प्रेमभाव या भक्ति है।

2.3 भक्तिकाल की प्रेरक परिस्थितियाँ

प्रत्येक युग के काव्य-सृजन के मूल में कुछ-न-कुछ कारण और प्रेरक तत्त्व रहते हैं। स्पष्ट शब्दों में प्रत्येक युग के साहित्य-सृजन के मूल में राजनैतिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परिस्थितियों का हाथ रहता है। ये ही प्रेरक बनकर कवियों के समक्ष विचार-प्रवाह अथवा भाव-प्रवाह के नये संदर्भ ला देती हैं भक्तिकाल की प्रेरक परिस्थितियों में भी उस समय की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का योगदान दिखाई देता है। यहाँ पर भक्तिकाल की प्रेरक परिस्थितियों की चर्चा की जा रही है।

2.3.1 राजनैतिक परिस्थितियाँ

भक्तिकाल के पूर्व जिस साहित्य का सृजन हुआ, वह ऐसी राजनैतिक परिस्थितियों के बीच निर्मित हुआ था जिनमें विदेशी यवन शासक यहाँ अपने पैर जमाने के लिए भरसक प्रयास कर रहे थे। एक ओर यवनों का यह प्रयास था तो दूसरी ओर भारतीय राजपूत योद्धाओं की ओर से किया गया उनका विरोध और विद्रोह का स्वर था। इस स्थिति में आदिकालीन साहित्य लिखा गया। भक्तिकाल तक आते-आते परिस्थितियों में किंचित परिवर्तन हो गया था। फिर भी बहुत बड़ा परिवर्तन दिखाई नहीं दे रहा था। स्पष्ट स्थिति यह थी कि उत्तरी भारत पर यवन शासकों का प्रभुत्व स्थापित हो गया था और क्रम-क्रम से दूसरे भारतीय राज्य भी पद दलित होते जा रहे थे। खिलजी वंश का प्रसिद्ध शासक अलाउद्दीन खिलजी सम्पूर्ण भारत में अपनी पताका फहराने की आकाँक्षा से भरा हुआ था। उत्तर भारत और दक्षिण भारत दोनों ही उसकी शक्ति के भयाक्रान्त हो रहे थे। दक्षिण भारत में कृष्णा व तुंगभद्रा के मध्य के प्रदेश पर अधिकार जमाने के लिए विजयनगर और बहमनी राज्यों में लगातार संघर्ष चलता रहता था। परिणामस्वरूप ऐसे अनिश्चय और आतंक के वातावरण में साहित्य और धर्म न तो राजाओं का प्रश्रय प्राप्त कर पाये और न ही आश्रय प्राप्त कर पाये। राजनीतिक उथल-पुथल और निराशा के कारण समूचा वातावरण संघर्षमय हो रहा था। जनमानस विक्षुब्ध था। राजा लोग निराश थे। उनके पास कला, साहित्य और संस्कृति को प्रश्रय देने के लिए साधन ही नहीं बचे थे। ऐसी स्थिति में भारतीय जनता जहाँ से भी उसे सहानुभूति मिले, वहीं अपनी दृष्टि जमाये हुए थी। उनका आश्रय चाहती थी, कोई ऐसा आलम्बन तलाश कर रही थी, जिसे पाकर वे अपने को सुरक्षित अनुभव कर सके।

कतिपय भारतीय इतिहासकार व साहित्यालोचक यह मानते हैं कि यवनों के आगमन के पश्चात् हिन्दू जनता में एक ऐसी निराशाजनक प्रतिक्रिया हुई जिसका फल भक्तिकाल की धार्मिक भावना का विकास है। नि:संदेह इस मत में एक सीमा तक सच्चाई दिखाई देती है, किन्तु यह पूर्ण सच्चाई नहीं है। भारतीय जनता तो सदैव से ही राजनैतिक परिवर्तनों के प्रति उदासीन दृष्टि रखती आई

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

है क्योंकि वह धार्मिक भावनाओं से आन्दोलित रही है। भारतीय जनता ने जितनी रुचि अपनी प्रगति, धार्मिक भावों की अभिवृद्धि आदि में दिखाई है, उतनी अन्य किसी में नहीं। उस समय जबकि चारों ओर संघर्ष हो रहे थे, तब भी भारतीय जनता धर्म और दर्शन से जुड़कर उसी ओर अधिक बढ़ रही थी जहाँ उनकी आध्यात्मिक भूख शांत हो सके। भक्तिकाल के मूल में विशेषकर राजनैतिक परिदृश्य में इन तथ्यों को भुलाया नहीं जा सकता है।

2.3.2 सामाजिक परिस्थितियाँ

भक्तिकाल में सृजित साहित्य के मूल में तत्कालीन समाज की भूमिका भी उपेक्षणीय नहीं है। भक्तिकाल की सामाजिक पृष्ठभूमि का चित्र प्रस्तुत करते हुए एक समीक्षक ने संक्षेप में बहुत कुछ कह दिया है। ''भक्तिकाल के निर्माण में तत्कालीन समाज की स्थिति भी विचारणीय है। पूर्व लेखानुसार ब्राह्मण धर्म की विजय के उपरान्त भी जन साधारण में उसकी सर्वमान्य प्रतिष्ठा नहीं हो सकी। उसी तरह वैदिक वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था को समाज पूर्व रूप से फिर ग्रहण न कर सका। समाज के मेरुदंड समझे जाने वाले ब्राह्मण न तो स्वयं ही इतने शक्तिशाली थे कि वे समाज के विभिन्न अंगों को समुचित रूप से संचालित कर सकते और न ही राज सत्ता उनके इशारे पर चल सकती थी। फलत: जिस तरह धार्मिक मत-मतान्तरों में घोर उच्छृंखलता बढ़ गयी थी उसी तरह समाज की व्यवस्था भी जनरुचि की सुविधा पर चलने लगी थी। वर्ण व्यवस्था की शृंखला टूट गयी थी, किन्तु वह अपने बाहरी रूप में अधिकाधिक विषमता पैदा कर रही थी। अनेकानेक जातियाँ उपजातियाँ बनतीं गयीं और उनमें भेदभाव बढ़ता सा गया। ऊँच-नीच का भाव भी चरम सीमा पर पहुँच रहा था। समाज में स्त्रियों का स्थान भी निम्न माना जाता था। ब्राह्मण काल तक समाज की रूपरेखा इस तरह की थी कि सभी को किसी-न-किसी रूप में सांस्कृतिक व धार्मिक शिक्षा का अवसर प्राप्त हो जाता था। बौद्धकाल में भी शिक्षा का क्रम मठ व विहारों में तथा भिक्षुओं के पर्यटन द्वारा चलता था, किन्तु बाद में जनता में शिक्षा की कमी होती गयी, क्योंकि तत्कालीन पण्डित वर्ग जनसाधारण से दूर अपने तर्क-वितर्क और चिन्तन में लीन हो गया था। शायद इसी कारण से भक्तिकाल का जनसमाज ज्यादा अंधविश्वासी हो गया था और निरर्थक आचार-व्यवहार में लिप्त हो रहा था। भक्ति आन्दोलन में जिस तरह वर्ग भेद में समता लाने का प्रयास है उसी तरह गुरु के महत्त्व व ज्ञान की महिमा भी घोषित की गयी है। जाँति-पाँति व साधारण आचार के प्रति यद्यपि इस समय समन्वय व उदारता की भावना थी और निषेधों के प्रति विरोध था तथापि वैष्णव भक्तों व संतों में इस विषय में भी दृष्टि भेद रहा है। वैष्णव भक्ति वर्णाश्रम धर्म के प्रति आस्था रखती थी, वह सिर्फ प्रचलित रूढ़ि और अनुदारता की विरोधी रही है। भक्त कवि उस पुरातन वर्णाश्रम धर्म की कल्पना करना चाहते थे जिसमें सामाजिक शृंखला अटूट और क्रमबद्ध थी किन्तु निर्गुणकारी संतों में इस तरह का पुरातन दृष्टिकोण नहीं है। वे रुढ़िगत आचारों और अन्ध-विश्वासों के पूर्ण विरोधी हैं और इन कवियों ने उनका तीव्रतम विरोध किया है।

2.3.3 धार्मिक परिस्थितियाँ

भक्तिकाल की प्रेरक परिस्थितियों में धार्मिक परिस्थितियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। दर्शन का सम्बन्ध धर्म के चिन्तन पक्ष से है और इस कारण जन समाज उसके प्रति अधिक सतर्क नहीं रहता है। पर हाँ, धर्म के कर्मकाण्ड और भक्तिपक्ष से जनसाधारण का निकट का गहरा सम्बन्ध होता है। यह तो स्पष्ट ही है कि भक्तिकाल में काव्य का क्षेत्र जन-मानस का हृदय था। परिणामस्वरूप धर्म की व्यावहारिकता का काव्य के समक्ष होना उस काल में सम्भव ही था जबकि भक्तिकाल के पूर्व धार्मिक स्थिति विषम थी। यह सत्य है कि कुमारिल और शंकर के प्रयास से बौद्ध धर्म का उन्मूलन भारत से हो चुका था तब भी लोगों में जिन भावनाओं का प्रचार इन धर्मों ने किया, वे पूरी तरह नष्ट नहीं हो पायी थी। धार्मिक मतों में विशेष बात यह थी कि वे अपने प्रसार के लिए किसी प्रामाणिक ग्रंथ का सहारा न लेकर जनता की मनोवृत्ति के आधार पर धर्म को सहज और स्वाभाविक बनाते गये। इतना ही नहीं, आठवीं और नवीं शती तक बौद्ध महायान संप्रदाय ने लोक के आकर्षण की राह पर बढ़ने की कामना से तंत्र, मंत्र, जादू और टोना आदि का भी सहारा लिया।

जिन दिनों बौद्ध धर्म लोक भावना में घुल-मिल रहा था, तभी ब्राह्मण धर्म उससे किनारा करता जा रहा था। टीका और भाष्य के युग में सिर्फ पुराने धर्म-ग्रंथों की मान्यता का प्रयत्न किया जा रहा था। 12वीं शताब्दी तक विचारों की स्वतंत्रता नहीं के बराबर रह गयी थी। उसके पश्चात् ही लोकधर्म की बिखरी हुई स्थिति को सम्भालने के लिए दूसरे ग्रंथों का प्रणयन प्रारम्भ हुआ। लोक जीवन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के व्यवहार के लिए उपयोगी आचार व्यवस्था देने का विधान तो अत्यन्त पुराना है, किन्तु इस काल में धर्मशास्त्र के वचनों से प्रमाण देकर नयी-नयी आज्ञाएँ भी दी जाने लगी थीं। वैदिक धर्म की कर्मकाण्ड व्यवस्था बहुत समय पहले ही टूट चुकी थी और इस बीच जिस बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ, वह भी संन्यास प्रधान धर्म बनकर रह गया। हिन्दू धर्म में अनेक पूजा, व्रत और आचार आदि का मिश्रण होता गया। यह मिश्रण पुरातन धर्मग्रंथों में नहीं था। ऐसी स्थिति में इस सारे बिखराव को नियमित और व्यवस्थित करने की आवश्यकता थी। इसी आवश्यकता के परिणामस्वरूप लोक व्यवहार के समर्थन के लिए प्रमाण वाक्य खोज खोजकर इकट्ठे किये जाने लगे। जिस प्रकार लोकमत को अपनी ओर मिलाने की कोशिश में बौद्धधर्म जादू टोना आदि अपना रहा था, उसी तरह हिन्दू धर्म जनमत को अपनी ओर करने के लिए रुढ़िगत आचार व्यवहारों को समर्थन देता जा रहा था। भक्तिकाल में कुछ ऐसी धार्मिक प्रवृत्तियाँ प्रचलित थीं जिनका योग भक्तिकाल की भावना के विकास के लिए आवश्यक था। सामाजिक विषमताओं और बंधनों के प्रति सिद्धों और नाथों का रुख कठोर था पर साथ ही धार्मिक आचारों की निरर्थक आडम्बरवादिता के प्रति भी इनका आक्रोश कम नहीं था। सिद्धों ने योग के साथ सहज की भावना को महत्त्व दिया, किन्तु नाथ संप्रदाय ने जनता में बहुत कुछ परिष्कार लाने का कार्य किया। इस परम्परा का सामाजिक दृष्टिकोण संत काव्य में विकसित हो सका है। दक्षिण भारत की भक्ति-परम्परा का आदर्श भी धार्मिक विषमता के क्षेत्र में समाज को समन्वयशील बनाने का था। रामानुजाचार्य, माधवाचार्य आदि दक्षिण के आचार्यों ने दक्षिण की भक्ति-परम्परा को उत्तर में फैलाने का कार्य किया है। इस भक्ति आन्दोलन का विरोध प्रचलित धार्मिक व सामाजिक अव्यवस्था के प्रति इतना तीव्र नहीं था जितना नाथ संप्रदाय की परम्परा को ग्रहण करने वाले संतों का थ। फिर भी यह सत्य है कि दक्षिण की भक्ति में समाजगत परिष्कार की भावना निश्चित रूप से थी। यही कारण है कि जहाँ संत कवियों ने किसी प्रमाण वाक्य का सहारा नहीं लिया वहीं भक्त कवियों ने श्रुति सम्मत सिद्धान्तों का पूरा ध्यान रखा है। इन सब परिस्थितियों में ही भक्तिकाल की कविता का सृजन हुआ है और भक्ति की धारा प्रवाहित हुई है।

2.3.4 दार्शनिक परिस्थितियाँ

जिस भक्तिकाल को धार्मिक आन्दोलनों का समय कहा जाता है, उसके मूल में कई दार्शनिक विचारधाराएँ क्रियाशील रही हैं। इन दार्शनिक विचारधाराओं का स्रोत भारतीय दर्शन की परम्परा में देखा जा सकता है। भक्तिकाल के विभिन्न भक्त कवियों ने किसी-न-किसी खास दार्शनिक परम्परा का आश्रय लिया अथवा उन्होंने किसी विशेष दृष्टिकोण से तात्कालिक जनता के हृदय की भक्ति भावना को स्पर्श कर उसे जगाने का प्रयास किया। इस मध्यकाल के दार्शनिक दृष्टिकोण की विशेष बात यह रही है – पाण्डित्यपूर्ण तर्क-वितर्क के धरातल से अनुभूति की ओर बढ़ना और लोकजीवन का नैकट्य ग्रहण करना। इस दार्शनिक दृष्टिकोण की प्रक्रिया के भी दो रूप हैं – पहले रूप में तो आचार्यों ने दर्शन के सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए उसे जनता के लिए सरल बनाया है। दूसरे रूप में इन आचार्यों की शिष्य परम्परा के कवियों ने इस व्याख्या में काव्य पक्ष को जोड़कर जन रुचि के अनुरूप अपनी गहन अनुभूति से भक्ति के मार्ग को प्रशस्त किया है।

उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इन कवियों ने दार्शनिक क्षेत्र में अपने आचार्यों से अधिक व्यापक और उदार दृष्टिकोण अपनाया है। वैदिक काल के पश्चात् उपनिषदों में जो दर्शन अभिव्यक्त हुआ है और जिसकी प्रधानता रही है, वह आगे के युगों में निरन्तर चिंतन की ओर अग्रसर होता गया है। उपनिषदों की अनुभूति, साधन और आत्मतन्मयता से प्राप्त ज्ञान सरल व स्वाभाविक था। उसमें जटिलता नहीं थी। आरम्भिक बौद्ध दर्शन की चेतना भी सरल ही थी। जटिलता तो उसमें बाद में आयी। एक ओर यदि आचार्य नागार्जुन ने शून्यवाद में बौद्धदर्शन को चरम शिखर पर पहुँचा दिया तो दूसरी ओर हिन्दू दार्शनिक ने भी वैशेषिक, सांख्य, योग और मीमांसा में अपनी बौद्धिक क्षमता का परिचय दिया है। छठी शताब्दी तक तो जो दर्शन व्यक्त हुआ, वह बहुत कुछ जीवन की स्वानुभूत और मननशीलता से जुड़ा हुआ था, किन्तु बाद में दार्शनिक दृष्टिकोण तर्कों के जाल में उलझकर जीवन से दूर होता चला गया। चिंतन के क्षेत्र में समन्वय उपस्थित करने का प्रयत्न शंकर ने अपने अद्वैत में किया। माया को झूठा मानकर उन्होंने विश्व-सृजन के प्रश्न को दार्शनिक चिंतनों के समन्वय के आधार पर प्रस्तुत किया तथा जीव और ब्रह्म, सृष्टा और सृष्टि को एक मानकर ब्रह्म को महान रूप प्रदान किया, किन्तु शंकर ने स्वयं ही अनुभव किया कि यह दार्शनिक सिद्धान्त इतना बुद्धि-प्रधान है कि वह जनसमाज को सहजता के साथ प्रभावित नहीं कर सकेगा। यही कारण है कि बाद के दार्शनिकों ने सिद्धान्तों की विवेचना में मानवीय हृदयपक्ष का ध्यान रखा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

दक्षिण भारत से आये सभी आचार्यों के सामने उपनिषद की भक्ति परम्परा का सरल रूप था। रामानुजाचार्य, माधवाचार्य, रामानन्द और वल्लभाचार्य आदि सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोण से भाष्य लिखे जिनमें दार्शनिक मत का प्रतिपादन है। इस प्रतिपादन में सरलता बनाये रखने की चेष्टा दिखाई देती है। रामभक्ति और कृष्णभक्ति में ही नहीं, अपितु सूफ़ी प्रेम-साधना में भी अद्वैत की भावना इसी विशेषता के साथ स्वीकार की गयी है। थोड़ी देर के लिए भक्तिकाल के आचार्यों को छोड़ दिया जाये और केवल कवियों पर ही विचार किया जाये तो स्पष्ट होता है कि सभी कवि अपने दृष्टिकोण में अधिक समन्वयशील और व्यापक रहे हैं। वास्तविकता यह है कि दार्शनिक विचारों में विषमता तभी आती है जबकि विचार संकुचित होते हैं। भक्तिकाल के कवियों में जहाँ एक ओर कवित्व की अंतर्दृष्टि में दार्शनिक विचारधारा अधिक व्यापक और लोक की प्रवृत्ति के पास पहुँची हुई दिखाई देती है, वहीं उनकी साधना भी कवित्व की कल्पनामयी अनुभूति के सहारे अधिक स्पष्ट हो उठी है। तुलसी, सूर और जायसी का काव्य इसका उदाहरण है।

2.3.5 साहित्यिक परिस्थितियाँ

भक्ति काव्य रचना से पूर्व प्रान्तीय भाषाएँ अपने-अपने अपभ्रंशों का अनुसरण करते हुए हिन्दी के समानान्तर साहित्य-सृजन में लगी हुई थीं। भिन्न-भिन्न प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य के वर्ण्य-विषय, काव्य-रूप और उनकी रचना-शैली अलग-अलग थी। इस प्रकार का साहित्य अनगढ़-सा प्रतीत होता था। इसी अनगढ़ साहित्य और अपरिष्कृत साहित्य की प्रतिक्रियास्वरूप भक्तिकाल का साहित्य रचा गया है। उसमें निखार है, भाषा में परिष्कार है, शैलियों में प्रवाह है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इस समय के साहित्य में किसी प्रकार की कोई मौलिक उद्‌भावना नहीं की गयी है। केवल भक्ति-प्रचार और सिद्धान्त प्रतिपादन की भावना को ही अधिक महत्व दिया गया है। भक्तिकाल में कबीर, जायसी, सूर और तुलसी सभी ने अपने-अपने साहित्य में यही प्रदर्शित किया है। मुगलों ने फारसी भाषा को राज-काज के लिए स्वीकार कर लिया था अतः वहाँ तो फारसी चलती रही, यों कुछ काव्य-रचनाएँ भी फारसी भाषा में लिखी गयीं और संस्कृत के अनेक धार्मिक ऐतिहासिक ग्रंथों का फारसी में अनुवाद भी किया गया, पर काव्य में अधिकतर हिन्दी, संस्कृत, फारसी भाषाओं का समन्वित रूप चलता रहा। दरबारी कवियों ने अपने राजाओं की रुचि के अनुरूप कुछ प्रशस्ति, श्रृंगार, रीति-नीति आदि विषयों पर कलम चलाई है। इस समय के साहित्य में भारतीय संस्कृति की छवि को यथावत बनाये रखने का प्रयास दिखाई देता है। भक्तिकाल का साहित्य न केवल रस की दृष्टि से ही श्रेष्ठ है, अपितु इस बात से भी महत्तम है कि उसमें हृदय, मन और आत्मा की पिपासा को शांत करने की विशेषता विद्यमान है।

2.4 भक्तिकालीन काव्यधाराएँ

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में जो काव्यधाराएँ विकसित हुई हैं, उन्हें स्पष्ट रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है – 1. निर्गुण काव्यधारा और 2. सगुण काव्यधारा। इन दो धाराओं की दो-दो उपधाराएँ और हैं। निर्गुण काव्यधारा की दो उपधाराएँ हैं – संत काव्यधारा और सूफ़ी काव्यधारा। इसी प्रकार सगुण काव्यधारा की दो उपधाराएँ हैं – रामभक्ति काव्यधारा और कृष्णभक्ति काव्यधारा। संत काव्यधारा और सूफ़ी काव्यधारा दोनों ही निराकार ईश्वर में विश्वास करके चली हैं जबकि रामभक्ति और कृष्णभक्ति की धाराएँ साकार ब्रह्म को स्वीकार करती हुई काव्य-पथ पर गतिमान हुई हैं। भक्तिकाल की इन धाराओं को निम्नांकित रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है –

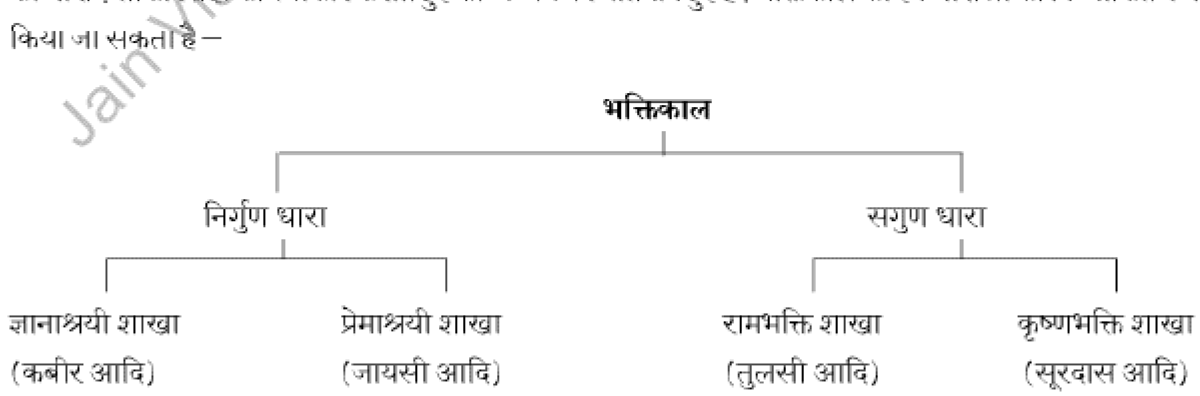

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.5 भक्तिकाल : सामान्य विशेषताएँ

भक्तिकाल भले ही निर्गुण और सगुण धाराओं में विभाजित होकर सामने आया हो, किन्तु उसमें कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, ऐसी मान्यताएँ हैं और ऐसे जीवन-मूल्य हैं जो समान रूप से संतों, सूफियों, रामभक्तों और कृष्णभक्तों में देखने को मिलती हैं। वास्तव में इन्हीं समान बातों के कारण भक्तिकाल का महत्त्व है। कर्मकाण्डों, आडम्बरों और जटिलताओं के इस युग में भक्तिकाल का साहित्य एक नयी प्रकाश-किरण के रूप में दिखाई देता है। यह प्रकाश महलों से लेकर झोंपड़ियों तक और राजपथ से जनपथ तक सर्वत्र पहुँचा है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की यह टिप्पणी सारगर्भित है कि ''जितनी सरलता और सहजता से इस साहित्य ने जन-जीवन का स्पर्श किया, उतनी सहजता से अन्य कोई भी साहित्य नहीं कर सका। इस साहित्य ने भ्रमित और हताश जनता को उल्लासमय जीवन जीने की प्रेरणा दी, उन्हें एक अलौकिक संतोष प्रदान किया। वास्तव में यह समूचे भारतीय इतिहास में अपने ढंग का अकेला साहित्य है। इसी का नाम भक्ति-साहित्य है और यह एक नयी दुनिया है।''

भक्तियुग में जो धाराएँ विकसित हुई हैं, वे अलग-अलग भले ही हों, किन्तु उनके सिद्धान्तों में पर्याप्त समानता है। यह समानता ही समूचे भक्तिकाल को विशिष्ट बनाए हुए हैं और इसी समानता के बल पर भक्तिकाल की कुछ सामान्य विशेषताएँ उभरकर सामने आती हैं, जो निम्नांकित हैं –

2.5.1 भक्ति भावना की प्रधानता – समूचे भक्तिकाल में भक्ति-भावना की प्रधानता दिखाई देती है। यह भक्ति-भावना मोक्ष-प्राप्ति के एकमात्र साधन के रूप में सम्पूर्ण भक्तिकाल में प्रवाहित है। चाहे संत हों, सूफ़ी हों अथवा सगुणोपासक भक्त हों, सभी इस अनुभूति से गहराई तक प्रभावित हैं।

2.5.2 नाम स्मरण की महिमा – भक्तिकाल की सभी अंतर्धाराओं में नाम-स्मरण की महिमा का गुणगान समान रूप से दिखलाई देता है। निर्गुण और सगुण दोनों ही कवियों ने नाम की महत्ता को एक स्वर से स्वीकार किया है। यदि कबीर यह कहते हैं कि ''नाम स्मरण के समान उत्तम अन्य कोई मार्ग नहीं है'' तो सूर भी ईश्वर के नाम पर ही विश्वास करके आगे बढ़ते है। तुलसी ने भी राम के नाम को राम से अधिक महत्त्व दिया है।

2.5.3 गुरु का महत्त्व – भक्तिकाल के सभी कवियों ने ईश्वर-प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता पर सर्वाधिक बल दिया है। सभी कवि यह मानकर चले हैं कि गुरु के बिना कोई भी व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है। गुरु ही अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर अपने शिष्य को परम तत्त्व पर पहुँचाने में सहायक होता है। कबीर ने यह कहकर गुरु की महत्ता बतलाई है कि –

''गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय॥''

जायसी ने भी गुरु की महिमा का मुक्तकंठ से गुणगान किया है –

''तन चिर उर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पद्मिनि चीन्हा॥
गुरु सूआ जेइ पन्थ दिखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥''

तुलसी ने 'रामचरित मानस' के प्रारम्भ में ही गुरु की महिमा का गुणगान कर दिया है –

बन्दौ गुरु-पद-कंज, कृपा-सिंधु नर रूप धरि।
महामोह तम-पुंज, जासु वचन रवि कर निकरि॥

2.5.4 प्रेम तत्त्व का महत्त्व – भक्तिकालीन कवियों ने प्रेम के महत्त्व को मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। निर्गुण हों या सगुण, संत हों या सूफ़ी, रामभक्त हों या कृष्णभक्त, सभी प्रेम की महिमा और सत्ता को स्वीकार करके चले हैं। संत कवियों ने भक्ति के मार्ग को प्रेम का ही मार्ग माना है और इस पर चलना तलवार की धार पर चलने के समान बतलाया है। सगुण कवियों ने भी प्रेम की पीड़ा को पर्याप्त महत्त्व दिया है। ये कवि यह मानकर चले हैं कि प्रेम मानव-मन की कोमलतम भावना है। इनका मत था कि भगवान के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् धीरे-धीरे भक्त के हृदय में क्रमशः प्रेम और श्रद्धा जैसी भावनाएँ उत्पन्न होने लगती हैं।

2.5.5 सत्संगति की महिमा – भक्ति काव्य में सत्संगति की महिमा का भी गुणगान किया गया है। भक्त-कवियों का विचार था कि सत्संगति मानव-मन के दोषों को दूर कर अच्छे गुणों एवं सद्भावनाओं का विकास करती है। यही कारण है कि इन्होंने सत्संगति

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

का समर्थन एवं प्रचार किया। निर्गुण एवं सगुण मतों को मानने वाले संतों ने दोनों ही प्रकार के कवियों को महत्त्व दिया है। संतकवि कबीर लिखते हैं –

कबिरा संगति साधु की हरै और की व्याधि।
संगति बुरी असाधु की आठों पहर उपाधि॥

अर्थात् सत्संगति दूसरों के कष्टों का हरण कर उन्हें शांतमना बनाती हैं जबकि कुसंगति में रहने वालों को दिन-रात उलाहने मिलते हैं। कुछ इसी बात पर जोर देते हुए सगुण भक्त कवि सूरदास ने भी अपने मन से प्रभु-विरोधी अर्थात् बुरे लोगों का साथ त्यागने की प्रार्थना की है –

"तजो रे मन हरि विमुखनि कौ संग।"

इसी प्रकार तुलसीदासने भी अपने अमर-काव्य 'रामचरितमानस' में सत्संगति की महिमा का पर्याप्त बखान किया है।

2.5.6 अहंकार का त्याग – भक्तिकाल के सभी कवियों ने अहंकार के त्याग की आवश्यकता पर बल दिया है। ये सभी कवि यह मानकर चले हैं कि अहंकार के त्याग के बिना सच्ची भक्ति सम्भव ही नहीं है। समर्पण के मार्ग पर चलने के लिए अहंकार का त्याग आवश्यक है क्योंकि बिना समर्पण के भक्ति सम्भव नहीं है।

2.5.7 बहुदेववाद का विरोध – भक्तिकाल के सभी कवियों ने बहुदेववाद का विरोध किया है और एक सर्वशक्तिमान ईश्वर की कल्पना की है। ये कवि यह मानकर चले हैं कि ईश्वर एक है और सम्पूर्ण सृष्टि में उसी की कांति चमकती दिखाई देती है। निर्गुण और सगुण दोनों ही कवियों ने बहुदेववाद का विरोध किया है। निर्गुण कवियों ने अवतारवाद को स्वीकार नहीं किया है जबकि सगुण कवियों ने अवतारवाद को तो स्वीकार किया है, किन्तु बहुत से देवी-देवताओं की उपासना को व्यर्थ बतलाया है। वे तो स्पष्ट रूप से यह मानकर चले हैं कि विभिन्न देवताओं के नाम एक ही परम तत्त्व के विविध लोकोपकारक रूप हैं। तुलसी ने मानस में कहा है कि जो शिव का विरोध करके मेरी भक्ति करता है, उस भक्त को मैं स्वपन में भी नहीं देखता हूँ।

"शिवद्रोही मम दास कहावा।
सौ नर मोहि सपने हूँ नहीं भावा॥"

2.5.8 अनुभूतिपरक अनुभव या ज्ञान का महत्त्व – भक्तिकालीन कवियों ने शास्त्रों से प्राप्त ज्ञान को अधिक महत्त्व नहीं दिया है। इन्होंने शास्त्र-ज्ञान की अपेक्षा निजी अनुभव से प्राप्त अनुभूतिपरक अनुभव या ज्ञान को ही महत्त्व दिया है। निर्गुणवादी कबीर यदि यह कहते हैं कि –

"पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पण्डित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय॥"

तो तुलसीदास भी वाक्य-ज्ञान को व्यर्थ बतलाते हैं और यह कहते हैं कि –

"वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुण, भव पार न पावै कोई।"

सूर की गोपियों ने भी ज्ञान की गठरी की तुलना में प्रेम के निजी अनुभवों को ही अधिक महत्त्व दिया है।

2.5.9 वर्गभेद का विरोध – भक्तिकाल में या कहें कि समूचे मध्यकालीन समाज में तरह-तरह के मिथ्या बंधन थे जिनमें सभी लोग जकड़े हुए थे। जाति-पाँति, छुआ-छूत और ऊँच-नीच की भावनाएँ समाज के प्रत्येक वर्ग में व्याप्त थीं। यही कारण था कि समाज भीतर ही भीतर कई टुकड़ों में बँट चुका था। शूद्रों के लिए धार्मिक कार्य निषिद्ध थे और वे अस्पृश्य माने जाते थे। ब्राह्मण वर्ग ही विशिष्ट माना जाता था। इन स्थितियों को भक्तिकाल के कवियों ने बुरी दृष्टि से देखा है। उन्होंने जाति व्यवस्था और छुआ-छूत का खुले शब्दों में विरोध किया है। कबीर ने तो स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि –

"जाति-पाँति पूछे नहिं कोई,
हरि को भजै सो हरि का होई।"

सगुण भक्त कवियों ने भी ऐसे मिथ्या बंधनों को विरोध की पैनी धार से नकारने का सफल प्रयास किया है। तुलसीदासवर्ण व्यवस्था को तो स्वीकार करते थे, किन्तु जाति-व्यवस्था को स्वीकार नहीं कर पाये। यही

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कारण था कि उन्होंने 'रामचरितमानस' में निम्नवर्गीय निषाद को राम से गले मिलते हुए तथा राम को सबरी के झूँठे बेर खाते हुए दिखलाया है। सूरदास के कृष्ण भी ग्वालों के साथ माखन की छीना-झपटी करते हुए दिखाये गये हैं। इस प्रकार भक्त कवियों ने यह स्पष्ट किया है कि ईश्वर के लिए न कोई छोटा है, न कोई बड़ा है, सभी समान हैं।

2.5.10 रूढ़िवादी विचारधारा का खंडन—भक्तिकालीन समाज रूढ़ियों और आडम्बरों में इस प्रकार जकड़ा हुआ था कि उसकी मुक्ति की कोई सम्भावना नहीं दिखाई दे रही थी। संत कवियों ने मूर्तिपूजा, बलि-प्रथा, तीर्थ-यात्रा, रोजा, व्रत, नमाज और हज आदि समस्त आडम्बरों का खुलकर विरोध किया है। सगुण भक्त कवियों ने भी रूढ़ियों और आडम्बरों की भर्त्सना की है। ऐसा लगता है कि भक्तिकाल के सभी कवि एक समान मानवता के पक्षधर थे। वे सद्भाव, सहजता, शालीनता और समता जैसे मूल्यों को महत्त्व देते थे और उनकी दृष्टि में प्रेम, मानव-प्रेम सर्वोपरि था। ये जीवन-मूल्य सम्पूर्ण भक्तिकाल में दिखाई देते हैं।

2.5.11 शृंगार वर्णन—भक्तिकालीन काव्य में एक समान प्रवृत्ति यह भी देखने को मिलती है कि बावजूद भक्ति भावना के शृंगार को सभी ने अपनाया है। प्रेम का सम्बन्ध शृंगार से है और तो और, निर्गुण संत जो ईश्वर को निराकार मानते हैं, वे भी शृंगार-वर्णन करने में पीछे नहीं रहे हैं। हाँ, यह अवश्य है कि इनके काव्य में संयोग की अपेक्षा वियोग का स्वर अधिक मुखरित हुआ है। विरह की तीन स्थितियाँ उनके यहाँ देखने को मिलती हैं—विरह की प्रथम अवस्था में जब आत्मा को परमात्मा के दिव्य दर्शन होते हैं, तब आत्मा या कहें कि जीवात्मा परमात्मा के अलौकिक सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है। परमात्मा के मिलन के लिए व्याकुल होकर जो विरह की भावना जगती है, उसकी सजीव अभिव्यक्ति निर्गुण संतों में देखने को मिलती है। तीसरी स्थिति मिलन की है। प्रिय के आगमन की बेला जब निकट आती है, तब कबीर स्वयं को सुहागिन स्त्री मानकर यहाँ तक लिख जाते हैं—

''दुलहनी गावहु मंगलाचार।
हमारे घर आये हौं राजा राम भरतार।
तन रत करि मैं मन रत करिहू पंचतत्त बराती।
रामदेव मोरे पाहुनै आये मैं जौबन मैं माती॥''

सगुणोपासक कवियों में सूरदास ने भी शृंगार को अपनाया है, बल्कि कहें कि उनका शृंगार अत्यन्त स्पष्ट और सरस है। संयोग और वियोग दोनों को ही उन्होंने समान महत्त्व दिया है। राधा और कृष्ण के प्रसंग इसके उदाहरण हैं।

2.5.12 समन्वयात्मकता—समन्वयात्मकता भक्ति-साहित्य की एक अनुपम विशेषता है। विरोधों और पारस्परिक संघर्षों के उस युग को समन्वय की सर्वाधिक आवश्यकता थी। अन्यथा भारत देश और भारतीय संस्कृति के पतन और विघटन के मार्ग खुले हुए थे। धार्मिक संघर्षों को समाप्त करने के लिए भक्तिकालीन कवियों ने सगुण और निर्गुण तथा ज्ञानयोग और भक्तियोग में समन्वय स्थापित किया था। तुलसी ने **''सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा, ज्ञानिहिं भक्ति हिं नहिं कछु भेदा''** कहकर इसी समन्वय की ओर संकेत किया है। संत कवियों ने जाति, धर्म और समाज सभी क्षेत्रों में समन्वय करने की सफल चेष्टा की है। सगुण भक्त कवि तुलसी का तो समूचा काव्य ही 'समन्वय की विराट चेष्टा' है।

2.5.13 लोक-संग्रह की भावना—भक्तिकाल के समस्त कवि पारिवारिक जीवन व्यतीत करने वाले थे। वे योगी नहीं थे। यही कारण है कि उनके काव्य में जीवनानुभवों का समग्र चित्र प्रस्तुत किया गया है। उसमें लोक-संग्रह की भावना विद्यमान है। भक्तिकालीन कवियों की समाज से हटकर कोई अलग दुनिया नहीं थी, वे तो उसी समाज के सदस्य थे जिसमें वे रहते थे। यदि ध्यान से देखें तो स्पष्ट होता है कि संतों ने वैयक्तिक साधना-पद्धति की अपेक्षा सामाजिक साधना-पद्धति पर अधिक बल दिया है। आत्मशुद्धि को भी उन्होंने सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही देखा है। रामभक्त तुलसी का समस्त काव्य भले ही राम के चरित्र को आधार बनाकर लिखा गया हो, किन्तु फिर भी वे महाराज दशरथ के राजमहल के साथ-साथ समाज के प्रत्येक वर्ग को साथ लेकर चले हैं। यह सब लोक-संग्रह की भावना को व्यक्त करता है।

2.5.14 नारी-विषयक दृष्टिकोण—भक्तिकालीन सभी कवियों ने अपने नारी-विषयक दृष्टिकोण को सहजता से अभिव्यक्ति दी है। सभी भक्त-कवि पतिव्रता स्त्री की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं और कुटिला स्त्री की निंदा करने में कोई चूक नहीं करते। ऐसा प्रतीत होता है कि नारी के सत्स्वरूप पर इनकी आदरमयी दृष्टि थी और असत् स्वरूप पर क्रूर एवं निंदापरक दृष्टि थी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''पतिव्रता मैली भली, काली कुंचित कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप॥''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि भक्तिकाल में सगुण और निर्गुण दोनों ही धाराओं के कवियों ने कुछ बातों में समान दृष्टिकोण अपनाया है। समूचा भक्तिकाल जीवन-मूल्यों का और भारतीय संस्कृति का उद्घोषक काव्य प्रतीत होता है। अत: सभी विशेषताएँ समूचे भक्तिकाल के अंतर्गत समान भाव से प्रवाहित होती रही हैं।

2.6 निर्गुण काव्यधारा

भक्तिकाल की निर्गुण काव्यधारा के अंतर्गत भी दो प्रकार की धाराएँ प्रवाहित हुई हैं—पहली संत काव्यधारा और दूसरी सूफ़ी काव्यधारा है। ये दोनों काव्यधाराएँ समान महत्त्व रखती हैं। इनमें से किसी एक को कम और किसी दूसरी को अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता है। निर्गुण भक्तिधारा में ब्रह्मानुभूति को महत्त्व दिया गया है। इस धारा के साधक-कवियों ने स्वीकार किया है कि ईश्वर एक है तथा वह निर्गुण-निराकार है, वह सर्वव्यापी है। अत: उसे खोजने के लिए मंदिर, मस्जिद अथवा काबा-काशी जाने की आवश्यकता नहीं है। निराकार ब्रह्म दृश्यमान सत्ता नहीं है, वह तो केवल आत्मा और मन में अनुभव करने की वस्तु है। निर्गुण-साधकों ने यह भी कहा कि ब्रह्म की अनुभूति ज्ञान और प्रेम के द्वारा ही सम्भव है। अत: इस विविधता ने निर्गुण धारा को भी दो भागों में विभक्त कर दिया—ज्ञानमार्गी शाखा और प्रेममार्गी शाखा। ज्ञानमार्गी साधकों ने स धना-पक्ष के अंतर्गत ज्ञान को अधिक महत्त्व दिया और कहा कि ब्रह्मानुभूति मात्र ज्ञान के द्वारा ही सम्भव है। कहने का अभिप्राय यह है कि आत्मज्ञान के बिना ब्रह्मज्ञान और आत्मा से परमात्मा के मिलन की अनुभूति सम्भव ही नहीं हो सकती है। इस धारा के कवि 'संत' कहलाये। इसी प्रकार प्रेममार्गी धारा के कवियों ने साधना-पक्ष के अंतर्गत प्रेम को अधिक महत्त्व दिया। उन्होंने कहा कि प्रेम की निश्छल भावना के द्वारा ही ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है। इन्होंने प्रेम-काव्यों की रचना करके अपने मत का प्रचार करने का प्रयास किया। ये प्रेममार्गी अथवा 'सूफी कवि' कहलाये। मलिक मोहम्मद 'जायसी' इसी शाखा के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं।

2.7 संत काव्य

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में जिसे हम संत काव्यधारा के नाम से जानते हैं, उसमें कबीर दास एक ऐसे महान् विचारक एवं प्रतिभाशाली महाकवि हैं, जिन्होंने अपने युग और समाज की विषमताओं के प्रति जागरूक रहकर निरन्तर सत्य को सीधी-सादी वाणी में व्यक्त किया है।

आचार्य शुक्ल ने नामदेव और कबीर द्वारा प्रवर्तित भक्तिधारा को निर्गुण ज्ञानाश्रयी धारा की संज्ञा प्रदान की है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसे 'निर्गुण भक्ति-साहित्य' नाम दिया है तथा डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे संत काव्यपरम्परा जैसे विशेषण से अभिहित किया है। ध्यान से देखें तो ज्ञानाश्रयी शब्द भ्रमोत्पादक है। यदि संतों के लिए इस शब्द को स्वीकार कर लिया जाये तो लगता है कि जैसे संत ज्ञान को ही प्रमुखता देते थे, जबकि ऐसा नहीं है। संतों ने तो प्रेम को ही सर्वोपरि माना है और सम्पूर्ण ज्ञान-राशि को तुच्छ स्वीकार करते हुए प्रेम का गुणगान किया है। यों भी भक्ति का आलम्बन जिसे भी माना जाये, वह प्रेम के ही अधिक निकट होगा। हमारी दृष्टि में ज्ञानाश्रयी शाखा की अपेक्षा यदि इस धारा को संत काव्य शब्द से अभिहित किया जाये तो अधिक उचित होगा। कारण यह है कि संत शब्द में कई भाव एक साथ समाहित हैं। इसके अंतर्गत वैराग्य भी है, ज्ञान भी है और प्रेम भी है।

2.8 संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

संत काव्यधारा के अंतर्गत भक्ति भावना का प्रवाह आद्योपान्त दिखाई देता है। काव्यत्व की दृष्टि से यह काव्यधारा भले ही उच्च स्तरीय न रही हो, किन्तु वैचारिक दृष्टि से इसका महत्त्व बहुत अधिक है। वास्तव में संत काव्य एक विद्रोही कवि की मनोभूमि से उद्भूत सहज सरल अभिव्यक्तियों का काव्य है। जैसे संत कवि आडम्बरों का विरोध करते थे, वैसे ही इन्होंने अपने काव्य को भी कृत्रिमता और प्रदर्शन की मनोवृत्ति से दूर रखा है। इनकी अभिव्यक्ति सहज और निश्छल है। न इनके यहाँ अलंकार प्रयोग के प्रति आकर्षण है और न परिष्कृत शब्दावली का मोह ही है। संत काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को अग्रांकित रूप में समझा जा सकता है—

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.8.1 निर्गुण ब्रह्म की उपासना – संत काव्य की पहली प्रवृत्ति निर्गुण ब्रह्म की उपासना रही है। इनका निर्गुण ब्रह्म बौद्ध साधकों के शून्य से पृथक् है। वह सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है और वही प्रत्येक जीवधारी की साँस में समाया हुआ है। वह वर्णन से परे है, उसका केवल अनुभव किया जा सकता है। इसी कारण कबीर ने स्पष्ट कहा था कि –

''पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उन्माद,
कहिबे कूँ सोभा नहीं, देख्या ही परवान॥''

2.8.2 मिथ्या आडम्बरों और रूढ़ियों का विरोध – संत कवियों ने मिथ्या आडम्बरों और रूढ़ियों का विरोध किया है। इसका प्रमुख कारण यह रहा है कि संत मत वज्रयानी सिद्धों और हठयोगियों के सिद्धान्तों से पर्याप्त प्रभावित रहा है। इन सिद्धों और योगियों ने सामाजिक बंधनों और आडम्बरों की कटु आलोचना की है। यही प्रवृत्ति संत काव्य के अंतर्गत मिलती है। कबीर ने तिलक, छापा, माला, रोज़ा, नमाज़ और योग की क्रियाओं को व्यर्थ बतलाया था और जो इन्हें मानते थे, उन्हें कड़ी फटकार देकर उन्हें सही मार्ग पर लाने का प्रयास किया था।

2.8.3 गुरु की महत्ता – संत काव्य में सभी संतों ने गुरु को विशेष महत्त्व दिया है। अधिकांश संतों ने गुरु को ईश्वर के समान माना है। समूचे संत काव्य में गुरु के महत्त्व का प्रतिपादन बहुत सरल किन्तु आकर्षक ढंग से हुआ है।

2.8.4 जाति-पाँति का विरोध – संत काव्य में जाति-पाँति के नियमों का खुला विरोध देखने को मिलता है। सभी संत यह मानकर चले हैं कि सृष्टि के सभी मनुष्य बराबर हैं और सभी को समान रूप से ईश्वर भक्ति का अधिकार है। **''जाति-पाँति पूछै नहिं कोई, हरि कौ भजै सो हरि का होई''** सिद्धान्त के आधार पर संत काव्य का विकास हुआ है। आचार्य शुक्ल के कथनानुसार जाति-पाँति के खंडन के पक्ष में सभी संत थे क्योंकि ये छोटी जाति के थे। कबीर स्वयं जुलाहा थे, रैदास चमार थे। इसके अतिरिक्त संतों ने हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के लिए एक ही सामान्य भक्तिमार्ग की उद्भावना की थी।

2.8.5 प्रेम की महत्ता – संत काव्य में प्रेम के महत्त्व को मुक्तकंठ से स्वीकार किया गया है। यह विवाद का विषय भले ही है कि प्रेमतत्त्व कहाँ से आया है, किन्तु संत कवि इसी तथ्य को सत्य बतलाते थे कि भक्ति के मार्ग में और प्रेम के मार्ग में कोई अंतर नहीं है। प्रेम का मार्ग स्वार्थ के त्याग, अहंकार के त्याग और समर्पण का मार्ग है। जो जितना समर्पण कर सकता है वह उतना ही बड़ा भक्त बन सकता है।

2.8.6 रहस्यवाद – प्रेम तत्त्व को महत्त्व देने के कारण ही संत काव्य में रहस्यवादी चेतना का विकास हुआ है। वैसे तो संत काव्य में खंडन-मण्डन की प्रवृत्ति के पर्याप्त दर्शन होते हैं, किन्तु प्रेम के एकान्त साम्राज्य में पहुँचकर ये और सब कुछ भूलकर **''जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहिर भीतर पानी''** देखने लगते हैं। सभी संतों की आत्मा प्रेमानुभूतियों से व्याकुल होकर ईश्वर प्राप्ति के लिए तड़पती रहती हैं। कबीर आदि संतों की वाणी में जिज्ञासा, उत्सुकता और मिलन आदि रहस्यवाद की सभी अवस्थाओं के दर्शन सरलता से हो जाते हैं।

2.8.7 नाम स्मरण एवं भजन पर जोर – गुरु द्वारा प्राप्त ईश्वर के नाम का स्मरण करने से, लगातार उसका भजन करने से ही मुक्ति सम्भव है। यह धारणा सभी संतों की रही है। वे मानते रहे हैं कि धार्मिक या आध्यात्मिक पोथियाँ पढ़ने से व्यक्ति माया-मोह के बंधनों से मुक्त नहीं हो सकता है। इसी भावना के कारण कबीर ने प्रेम का ढाई अक्षर पढ़ने की सलाह दी थी। नाम-स्मरण महत्त्व बतलाते हुए कबीर ने तो स्पष्ट कहा था –

''दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना,
राम नाम का मरम है आना।''

2.8.8 मार्मिक उक्तियाँ – संत काव्य में प्रेम को महत्त्व देने के कारण शृंगार के विरह पक्ष से जुड़ी हुई अनेक मार्मिक उक्तियाँ देखने को मिलती हैं। सभी संतों ने वियोग शृंगार की अभिव्यंजना पूरी मार्मिकता के साथ किया है। जहाँ मार्मिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना है, वहाँ पर संत काव्य कलात्मक सौन्दर्य लेकर सामने आया है। कबीर की साखियों में विरहिणी आत्मा की व्याकुलता को भलीभाँति देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ –

बहुत दिनन की जोवती बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसे पिव मिलन कौ, मन नाहीं बिसराम॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

आय न सकौं तुज्झ पै, सकौं न तुज्झ बुलाय।
जियरा यों ही लेहुगे, विरह तपाय तपाय॥

ये वे पंक्तियाँ हैं जिनमें न तो कृत्रिमता है और न प्रदर्शन की प्रवृत्ति है। यहाँ तो भावुकता का निर्झर सहज ही प्रवाहित होता हुआ दिखाई दे रहा है। ऐसी सरस और मार्मिक उक्तियों के कारण ही संत काव्य काव्यत्व से युक्त होकर सामने आया है।

2.8.9 माया का विरोध – माया का विरोध सभी संतों ने खुलकर किया है। समूचे भक्तिकाल में माया की निन्दाकी गयी है। माया को महाठगिनी बतलाते हुए उससे सावधान रहने की बात कही है। कबीर की ये पंक्तियाँ देखिए जिनमें माया का विरोध स्पष्टतः मुखरित हुआ है –

माया महाठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँस लिए कर डोलै बोलै मधुरी बानी॥
केशव के कमला होई बैठी, तीरथ हू में पानी।
जोगी के जोगिन होई बैठी, राजा के घर रानी॥
काहू के हीरा होई बैठी, काहू के कौडी कानी।
भक्तन के भक्तिन होइ बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी॥
कहै कबीर सुनौ भाई साधो, यह सब अथक कहानी॥

2.8.10 लोक-संग्रह की भावना – संत काव्य में लोक-संग्रह की भावना आद्योपान्त दिखाई देती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि सभी संत साधक बहुश्रुत थे। इन्होंने समस्त संप्रदायों का सारतत्त्व लेकर अपनी मान्यताएँ निश्चित की थीं। इतना ही नहीं, सभी संत गृहस्थ धर्म और जीवन के पोषक थे। जीवन से पलायन करना ये उचित नहीं मानते थे। इनका विश्वास था कि संसार में रहकर सभी उचित मानवीय कर्म करते हुए भी मुक्ति को प्राप्त किया जा सकता है। इसी मान्यता के कारण सभी संतों के काव्य में सामाजिकता और लोक-संग्रह की भावना प्रचुरता से व्यक्त हुई है। गुरु नानक का यह कथन **"किरन करौं अते वण्ड कै छकों"** अर्थात् कर्म करो और बाँट कर खाओ। संतों की लोक-संग्रह की भावना का ही द्योतक है। समाज सुधार का जो संकल्प इन कवियों ने लिया था, वह भी लोक-संग्रह की भावना से निकट जान पड़ता है।

2.8.11 लोकभाषा का प्रयोग – संतों ने साधारण धर्म को स्वीकार करते हुए लोकभाषा का प्रयोग किया है। इनकी भाषा में न तो कहीं आडम्बर है और न कहीं परिष्करण की प्रवृत्ति ही दिखाई देती है। घुमक्कड़ी वृत्ति के कारण इनकी भाषा में विभिन्न प्रान्तीय बोलियों के शब्द भले ही आ गये हों, किन्तु इनकी अभिव्यक्ति सीधी, सरल और सपाट रही है। इसी कारण इनकी भाषा को सधुक्कड़ी भाषा कहा गया है। संतों की वाणियों में अवधी, ब्रज, खड़ी बोली, पूर्वी हिन्दी, फारसी, अरबी, संस्कृत, राजस्थानी और पंजाबी आदि भाषाओं के शब्द मिलते हैं।

2.8.12 पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग – सभी संतों ने पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया है। इनके पारिभाषिक प्रयोगों में शून्य, अवधूत, निरंजन, आकाश, अनहद जैसे शब्दों को लिया जा सकता है। इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग के मूल में विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि ऐसे प्रयोगों से काव्यत्व कम हो गया है और कविता दुरुह हो गयी है। कल्पनात्मकता के अभाव के कारण पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से वाक्यों में क्लिष्टता आ गयी हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि संत काव्य एक विचित्र और आकर्षक काव्य रहा है। इसमें तत्कालीन अनेक काव्यधाराओं के सिद्धान्त देखने को मिलते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि संत काव्य ने भेद को अभेद में बदल दिया और द्वैत को अद्वैत की भूमिका पर लाकर भेदभाव रहित एक मानवीय संस्कृति की स्थापना की।

2.9 सूफ़ी काव्य

निर्गुण काव्यधारा की जो दो धाराएँ हिन्दी साहित्य में प्रवाहित हुई, उनमें संतों के अतिरिक्त सूफियों की एक ऐसी धारा रही है। इतिहास से पुष्ट होता है कि सूफ़ी धर्म इस्लाम धर्म का एक प्रधान अंग था। यद्यपि अनेक सूफ़ी संतों ने अपने आपको मुहम्मदी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मत से पृथक् करने की भरपूर चेष्टा की, किन्तु उनके उपदेशों पर भी मुहम्मद साहब की विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। विद्वानों की मान्यता है कि मुहम्मद साहब के जन्म से पहले सूफ़ी मत का उद्भव और विकास प्रारम्भ हो गया था। 12वीं शताब्दी के आसपास सूफ़ी संत भारत में आये। यहाँ आकर सूफी मत वेदान्त, हठयोग, प्राणायाम जैसी योगियों की विचारधारा से प्रभावित हुआ। कतिपय विद्वानों की धारणा है कि भारत में सूफी मत का प्रवेश ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती के भारत आगमन से हुआ। श्री परशुराम चतुर्वेदी सूफी मत से जुड़े हुए लोगों के भारत आगमन को विक्रम की 12वीं शताब्दी के प्रारम्भ से मानते हैं। यह निश्चित है कि भारत में सूफ़ी मत चार संप्रदायों के रूप में प्रचलित हुआ – चिश्तिया संप्रदाय, सोहरावर्दी संप्रदाय, कहिरिया संप्रदाय और नक्शबन्दिया संप्रदाय। कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये चारों संप्रदाय मूल रूप से एक ही मत को मानते थे। प्रेम की प्रधानता, सामाजिक समानता, मानव का महत्त्व एवं पूर्ण मानव का ईश्वर से अभेद आदि मान्यताएँ इन सभी संप्रदायों में स्वीकार की गयी हैं।

2.10 प्रमुख सूफ़ी प्रेमाख्यान

1. 'चंदायन' मौलाना दाऊद 781 हिजरी (1379 ई.)
2. 'मृगावती' कुतुबन 909 हिजरी (1503 ई.)
3. 'पद्मावत' जायसी 947 हिजिरी (1540 ई.)
4. 'मधुमालती' मंझन 952 हिजरी (1545 ई.)
5. 'चित्रावली' शेख उसमान 1022 हिजरी (1613 ई.)
6. 'ज्ञानदीप' शेख नबी 1026 हिजरी (1619 ई.)
7. 'कामलता' जान (1621 ई.)
8. 'पुहुपावती हुसैन अली 1138 हिजरी (1735 ई.)
9. 'हंस-जवाहिर' कासिम शाह 1139 हिजरी (1736 ई.)
10. 'इंद्रावती' नूर मुहम्मद 1147 हिजरी (1744 ई.)
11. 'अनुराग बाँसुरी' नूर मुहम्मद 1178 हिजरी (1774 ई.)
12. 'यूसुफ जुलेखा' शेख निसार 1025 हिजरी (1790 ई.)

2.11 सूफ़ी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

भक्तिकाल की निर्गुण काव्यधारा के अंतर्गत आने वाले सूफ़ी काव्य की कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जिनका उल्लेख पृथक् रूप से आवश्यक है। सूफ़ी काव्यधारा के विशिष्ट कवि तो जायसी ही हैं, किन्तु अन्य कवि भी उपेक्षणीय नहीं हैं। संक्षेप में सूफ़ी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नांकित हैं –

2.11.1 लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना – सूफी काव्यों में सर्वाधिक उल्लेखनीय विशेषता यह मिलती है कि इनमें लौकिक प्रेम कहानियाँ कही गयी हैं। सभी लौकिक प्रेम कहानियाँ अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना करती हैं। प्रबन्ध काव्यों की शैली को अपनाकर प्रेम कहानियों को विस्तार भी दिया गया है और प्रेम के संयोग और वियोग दोनों पक्षों को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है। सूफ़ी काव्यों में वर्णित प्रेम क्रमश: लौकिक से अलौकिक की ओर बढ़ता हुआ शारीरिक भूमिका को पार करता हुआ प्रेम के आध्यात्मिक शिखरों को छूता दिखाई देता है। प्रेम के मधुर स्वरूप और उसके मार्ग में पड़ने वाली बाधाओं के साथ-साथ विरह की तीव्रता सर्वत्र चित्रित हुई है।

2.11.2 प्रबन्ध-कल्पना – सूफ़ी काव्यों की दूसरी प्रवृत्ति प्रबन्ध कल्पना से सम्बंधित है। सूफियों ने प्रबन्ध काव्य लिखे हैं। इन काव्यों के कथानक पूरी तरह संगठित, सुसम्बद्ध, व्यवस्थित, रोचक और आकर्षक घटनाओं से युक्त हैं। इन प्रबन्ध काव्यों में जिन प्रेमी-प्रेमिकाओं का वर्णन हुआ है, वे अपने व्यवहार, कर्म दोनों ही दृष्टियों से सदाचारी दिखाये गये हैं। प्रबन्ध काव्यों में वर्णित लगभग सभी कहानियाँ एक जैसी हैं। सभी में प्रेम का कारण स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन, गुण-श्रवण या प्रत्यक्ष दर्शन ही रहा है। सभी प्रबन्ध काव्यों के नायक अपनी प्रिया को प्राप्त करने के लिए गृह-त्याग करके चल पड़े हैं और अंततः अपनी प्रियाओं को प्राप्त करने में सफल हुए हैं। इन प्रबन्ध काव्यों में वर्णनात्मकता पर्याप्त मात्रा में है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रायः सभी प्रेमाख्यानों में प्रकृति-वर्णन, सरोवर-वर्णन, महल-वर्णन, रूप-सौन्दर्य वर्णन आदि पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलते हैं। सभी सूफ़ी कवियों ने अपने प्रबन्धों का विधान इस रूप में किया है कि वे भाव, कल्पना, वर्णन और रहस्यात्मक अनुभूतियों के मिले-जुले रूप प्रतीत होते हैं।

2.11.3 चरित्रांकन — सूफ़ी काव्यों में जो नायक-नायिका व अन्य पात्र चित्रित हुए हैं, वे प्रेमी अधिक हैं। कवियों ने नायक-नायिकाओं के सम्पूर्ण जीवन का चित्र प्रस्तुत न करके उनके प्रेम प्रधान पक्ष को ही अधिक महत्त्व दिया है। प्रेम के विविधप्रसंग और व्यापार इन सभी सूफ़ी काव्यों में देखने को मिलते हैं। डॉ. शिवकुमार शर्मा का यह कथन समीचीन प्रतीत होता है कि ''सूफ़ी कवियों की नायिकाएँ ह्रासोन्मुख संस्कृत साहित्य की नायिकाओं के समान एक ही साँचे में ढली हुई हैं। उनमें जीवन के विविध घात-प्रतिघातों का अभाव है। नायक का स्वरूप भी प्रायः पूर्व निश्चित-सा प्रतीत होता है।''

2.11.4 लोक पक्ष का चित्रण — सूफ़ी प्रेमाख्यानों में जीवन के लोकपक्ष एवं हिन्दू संस्कृति का वर्णन गहराई से किया गया है। सर्वसाधारण के अंधविश्वास, मनौतियाँ, जादू-टोना, लोकोत्सव, लोक व्यवहार, तीर्थ, व्रत, सांस्कृतिक वातावरण और हिन्दू जीवन के विविध पक्षों का चित्रण सभी काव्यों में सफलतापूर्वक किया गया है। हिन्दू प्रेम कहानियों को लेकर सूफ़ी कवियों ने जो काव्य रचे हैं, उनमें न केवल हिन्दू घरों या परिवारों के रहन-सहन, आचार-विचार व व्यवहार का साँगोपाँग चित्रण देखने को मिलता है, बल्कि हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों, विश्वासों और मान्यताओं का वर्णन भी पूरी कुशलता से किया गया दिखाई देता है।

2.11.5 नारी प्रेम साधना की साध्य — सूफ़ी काव्यों को यदि ध्यान से देखें तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन सभी काव्यों की आलम्बन नारी बनी हुई है। नारी को इन कवियों ने सामान्य नारी न मानकर ईश्वरीय शक्ति का प्रतिरूप माना है और इसी कारण इसे आलम्बन बनाकर काव्य-सृजन किया है। परमात्मा का प्रतीक बनी हुई ये नारियाँ प्रेम भावना का लक्ष्य प्रतीत होती हैं। स्पष्ट शब्दों में कह सकते हैं कि जैसे कोई साधक ईश्वर प्राप्ति के लिए साधना करता है, उसी प्रकार सूफ़ी काव्यों के नायक साधक बनकर परमात्मा की प्रतीक बनी हुई नारियों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नरत दिखलाये गये हैं। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने इस सम्बन्ध में उचित टिप्पणी की है कि ''सूफ़ी कवियों ने नारी को यहाँ अपनी प्रेम-साधना के साध्य के रूप में स्वीकार किया है। इसके कारण वह इनके यहाँ किसी प्रेमी के लौकिक जीवन की भोग्य वस्तु मात्र नहीं रह गयी है।'' स्पष्ट शब्दों में नारी भोग्या न होकर एक शक्ति के रूप में चित्रित हुई है।

2.11.6 रस वर्णन — सूफ़ी काव्यों में शृंगार रस को प्रमुखता मिली है। संयोग और वियोग के सरस मार्मिक चित्र सभी सूफ़ी काव्यों में देखने को मिलते हैं। इन कवियों द्वारा किये गये विरह वर्णन में रसात्मकता, अनुभूतिपरकता, सूक्ष्मता और ऐसी प्रभावी शक्ति निहित है कि पाठक ऐसे अंशों को पढ़ते समय उसी में निमग्न हो जाता है। कहीं-कहीं अश्लीलता भी आ गयी है, किन्तु यह अश्लीलता ऐसी नहीं है जिसे पढ़कर हम नाक-भौं सिकोड़ने लगें। इस अश्लीलता ने रसाभाव को भी काव्य में नहीं आने दिया है। शृंगार रस के अतिरिक्त अधिक महत्त्व करुण और शान्त को मिला है, किन्तु अन्य रस जैसे वीर, वीभत्स आदि भी यत्र-तत्र देखने को मिल जाते हैं।

2.11.7 मण्डनात्मकता — सूफ़ी काव्यों की एक उल्लेखनीय विशेषता मण्डनात्मकता की प्रवृत्ति है। सभी सूफ़ी कवियों ने हिन्दू मुस्लिम जातियों में धार्मिक एकता का श्रीगणेश किया था और खंडनात्मक पक्ष को छोड़कर लोकहितकारी और मण्डनात्मक पक्ष को ग्रहण किया था। यही कारण है कि सूफ़ी काव्यों में खंडन नहीं है, निर्गुण कवियों की भाँति वहाँ विरोध का भाव कहीं नहीं है। वहाँ तो लोक-हितकारक स्थितियाँ ही चित्रित हुई हैं। आचार्य शुक्ल का यह कथन उचित ही है कि 'प्रेमस्वरूप ईश्वर को सामने रखकर सूफ़ी कवियों ने हिन्दू और मुसलमानों को मनुष्य के समान रूप में दिखलाया है तथा प्रेमभाव को महत्त्व देकर भेद-बुद्धि को हटाने का सफल प्रयास किया है।'

2.11.8 भाषा-शैली और अलंकार — सूफ़ी काव्य के सभी रचयिताओं ने प्रायः अवधी भाषा को अपनाया है। यह बात अलग है कि कहीं-कहीं अन्य क्षेत्रीय बोलियों के शब्द भी इन काव्यों में देखने को मिलते हैं। बीच-बीच में मुहावरों के प्रयोग से भाषा प्रौढ़ और अभिव्यक्ति अधिक सक्षम रूप लेकर सामने आयी है। प्रमुख रूप से दोहा और चौपाई को अपनाया गया है। अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का प्रयोग बहुतायत से मिलता है, किन्तु अन्योक्ति, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, रूपकातिशयोक्ति तथा संदेह और भ्रम जैसे अलंकार भी आवश्यकतानुसार प्रयुक्त किए गये हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

संक्षेप में कह सकते हैं कि सूफी काव्य भक्तिकाल का एक ऐसा काव्य है जिसमें प्रेम को महत्त्व देकर उसके उदात्त व अलौकिक पक्ष को उद्घाटित करते हुए सांस्कृतिक वैभव को भी अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है।

2.12 सगुण भक्तिधारा

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के अंतर्गत जो सृजन हुआ, वह विविध प्रभावों से प्रेरित होकर सामने आया। निर्गुण काव्यधारा के भक्तों ने यदि ज्ञान को महत्त्व दिया तो सगुण भक्ति काव्य के सर्जकों ने ईश्वर के साकार रूप की उपासना की। ये सगुण भक्त यह मानकर चले कि ईश्वर भले ही निर्गुण, निराकार हो, किन्तु यह जगत् के उद्धार के लिए, धर्म की स्थापना के लिए, साधु और संतों की सुरक्षा के लिए ही नहीं, बल्कि भक्तों की प्रतिष्ठा के लिए भी शरीर धारण करके पृथ्वी पर अवतरित होता है। सगुण भक्तों ने अपनी लेखनी से जो लिखा है उसमें यही भाव व्यक्त हुए हैं। इन सगुण भक्तों की कविताओं में हृदय की शुद्ध भक्ति भावना को देखा जा सकता है। यह भक्ति वैष्णव भक्ति से उत्पन्न हुई थी और इसका सम्बन्ध भागवत धर्म से रहा है। सगुण मतवाद प्रमुख रूप से भागवत और वाल्मीकि रामायण से अधिक प्रभावित हुआ है। इनके अतिरिक्त स्मार्त ग्रंथों का प्रभाव भी सगुण भक्त कवियों पर दिखाई देता है। सगुण भक्तों की धारा भी एक जैसी नहीं रही है। इसमें भी एक ओर तो राम को ईश्वर मानकर राम-भक्ति का प्रचार-प्रसार हुआ है और दूसरी ओर कृष्ण को आराध्य मानकर कृष्ण भक्ति का विकास हुआ है। इस प्रकार सगुण भक्ति काव्य दो धाराओं में विभाजित होकर सामने आया है – रामभक्ति धारा और कृष्णभक्ति धारा। ये दोनों धाराएँ सगुण भक्ति के रस से प्लावित होकर प्रभावित हुई हैं।

2.12.1 रामभक्ति धारा

रामभक्ति धारा सगुण भक्ति की एक ऐसी काव्यधारा है, जिसमें रामभक्ति को विशेष महत्त्व मिला है। इस धारा के प्रमुख कवि के रूप में तुलसीदास का नाम लिया जाता है। तुलसी के पूर्व हिन्दी में जो रामकाव्य लिखा गया, वह प्राय: अप्रकाशित रहा है। विद्वानों की मान्यता है कि तुलसी के पूर्व रामभक्त कवियों में विष्णुदास कानाम उल्लेखनीय है जिन्होंने वाल्मीकीय रामयण का हिन्दीकरण किया है। ईश्वरदास ने भी भरत मिलाप और अंगद पैर नाम जो रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। कुछ जैन कवियों ने भी रामकथा सम्बन्धी ग्रंथों का प्रणयन किया है। ऐसे ग्रंथों में रावण मन्दोदरी संवाद, राम-रास, हनुमन्त-रास, हनुमान चरित आदि ग्रंथ उल्लेखनीय हैं। रामभक्ति धारा की परम्परा में अग्रदास को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जो भी हो, इतना निश्चित है कि तुलसीदास रामकाव्य परम्परा के ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी भाषा और साहित्य के श्रेष्ठ कवि के रूप में सामने आये हैं। रामभक्तिधारा के अन्य कवियों में स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्रियादास, प्राणचंद चौहान, हृदयराम, केशवदास, आदि प्रमुख हैं।

2.12.1.1 राम काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ – भक्तिकाल की सगुण काव्यधारा में रामकाव्य धारा का अपूर्व महत्त्व है। रामभक्ति धारा में अनेक कवि हुए, किन्तु राम भक्ति धारा का साहित्यिक महत्त्व अकेले तुलसीदास के कारण है। **इस धारा के अन्य कवियों और तुलसीदास में अंतर तारागण और चंद्रमा का नहीं, बल्कि तारागण और सूर्य का है। तुलसी की आभा के सामने वे साहित्याकाश में रहते हुए भी चमक न सके।** इसलिए इस धारा का अध्ययन मुख्यत: तुलसीदास में ही केन्द्रित करना होगा। इस काव्य धारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं –

2.12.1.2 रामचरित प्रमुख विषय – राम काव्यधारा की प्रमुख विशेषता यह है कि इसके सभी कवियों ने विष्णु के अवतार भगवान राम को ही अपनी कविता का विषय बनाया है। इसके राम शील, शक्ति और सौन्दर्य की साकार प्रतिमा हैं।

2.12.1.3 सेवक-सेव्य भाव की भक्ति – इस धारा के कवियों ने ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को अधिक महत्त्व दिया है। इसलिए कहा गया है "ज्ञान कठिन है, भक्ति सरल।" इस काव्यधारा के कवियों की भक्ति दास्य भाव की है। उन्होंने स्वयं को भगवान राम का सेवक माना है तथा राम को अपना स्वामी माना है। इस प्रकार की भक्ति के कारण ही इस काव्य में लघुता, दैन्य, उदारता, आदर्शवादिता, नम्रता आदि भावों की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है।

2.12.1.4 स्वान्त: सुखाय रचना – रामभक्ति धारा की एक प्रमुख प्रवृत्ति यह भी है कि इसमें अधिकांश शतः कवियों ने स्वांत: सुखाय काव्यों की रचनाएँ की हैं। उन्होंने किसी राजा-महाराज या विशिष्ट व्यक्ति का गुणगान नहीं किया है।

2.12.1.5 समन्वय की भावना – राम काव्यधारा में समन्वय की भावना के दर्शन होते हैं। इस काव्यधारा के कवियों ने अपने समय के प्रचलित विभिन्न मतों एवं विचारधारा का समन्वय स्थापित करके लोक-कल्याण के मार्ग को आगे बढ़ाया। रामभक्त कवियों

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

ने मुख्यत: सगुण एवं निर्गुण भक्ति के भेदभाव को **''अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा''** के आधार पर दूर करने का प्रयत्न किया। रामभक्त कवियों ने ज्ञान, भक्ति और कर्म में सुंदर समन्वय स्थापित किया। भाव यह है कि इस काव्य धारा के कवियों ने समन्वय की भावना को विशिष्ट रूप में प्रस्तुत किया है।

2.12.1.6 शिवम् की भावना – राम काव्यधारा में शिवम् की भावना अर्थात् लोक-मंगल की भावना के दर्शन होते हैं। इस काव्य की यह प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य को अपूर्व देन है। इस काव्यधारा के कवियों ने समाज को निवृत्ति की ओर अग्रसर नहीं किया, वरन् सामाजिक कर्त्तव्यों की पूर्ति करते हुए उच्च भूमि को प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान की है।

2.12.1.7 मर्यादा की प्रधानता – इस शाखा की एक प्रधान विशेषता यह है कि इसमें लोक-मर्यादा को विशेष महत्व दिया गया है। उसी का परिणाम है कि इस काव्यधारा में भारतीय जीवन का मर्यादित और संयत रूप देखने को मिलता है। इसमें जिन पात्रों का चित्रांकन किया गया है, वे सदैव ही मर्यादा का ध्यान रखते हैं। जैसे राम माता के सामने सीता को समझाने में संकोच करते हैं, राजा दशरथ वचनों की मर्यादा में बंधे होने के कारण राम को न चाहते हुए भी वन जाने की आज्ञा देते हैं, सीताजी कोई भी बात मर्यादा के कारण ही अपनी सासों के समक्ष स्पष्ट नहीं कह पाती हैं। इस काव्यधारा के कवियों ने श्रृंगार चित्रण के निरूपण में भी मर्यादा का ध्यान रखा है।

2.12.1.8 आदर्शवादिता – राम काव्यधारा में मर्यादावाद के साथ-साथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदर्शवादी सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है। इसी का परिणाम है कि इस काव्यधारा में आदर्श स्वामी, सेवक, माता-पिता, भाई, राजा, गुरु, पूजा आदि के दर्शन होते हैं। आदर्श सम्राट हैं, अयोध्यावासी आदर्श प्रजा हैं, भरत आदर्श भाई हैं तथा हनुमान आदर्श सेवक हैं। आदर्श पुत्र के गुण देखिए –

''सुन जननी सोई सुत बड़ भागी, जो पितु मातु चरन अनुरागी।''

2.12.1.9 रस योजना – विष्णु के अवतार पुरुषोत्तम राम के जीवन का समग्र वर्णन करने के लिए इस काव्य में श्रृंगार, वीर, करुण, रौद्र, हास्य, वात्सल्य, अद्भुत आदि रसों का सुंदर परिपाक हुआ है। इस काव्यधारा के श्रृंगार रस में उच्छृंखलता और अश्लीलता के दर्शन नहीं होते हैं।

2.12.1.10 चरित्रांकन – राम काव्य में जिन पात्रों का कवियों ने समावेश किया है, उनका अत्यन्त सजीव और स्वाभाविक रूप में चरित्रांकन किया है। राम काव्यधारा के कवियों ने अपने काव्य में सद् और असद् दोनों प्रकार के पात्रों का प्रयोग किया है। सद् पात्रों के अंतर्गत राम, लक्ष्मण, भरत, दशरथ, सीता, कौशल्या आदि आते हैं और असद् पात्रों की श्रेणी में रावण, बाली, खरदूषण आदि आते हैं।

2.12.1.11 जीवन की अनेक रूपता का वर्णन – राम काव्यधारा के कवियों ने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष पर कुछ प्रकाश अवश्य डाला है। यदि राम काव्यधारा के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'रामचरितमानस' का अवलोकन करें तो उसमें जीवन की विविध समस्याओं और कर्त्तव्यों के समझने में बड़ी सहायता मिलती है। भाव यह है कि जीवन का ऐसा कोई भी पक्ष नहीं है, जिसका स्पर्श इस काव्यधारा के कवियों ने नहीं किया हो।

2.12.1.12 अवतारवादी भावना – राम काव्यधारा में अवतारवादी भावना के भी दर्शन होते हैं। इस काव्यधारा के कवियों ने अपने आराध्य रामचंद्रजी को सच्चिदानन्द ब्रह्म माना है। उनका विश्वास है कि भगवान राम ने अधर्म का विनाश करने के लिए तथा भक्तों पर कृपा करने के लिए नर रूप धारण किया है।

2.12.1.13 दार्शनिकता – राम काव्यधारा में दार्शनिकता की विशेषता भी दृष्टिगत होती है। इसी का फल है कि काव्यधारा के कवियों ने जीव, ब्रह्म और संसार के विषय में अपने विचार प्रकट किए हैं। इन्होंने जीव को ब्रह्म का अंश माना है, परन्तु जीव माया के प्रभाव में आकर ब्रह्म से पृथक् हो जाता है। राम भक्त की दार्शनिकता का आधार रामानुजाचार्य का विशिष्टा द्वैतवाद है। वैसे कहीं-कहीं पर अद्वैतवाद की भावना के भी दर्शन होते हैं।

2.12.1.14 प्रकृति चित्रण – राम काव्यधारा में प्रकृति चित्रण की छटा भी देखने को मिलती है। इस काव्यधारा के कवियों ने उद्दीपन, आलंकारिक, उपदेशात्मक और मानवीकरण के रूप में प्रकृति का चित्रण किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.12.1.15 अवधी एवं ब्रजभाषा का प्रयोग – इस काव्यधारा की प्रमुख विशेषता यह भी है कि इसमें अवधी और ब्रज दोनों ही भाषाओं का प्रयोग किया गया है। तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'रामचरितमानस' की रचना अवधी भाषा में की है। इसके अतिरिक्त इन्होंने विनय-पत्रिका, कवितावली, गीतावली आदि की रचना के लिए ब्रजभाषा को अपनाया है। इस काव्यधारा के कवियों का अवधी और ब्रजभाषा पर पूर्ण अधिकार था।

2.12.1.16 छंद योजना – राम काव्यधारा के कवियों ने आदिकाल के छप्पय, संत काव्य के दोहा, सूफ़ी काव्य के चौपाई छंदों को अपने काव्य में स्थान दिया है। इसके अतिरिक्त इन कवियों ने सोरठा, सवैया, घनाक्षरी, कुण्डलिया, तोमर, त्रिभंगी जैसे छंदों का भी प्रयोग किया है। केशव की 'रामचंद्रिका' तो छंदों का अजायबघर ही माना जाता है।

2.12.1.17 अलंकार योजना – जिस प्रकार इस काव्यधारा के कवियों ने छंदों के प्रयोग में विविधता का परिचय दिया है उसी प्रकार आचार्य केशव ने अलंकारों की 'रामचंद्रिका' में भरमार कर दी है, वैसे तुलसीदास के काव्य में प्राय: सभी अलंकार उपलब्ध हो जाते हैं परन्तु उन्होंने अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक और सजीव रूप में किया है। इस काव्यधारा के कवियों ने अधिकांश रूप में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग किया है।

2.12.1.18 विविध काव्य शैलियों का प्रयोग – राम काव्यधारा में विविध शैलियों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। इसमें वीरगाथाओं की पद्धति की गीता पद्धति और रीति पद्धति के दर्शन होते हैं। वैसे राम काव्यधारा में प्रबन्ध और मुक्तक शैली का प्रयोग उपलब्ध होता है। तुलसी द्वारा रचित 'रामचरितमानस' महाकाव्य है, गीतावली और कवितावली मुक्तक रचनाएँ हैं और रामचंद्रिका प्रबन्ध और मुक्तक के मध्य की वस्तु है।

हिन्दी साहित्य में राम काव्यधारा का अद्वितीय महत्त्व है। इस काव्यधारा को रामानुजाचार्य के परम शिष्य रामानन्द ने जनता के सामने रखा। इसमें तुलसी, अग्रदास, नाभादास, केशवदास, सेनापति, प्राणचंद चौहान आदि कवि हुए हैं। इस काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि 'तुलसीदास' हैं।

2.13 कृष्ण भक्तिधारा

जिस प्रकार रामानुजाचार्य से प्रभावित होकर स्वामी रामानन्द ने रामभक्ति का प्रचार किया था, उसी प्रकार निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य और विष्णु स्वामी के आदर्शों को सम्मुख रखकर चैतन्य महाप्रभु तथा वल्लभाचार्य ने जनता को कृष्ण भक्ति का संदेश दिया। यद्यपि श्रीराम एवं श्रीकृष्ण में देवत्व की भावना का समावेश लगभग साथ ही हुआ था तथापि माधुर्य भाव से युक्त होने के कारण कृष्ण भक्ति को अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। हिन्दी में कृष्ण भक्ति का प्रसार वल्लभाचार्य ने किया। उन्होंने 'भागवत पुराण' के आधार पर प्रेम-लक्षणा भक्ति को अपनाया। इस भक्ति-पद्धति में आत्म चिन्तन की अपेक्षा आत्म समर्पण की भावना को मुख्य स्थान दिया जाता है।

वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैतवाद और पुष्टिमार्ग नामक दो भक्ति सिद्धान्तों की स्थापना की। इनके द्वारा उन्होंने भक्त को ईश्वर का अनुग्रह (पुष्टि) प्राप्त करने की सरल विधि बतलाई। उनके भक्ति मत में अनेक वैष्णवों ने दीक्षा ली और इस प्रकार कृष्ण भक्ति का क्षेत्र विस्तार हुआ। उनके सिद्धान्तों को मानकर कृष्ण भक्ति का विकास करने वाले कवियों में अष्ट छाप के कवि प्रमुख हैं। अष्ट छाप की स्थापना वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ ने की थी। कृष्ण भक्तिधारा के प्रमुख कवियों में सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी आदि हैं।

2.13.1 प्रमुख प्रवृत्तियाँ – हिन्दी साहित्य में कृष्ण काव्यधारा का अपना विशिष्ट स्थान है। इस काव्यधारा के साहित्य में आनन्द और उल्लास का अनोखा रूप देखने को मिलता है। इस काव्यधारा की भावात्मक और कलात्मक विशेषताएँ संक्षेप में इस प्रकार विवेचित की जा सकती हैं।

2.13.1.1 कृष्ण लीलाओं का निरूपण – कृष्ण काव्यधारा की यह प्रधान विशेषता है कि इसमें श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का गान किया गया है। कृष्ण भक्त कवियों ने विशेष रूप से अपने उपास्य देव की बाल क्रीड़ा और किशोर जीवन की लीलाओं का निरूपण किया है। इन लीलाओं में रासलीला, दानलीला, मानलीला, भावनलीला, वंशीवादन, गौए चराना, चीरहरण प्रमुख हैं। कृष्ण की विविध लीलाओं के निरूपण का उद्देश्य अखंड आनन्द और जीवन की आध्यात्मिक परिपूर्णता की अभिव्यक्ति करना है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.13.1.2 सख्यभाव की भक्ति – इस धारा की यह भी एक विशेष प्रवृत्ति है कि इसकी भक्ति में सख्य एवं कान्ता भाव की प्रधानता है। सख्य भाव की प्रधानता के कारण ही इस धारा के भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण को अपना मित्र माना है तथा इसी भाव से उसकी उपासना की है। एक मित्र की तरह कृष्ण भक्त कवियों ने उन्हें विविध प्रकार के उपालम्भ दिये हैं। इसके साथ ही इस काव्यधारा के काव्य में दास्य भाव की भक्ति तथा नवधा भक्ति के दर्शन भी होते हैं।

2.13.1.3 शृंगार और वात्सल्य रस की प्रधानता – इस काव्यधारा में शृंगार और वात्सल्य रस की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। शृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का निरूपण किया गया है, परन्तु वियोग या विप्रलम्भ शृंगार में अधिक सजीवता, स्वाभाविकता, मधुरता और मार्मिकता के दर्शन होते हैं।

वात्सल्य रस के निरूपण में भक्त कवि अद्वितीय हैं। इन कवियों ने वात्सल्य को भी शृंगार की भाँति वियोग वात्सल्य और संयोग वात्सल्य दो रूपों में प्रस्तुत किया है।

2.13.1.4 विषयवस्तु में मौलिकता – कृष्ण काव्यधारा के कवियों ने अपने काव्य में कृष्ण सम्बन्धी जिस वस्तु को प्रस्तुत किया है उसमें मौलिकता का परिचय दिया है। मध्यकाल में कृष्ण की कथा का आधार भागवत है, परन्तु कृष्ण काव्यधारा के कवियों ने इसे उसी रूप में नहीं अपनाया जिस रूप में भागवत में है। इस धारा के कवियों ने कृष्ण की कथा में पर्याप्त मौलिकता का परिचय दिया है। जैसे भागवत के कृष्ण निर्लिप्त हैं, परन्तु हिन्दी कवियों के कृष्ण आसक्त तथा लौकिकता का विशेष भाव लिये हुए हैं।

2.13.1.5 त्याग भावना – कृष्ण काव्यधारा के कवियों की एक विशेषता यह भी है कि उन्हें कोई सांसारिक लोभ-लालच नहीं था। वे लोक में मान तथा धन के इच्छुक नहीं थे। उनको कृष्ण का गुणगान ही विशेष प्रिय था। उन्होंने किसी भी राजा के दरबार में जाकर अपनी कविता का गान नहीं किया और न किसी राजा का अपनी कविता में वर्णन ही किया।

2.13.1.6 भ्रमरगीत का वर्णन – कृष्ण काव्यधारा के प्रायः सभी कवियों ने अपने भाव प्रकट करने के लिए भ्रमरगीत गाये। इस प्रकार के गीतों का प्रसंग विरह वर्णन शीर्षक से अधिक हुआ है। विरह दग्धा गोपियाँ उद्धव को खरी-खोटी सुनाने के उद्देश्य से एक भौंरे को सम्बोधित कर अपने मन के भाव प्रकट कर देती हैं। इस प्रकार गोपियाँ भ्रमर का आश्रय लेकर उद्धव एवं श्रीकृष्ण को भी भला-बुरा कहकर अपने मन की बातें कह डालती हैं। हिन्दी में यह परम्परा 'भ्रमरगीत' के नाम से प्रसिद्ध है। कृष्ण भक्त कवियों ने इसका बड़ी तन्मयता एवं कुशलता से वर्णन किया है।

2.13.1.7 लोक जीवन की अवहेलना – कृष्ण काव्यधारा के अंतर्गत लोक जीवन की उपेक्षा का भाव दिखाई देता है। इसका कारण यह रहा है कि इस काव्यधारा के कवि अपने आराध्य देव की विविध लीलाओं के निरूपण में संलग्न रहे, उन्हें जनजीवन की ओर उन्मुख होने का अवसर ही प्राप्त नहीं हो सका।

2.13.1.8 चरित्रांकन – कृष्ण काव्यधारा के अन्तर्गत चरित्रांकन की विविधता राम काव्यधारा की तरह प्राप्त नहीं होती है। कृष्ण काव्य में राधा, कृष्ण, गोपी तथा उनके विविध चित्रों का चरित्रांकन किया है। कृष्ण काव्य के इन सभी पात्रों के चित्रण की विशेषता है – प्रतीकात्मकता। राधा माधुर्य भाव की भक्ति का प्रतीक है, श्रीकृष्ण परमात्मा हैं और गोपियाँ जीवात्माएँ। वे निरन्तर प्रेम से व्याकुल होकर परम आनन्दधाम कृष्ण में लीन होने के लिए व्याकुल रहतो हैं।

2.13.1.9 प्रकृति चित्रण – इस काव्यधारा के कवियों ने अपने काल में प्रकृति का उद्दीपन और आलंकारिक रूप में विशेष चित्रण किया है। उद्दीपन रूप में इन्होंने यमुना की तरंगों, वन, उपवन आदि का अपूर्व वर्णन किया है।

2.13.1.10 दार्शनिकता – कृष्ण काव्यधारा के अंतर्गत दार्शनिकता की प्रवृत्ति के भी दर्शन हो जाते हैं। यह काव्यधारा मुख्य रूप से पुष्टिमार्ग तथा राधावल्लभ संप्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तों से प्रभावित है। श्रीकृष्ण ब्रह्म हैं, वे नित्य हैं, वे अपनी आनन्ददायिनी शक्ति राधा के साथ विविध प्रकार की क्रीड़ाएँ करते हुए पुष्टि जीव गोपियों को बंधन से मुक्त करके सुख की अनुभूति करते हैं। गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में सिक्त होकर निर्वाण की आकांक्षा नहीं करती हैं।

2.13.1.11 अलौकिक प्रेम – इस काव्यधारा में प्रेम का उत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है। कृष्ण भक्त कवियों का प्रेम रीतिकालीन कवियों की तरह सांसारिक या लौकिक नहीं है। उसमें कलुषता, अश्लीलता और निम्नता के स्थान पर पवित्रता, उच्चता और अलौकिकता के दर्शन होते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

2.13.1.12 भगवान के सगुण रूप की प्रधानता – कृष्ण काव्यधारा के कवियों ने भगवान् के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को माना, परन्तु भक्ति के क्षेत्र में उन्होंने निर्गुण परम्परा का खंडन किया है, क्योंकि वह मन, वाणी और कर्म से अगम्य है।

2.13.1.13 काव्य शिल्प – कृष्ण काव्यधारा की काव्य शिल्प विषयक विशेषताएँ भी भावात्मक विशेषताओं से कम नहीं हैं। इस धारा की एक विशेषता यह है कि इसके कवियों ने अपनी भावनाओं को मुक्तक काव्य के रूप में प्रस्तुत किया है। इस धारा के कवियों ने प्रमुख रूप से तो अपने साहित्य में पद छंद का प्रयोग किया है, परन्तु इसके अतिरिक्त चौपाई, दोहा, रोला, सोरठा, सवैया, छप्पय, कुण्डलिया, गीतिका, हरिगीतिका आदि छंदों का प्रयोग भी दृष्टिगत होता है। इन कवियों ने अपने साहित्य में अलंकारों का प्रयोग बड़े स्वाभाविक और सजीव रूप में किया है।

2.14 निष्कर्ष

भक्तिकाल का श्रेष्ठतम काव्य सगुण भक्ति काव्य है। सगुण भक्ति काव्य में मध्ययुगीन हिन्दू जनता में जिस रूप में ईश्वर-विश्वास पैदा किया, वह अभूतपूर्व था। हिन्दू जनता निराशा की मनोदशा में जी रही थी। उस मनोदशा से निकालने के काम भक्त कवियों ने किया। इसे भक्ति काव्य की बहुत बड़ी देन कहा जा सकता है। इतना ही नहीं, इस काल के कवियों ने लोक-मानस को आश्वस्त करने में माता-पिता, पिता-पुत्र, स्वामी-सेवक, पति-पत्नी, भाई-बहिन, राजा-प्रजा आदि पारिवारिक एवं सामाजिक सम्बन्धों का वर्णन किया। इन कवियों ने सम्पूर्ण मानवीय सम्बन्धों को आदर्श की भूमिका प्रदान की। तुलसी का 'रामचरितमानस' इस दिशा में एक श्रेष्ठ ग्रंथ है। उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का 'स्वर्ण युग' है।

2.15 अभ्यास प्रश्नावली

1. भाक्तिकाल की कृष्णभक्ति शाखा पर प्रकाश डालिए।
2. भक्तिकाल की रामभक्त शाखा पर प्रकाश डालिए।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-3 : कबीर

संरचना

3.0 कवि परिचय

3.1 सप्रसंग महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

3.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

3.2.1 अति लघुत्तरात्मक प्रश्नोत्तर

3.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

3.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

3.3 सारांश

3.0 कवि परिचय

संत कबीर की जीवनी का निर्धारण अभी तक जनश्रुतियों और किंवदन्तियों पर ही आधारित है। कबीर पंथी इन्हें सत्पुरुष कहते हैं। इनका जन्म कब और कहाँ हुआ, इस संदर्भ में आज तक विद्वानों में मतभेद रहा है। ऐसा माना जाता है कि इनका जन्म एक विधवा ब्राह्मिणी की कोख से हुआ था। लोक-लाज और सामाजिक मान-मर्यादा के कारण इन्हें एक अज्ञात स्थान पर ''लहरतारा'' नामक तालाब के किनारे छोड़ दिया गया था। कबीर पंथियों का यह विश्वास है कि सत्पुरुष कबीर का तेज ''लहरतारा'' नामक तालाब में सं. 1455 वि. ज्येष्ठ सुदी सोमवार को अवतरित हुआ था। इस तालाब को 'तरणतारा' भी कहा जाता है। जुलाहा दम्पत्ति नीमा और नीरू ने कमल-पत्र पर सोये इस बालक को प्राप्त किया और उसका लालन-पालन किया। कबीर का परिचय ''प्रसंग परिजात'' नामक ग्रंथ में मिलता है। इस ग्रंथ में उनकी जन्मतिथि का सही उल्लेख तो नहीं मिलता है, परन्तु उनके जन्म-मरण काल के विषय में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। मेकालिक ने उनका जन्म समय 1398-1518 ई. माना है तो बील ने 1490 ई. और हंटर ने 1300 से 1420 ई. तथा फर्कुहर ने 1400-1518 तक तथा स्मिथ ने 1440 से 1518 ई. माना है। इनके जन्म संदर्भ में एक दोहा भी प्रसिद्ध है –

चौदह सौ पचपन साल गये, चन्द्रवार एक ठाठ ठये।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रकट भये॥

अर्थात् 1455 वि. की ज्येष्ठ पूर्णिमा को कबीर का जन्म हुआ था। विद्वानों का विचार है कि इस वर्ष की ज्येष्ठ पूर्णिमा सोमवार को नहीं थीं। ज्येष्ठ पूर्णिमा सोमवार की सं. 1456 वि. में पड़ती है। यदि इसे माना जाये तो कबीर का जन्म सं. 1456 वि. (1399) ई. में हुआ था। डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने कबीर के काल निर्धारण में मैकालिक को प्रमाण मान कर लिखा है कि वे 1398 से 1518 तक विद्यमान थे।

कबीर की मृत्यु के विषय में भक्तमाल की टीका में लिखा है –

पन्द्रह सौ उनचास में, मगहर कीन्हो गौन।
अगहन सुदी एकादशी, मिलौ पौन सों पौन॥

कबीरदास का विवाह बाल्यावस्था में 'लुई' नामक कन्या के साथ सम्पन्न हुआ और इन्हें एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति भी हुईजिसका नाम 'कमाल' था। कबीरदास अनपढ़ थे। इस बात को प्रस्तुत पंक्ति से स्पष्ट किया जा सकता है –

मसि कागद छुऔ नहीं, कलम गही नहिं हाथ।

कबीर के गुरु रामानन्द थे, उन्हीं से राम नाम का गुरु मंत्र प्राप्त किया था। सत्संगति में रहकर ही उन्होंने अपने ज्ञान में निरन्तर वृद्धि की थी। चूंकि कबीर साधु-संतों के साथ रहते थे तो उनकी भाषा भी अनेक भाषाओं का सम्मिश्रण बन गई। विद्वानों ने कबीर की भाषा को 'सधुक्कड़ी' भाषा का नाम दिया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि 'पन्द्रहवीं शताब्दी' में कबीर सबसे अधिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शक्तिशाली और प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व के धनी थे। वे न मुसलमान थे और न हिन्दू ही थे।'' उस समय कबीर उस मिलन बिन्दु पर खडे थे जहाँ हिन्दुत्व और मुस्लिमत्व का कोई अर्थ नहीं था। कबीर अधिकतर मंदिरों में रहकर संतों से ज्ञानार्जन कर रहे थे, जिससे राम के प्रति उनका आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रबल बना। किंतु जब उन्होंने समाज की दयनीय स्थिति को देखा तो उनका मन विचलित हो गया। उस समय समाज की अनेक कुरीतियाँ जनसाधारण को खोखला किये जा रही थी, जिनमें आर्थिक असमानता का अन्तराल, धार्मिक आडम्बर, छुआ-छूत, जाति-भेद, बालविवाह, सतीप्रथा आदि परवान चढ़े हुए थे। इधर कबीरदास राम उपासक थे किन्तु उनके राम दशरथ नन्दन नहीं बल्कि निराकार ब्रह्म के रूप में बन गए थे। उन्होंने कहा कि उनके राम अनुभवगम्य हैं जिनका वर्णन संभव नहीं है। वे सर्वव्यापी हैं उन्हें ज्ञान के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। अज्ञान के रहते राम को प्राप्त करना असंभव है।

कस्तूरी कुण्डलि बसै, मृग ढूंढे बन माहि।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहि॥

कबीर के राम निर्गुण निराकार हैं –

''जाके मुंह माथा नहीं, नाही रूप कुरूप।
पुहुप वास ते पातरा, ऐसा तत्व अनूप॥''

पुष्प के पत्तों में जिस प्रकार खुशबू का अनुभव किया जा सकता है, उसी प्रकार ईश्वर राम का अनुभव ज्ञान के द्वारा गूंगे के गुड़ की भाँति आनन्दानुभव किया जा सकता है।

कबीर सिद्धों और नाथों की चिन्तनधारा और साधना विधि से प्रभावित रहे हैं। सिद्धों की रचनाओं में जिस सहज समाधि का परिचय हम प्राप्त कर चुके हैं, उसका अवलम्ब अपनी साधना में कबीर ने भी ग्रहण किया है। कबीर की रचनाओं पर विचार करने से इस प्रकार की धारणा बनती है कि वे अद्वैतवादी सिद्धान्त से भी किसी-न-किसी रूप में प्रभावित थे। अद्वैतवादी सिद्धान्त के अनुकूल ही वे अपनी रचना में जीव और ब्रह्म के सम्बंध को हिम और जल, कुंभ और जल के पारस्परिक सम्बंधों को दृष्टान्त रूप में प्रस्तुत कर स्पष्ट करते हैं –

''पानी ही से हिम भया, हिम है गया बिलाय।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाय॥''
''जल में कुम्भ-कुम्भ में जल, सो भीतर बाहर पानी।
फूटा कुम्भ जल-जल ही समाना, यह तत बुझै गियानी॥''

कबीर की रचनाओं से यह ज्ञात होता है कि वे इस्लामी-एकेश्वरवाद से भी प्रभावित थे, साथ ही सूफ़ी दर्शन से भी उन्होंने अपने चिन्तन स्वरूप का निर्धारण किया था। इस साधना के प्रभाव के कारण ही कबीर ने रहस्यवाद को भी अपनाया था। अपनी भक्ति में प्रेम तत्त्व का समन्वय कर उसे मधुर, भावना-प्रधान या प्रेम-प्रधान रूप दिया था। कबीर ने साधना में गुरु का स्थान सर्वोपरि माना है। गुरु का स्थान ब्रह्म से भी श्रेष्ठ है। गुरु के लिए कबीर ने ''सूरवां'' शब्द का प्रयोग और ज्ञान के लिए ''सबद'' शब्द का प्रयोग किया है। ''सूरवां गुरु सबद'' बाण से अज्ञान का विनाश करता है। इस प्रकार का भाव कबीर की अनेक रचनाओं में मिलता है।

कबीर के काव्य में उनके समाज-निर्माता व्यक्तित्व का उद्घाटन सम्पूर्ण रूप में मिलता है। कबीर ने अपने ज्ञान और आत्मविश्वास से समाज के नव-निर्माण का प्रयास किया, परम्परागत सामाजिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों की उन्होंने कटु आलोचना की। कबीर ने इस सत्य का उद्घोष किया कि संसार का सबसे बड़ा सत्य मनुष्य है कोई जाति या वर्ग नहीं है। उन्होंने राम-रहीम, केशव-करीम के भेद को समाप्त कर इन्हें एक-दूसरे के अभिन्न मानने की उद्घोषणा की। इस प्रसंग में कबीर उपदेशक रूप में सम्मुख आते हैं। इन विचारों के परिप्रेक्ष्य में कबीर आज भी प्रासंगिक लगते हैं।

3.1 सप्रसंग महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

पद-1

दुलहनि गावहु मंगलाचार।
हम घरि आए हो राजा राम भरतार॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तन रत करि मैं मन रत करि हूँ पंचतत बराती।
रामदेव मौरे पाहुँने आये मैं जोबन मैं माती॥
सरीर सरोवर बेदी करि हूँ, ब्रह्मा वेद उचार।
रामदेव सँगि भाँवरी लैहूँ, धनि धनि भाग हमार॥
सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनिवर सहस अठ्यासी।
कहै कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अविनासी॥

कठिन शब्दार्थ – मंगलाचार=शुभ या मांगलिक गीत। हम घरि=हमारे घर। भरतार=पति या स्वामी। रत=लीन। पंचतत=पांच तत्त्व (वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी और आकाश)। रामदेव=स्वयं प्रभु। पाहुँने=मेहमान। जोबन=तरूण अवस्था। वेदी=हवन का स्थान। वेद उचार=वेदों का उच्चारण। भांवरि=विवाह के सात फेरे। सूर तेतीसूं=तेतीस करोड़ देवतागण। कौतिग=उत्सव। सहस अठ्यासी=अठ्यासी हजार ऋषि मुनिगण। पुरिष=पुरुष। अविनासी=कभी नष्ट न होने वाला।

प्रसंग – पूर्व मध्यकालीन निर्गुण संत काव्य परम्परा में क्रान्त दृष्टा, सांस्कृतिक समन्वय के सेतु, परम श्रेष्ठ रहस्यवादी भक्त कवि एवं समाजसुधारक के रूप में कबीर का मूर्धन्य स्थान हैं। इस पद में कवि कबीरदास ने आत्मा और परमात्मा के मधुर मिलन की पावन बेला का आनन्द वर्णन विवाहोत्सव के रूपक द्वारा किया है। प्रस्तुत पद में कबीर की दार्शनिक भावना और रहस्यवाद की अभिव्यक्ति हुई है।

व्याख्या – परम पुरुष (परम ब्रह्म परमेश्वर) और आत्मा के मधुर मिलन का वर्णन करते हुए रहस्यवादी कवि कबीर (आत्मा रूप में) कहते हैं कि हे सौभाग्यवती नारियों ! अब तुम सभी विवाहोत्सव पर गाये जाने वाले मंगल गीत गाना प्रारम्भ करो। आज मेरे जीवन रूपी घर में स्वामी राम परम प्रभु पधारे हैं। मैं उनका स्वागत पति रूप में वरण करके करूँगी। मैंने अपना मन और शरीर दोनों ही उनके प्रेम रंग में रंग लिये हैं अर्थात् मैं तन-मन से उनकी भक्ति में लीन हो चुकी हूँ। मेरे और प्रभु के इस मिलन की पावन बेला में पांचों भौतिक तत्त्व (वायु, जल, पृथ्वी, अग्नि और आकाश जिनसे शरीर का निर्माण हुआ है) बाराती बन कर आये हैं। प्रभु राम स्वयं इस मिलन उत्सव के प्रमुख अतिथि रूप (पति रूप में) पधारे हैं और मैं यौवन (प्रभु भक्ति) से प्रफुल्लित (मदमस्त) हो रही हूं। मैं इस अध्यात्म विवाह के लिए अपने शरीर को ही वेदी बनाऊंगी और इसी के सात फेरे लेकर प्रभु के साथ विवाह बंधन में बंध जाऊँगी। इस विवाह संस्कार पर स्वयं ब्रह्माजी वेद मंत्रों का उच्चारण करेंगे। मैं प्रभु राम के साथ विवाह बंधन में बँधकर अपने आपको भाग्यशाली और गौरवान्वित मान रही हूँ। इस अवसर पर तैतीस करोड़ देवी-देवता और अठ्यासी हजार ऋषि-मुनिगण भी पधारे हैं। कबीरदास जी कहते हैं कि अब विवाह सम्पन्न हो चुका है और आत्मा रूपी प्रेमिका के इस महामिलन के उपरान्त अविनाशी परम पुरुष उसे विवाह-सूत्र में जोड़कर हमेशा के लिए संसार से ले जा रहे हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कबीर ने आत्मा और परमात्मा के मधुर मिलन को अपने रहस्यवादी विचारधारा का परिचय देते हुए सहज रूप में व्यक्त किया है।

2. कबीर ने अपनी विचारधारा के प्रतिकूल तैतीस करोड़ देवता तथा अठ्यासी हजार ऋषि मुनियों तथा ब्रह्मा आदि का उल्लेख किया है, इसका तात्पर्य यह नहीं कि कबीर बहुदेववादी और अंधविश्वासी थे। इनका प्रयोग केवल परम मिलन की अद्भुदता दर्शाने के लिए किया है।

3. रहस्यवादी भावना के अनुसार रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है। भाषा सरल और सधुक्कड़ी है। पद योजना आकर्षक है।

पद- 2

बहुत दिनन मैं प्रीतम आये, भाग बड़े घरि बैठे आये।
मंगलाचार माँहि मन राखौ, राम रसांइन रसना चाषौ॥
मन्दिर माँहि भयो उजियारा, ले सुतो अपना पीव पियारा।
मैं रनि राती जे निध पाई, हमहि कहाँ यह तुमहि बड़ाई॥
कहै कबीर मैं कछु न कीन्हा, सखी सुहाग मोहि दीन्हा॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – प्रीतम=परम ब्रह्म परमेश्वर (रहस्यवाद में आत्मा और परमात्मा के तात्विक सम्बंध को प्रेमी (ईश्वर) प्रेमिका (आत्मा) माना है। भाग=सौभाग्य। रसाँइण=रसायन, औषधि। रसना=जीभ। चाषौ=आस्वादन करना, चखना। सुहाग=सौभाग्य। रनिराती=विरहिणी, निराशा।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'कबीर' पाठ से अवतरित है। प्रस्तुत पद में कवि ने अपनी दार्शनिक और रहस्यवादी भावना के अनुसार आत्मा और परमात्मा के महामिलन का वर्णन किया है। इसी प्रसंग में कबीरदास कहते हैं कि

व्याख्या – मैंने बहुत दिनों से अपने प्रियतम अर्थात् परमात्मा के दर्शन नहीं किये हैं। जब से आत्मा और परमात्मा का बिछोह हुआ है तभी से उस परम तत्त्व के दर्शन नहीं हुए हैं। आज चिरकाल के बाद प्रियतम पुनः पधारे हैं। विशेष सौभाग्य की बात तो यह है कि मैंने इस संसार रूपी घर में रहकर ही उन्हें घर बैठे प्राप्त कर लिया है। हे सखियों! (अन्य आत्माओं) तुम अपना मन प्रभु आराधना में गाये मंगल गीतों में ही लगाओ और जिह्वा में राम नाम के अमूल्य रसायन (मोक्ष दायिनी औषधि) का रसास्वादन कर अलौकिक आनन्द को प्राप्त करो। प्रभु के आगमन से मेरे हृदय रूपी मंदिर में ज्ञान युक्त प्रकाश हो गया है अर्थात् ज्ञानवर्तिका प्रदीप्त हो चुकी है। हे सती आत्मा! तू अपने प्रियतम से भेंट कर। मुझ जैसी निराश विरहिणी ने जो यह अमूल्य और अनुपम सुन्दर निधि प्राप्त की है, यह प्रभु की ही अनुकम्पा है। कबीरदास कहते हैं कि हे सखी! मैंने इस संसार में रहकर कुछ भी विशेष महत्त्व का कार्य नहीं किया है, किंतु यह प्रभु की कृपा है कि उन्होंने मेरी आत्मा को अपनाकर मुझे सौभाग्य प्रदान किया है।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कवि ने निर्गुण ज्ञानधारा के अनुसार यह स्पष्ट किया है कि हृदय में ज्ञानवर्तिका प्रदीप्त होने पर अर्थात् ज्ञान का प्रकाश होने पर आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार हो जाता है।

2. प्रस्तुत पद में रूपक और अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

3. मिश्रित भाषा का प्रयोग भाव के अनुसार सजीवता से हुआ है।

पद-3

अब तौहि जान न देहु राम पियारे, ज्यूँ भावै त्यूँ होह हमारे।
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये, भाग बड़े घर बैठे आये॥
चरननि लागि करौ बरियायी, प्रेम प्रीति राखौ उरझाई।
इत मन मन्दिर रहौ नित चौषे, कहै कबीर करहु मति घौषे॥

शब्दार्थ – बरियायी=सेवा कार्य। उरझाई=उलझ कर, आसक्त रहकर। परहुँ=पड़िये। चौषै=भली भाँति, अच्छी तरह। घौषे=धोखे में।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' से लिया गया है, जो कबीर द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है। प्रस्तुत पद में कवि ने परमात्मा रूपी प्रियतम से आत्मा रूपी प्रियतमा के मधुर मिलन का वर्णन किया है और आत्मा द्वारा परमात्मा से सच्चे प्रेम के निर्वाह की कामना की है।

व्याख्या – कबीर परमात्मा रूपी प्रियतम को आत्मा रूपी प्रियतमा के द्वारा सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे मेरे प्रियतम राम। अब मैं तुम्हें कभी भी अपने आप से अलग नहीं होने दूँगी। अब आप जैसे चाहें, जिस प्रकार भी मेरे पास रह सकते हैं, वैसे ही रहिये। मैंने बहुत दिनों से बिछुड़े हुए स्वामी को प्राप्त किया है अर्थात् मैं लम्बे समय से अपने प्रियतम के बिना विरहाग्नि में जल रही हूँ। यह मेरा सौभाग्य है कि आपको मैंने घर बैठे ही प्राप्त कर लिया है, अर्थात् संसार रूपी घर में रहकर आपको पा लिया है। मैं अपने प्रेम बंधन में बाँधकर आपके चरणारविन्दों में रहकर निरंतर सेवा करती रहूँगी। अपनी प्रेम प्रीति में उलझाकर आसक्त बना कर रखूँगी। हे स्वामी! आप मेरे मन-मन्दिर में नित्य भली प्रकार से निवास कीजिए। आप अन्यत्र जाकर धोखे में न पड़िए अर्थात् मेरे जैसा सच्चा प्रेम आपको अन्यत्र दुर्लभ होगा।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में रहस्यवादी भक्तिभावना के आधार पर आत्मा और परमात्मा का ज्ञानात्मक चित्रण किया है।

2. परमात्मा स्वरूप राम को प्रियतम और आत्मा को प्रियतमा बताया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3. अलंकार योजनान्तर्गत अनुप्रास और रूपक अलंकार का सफल प्रयोग किया गया है। लोकाचार के अनुसार भावना व्यक्त करते हुए आध्यात्मिक चेतना व्यक्त की गई है।

पद-4

नरहरि सहजै ही जिनि जाना।
गत फल फूल तत तर पल्लव, अंकुर बीज नसाँना॥
प्रकट प्रकास ज्ञान गुरगमि थैं, ब्रह्म अगनि पुजारी।
ससि हरि सूर दूर दूरंतर, लागी जुग तारी॥
उलटे पवन चक्र षट बेधा, मेर डंड सरपूरा।
गगन गरजि मन सुनि समाना, बाजे अनहद तूरा॥
सुमति, सरीर कबीर विचारी, त्रिकुटी संगम स्वामी।
पद आनन्द काल थै छूटै, सुख में सुरति समानी॥

शब्दार्थ – जिनि=जिन्हें। तत=तत्त्व, रहस्य। अगनि प्रजारि=आग प्रज्वलित करता है। नसाँना=नष्ट होना। ससि=चन्द्रमा। सूर=सूर्य। जोग=योग साधना। मेरु-डंड=मेरुदण्ड। अनहद तूरा=अनहद नाद का स्वर। त्रिकुटी=दोनों भौंहों और ललाट के बीच का केन्द्र स्थान। काल=मृत्यु। पद आनन्द=परमात्मा का आनन्द मय परम-पद। सुरति=प्रेम, सारुप्य, दशा, याद।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' से लिया गया है जो कबीर द्वारा रचित ''पदावली'' से अवतरित है। प्रस्तुत पद में कवि ने सद्गुरु से ज्ञानोपदेश प्राप्त करने और परमात्मा से साक्षात्कार का रहस्यवादी वर्णन किया है।

व्याख्या – कबीरदास जी कहते हैं कि सहज-साधना द्वारा ही प्रभु के अस्तित्व को जाना जा सकता है। इस साधना से संसार के विषय-वासना रूपी बीज और अंकुर समाप्त हो जाते हैं। एवं इस संसार रूपी वृक्ष का वास्तविक फल अर्थात् प्रभु की प्राप्ति हो जाती है।

गुरु अपने सदुपदेशों से ज्ञान का प्रकाश करता है एवं प्रभु की भक्ति में साधक को एकाग्रचित्त कर देता है। इस ज्ञान सूर्य के प्रकाश से हृदय-प्रदेश का कोना-कोना भासमान हो जाता है। आत्मा में ब्रह्म-ज्योति का प्रकाश होने पर चन्द्रमा व सूर्य का प्रकाश भी मन्द लगने लगता है और साधक बाहरी आसक्तियों से मुक्त होकर योग साधना में प्रवृत्त होने लग जाता है, जिससे कुण्डलिनी को जाग्रत कर वह छहों चक्रों का भेदन कर लेता है और ऊर्ध्वगामी होकर शून्य स्थिति ब्रह्मरन्ध्र का भेदन कर लेता है। इससे अपरिमित आनन्ददायी अनहदनाद स्वर उभरता रहता है। कबीर अपनी सद्बुद्धि द्वारा विचार कर यह घोषणा करते हैं कि शरीर की त्रिकुटी में परमात्मा का साक्षात्कार किया जा सकता है। इस प्रकार सुरति-रति का अर्थात् सारुप्य अवस्था का अवलम्बन कर मनुष्य परम पद का अधिकारी बनकर काल अर्थात् मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कबीर ने रहस्यवादी विचारधारा के अनुसार स्पष्ट किया है कि ''अनहद तूरा'' कुण्डलिनी जब षट्चक्रों का भेदन कर ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है तो परमात्मा अलख ज्योति के दर्शन होते हैं और शरीर का रोम-रोम प्रभु केनाम से गुंजायमान होने लगता है। यही अनहद नाद कहलाता है, जिसे कबीर ने 'अनहद तूरा' कहा है।

2. ''त्रिकुटी'' दोनों भौंहों और नासिका के मूल भाग के ऊपर ललाट को केन्द्र बिन्दु माना जाता है। ध्यानावस्था में योगी यहीं अपना ध्यान लगाता है।

3. प्रस्तुत पद में अलंकार योजनान्तर्गत अनुप्रास, दृष्टान्त और रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है। पद की तुकान्त योजना गेयता के अनुरूप है।

पद-5

मन रे मन हो उलटि समाना।
गुरु प्रसादि अकलि भई तौकौं, नहीं तर था बेगाना॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नेड़े थे दूरि दूर थै नियरा, जिनि जैसा करि जाना।
औ ला ठोका चढ़या बलीड़ै, जिनिपीया तिनि माना।।
उलटे पवन चक्र षट बेधा, सुनि सुरति लै लागि।
अमर न मरै मरै नहीं जावै, ताहि खोजि बैरागी।।
अनभै कथा कवन सी कहिये, है कोई चतुर विवेकी।
कहै कबीर गुर दिया पलीता, सौ झल बिरलै देखी।।

शब्दार्थ – समाँना=समा गई। बेगाना=अपरचिति। बलीडै=छप्पर की बल्लियाँ। अनभै=अनुभव, निर्भय। विवेकी=ज्ञानी। पलीता=ज्योति। ओलौ=छप्पर की छाजन।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक ''प्राचीन-काव्य माधुरी'' के कबीर नामक पाठ से लिया गया है, जिसे कबीर द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित किया गया है। इसमें कवि ने ज्ञानसाधना की सुन्दर अभिव्यक्त की है।

व्याख्या – रहस्यवादी कवि शिरोमणि संत कबीर ज्ञान साधना का चित्रण करते हुए स्पष्ट करते हैं कि हे साधक ! गुरु की कृपा से तुझे ज्ञान प्राप्त हो गया है, अन्यथा तू अन्य लोगों की भाँति परम् तत्त्व से पूर्णतः अपरिचित ही रहता। अब तेरे मन की भटकी हुई प्रवृत्तियाँ अपने मूल आधार में समा गई हैं अथवा व्यष्टि मन उस परम-तत्त्व या समष्टि-मन में समा गया है। छप्पर के छाजन का पानी उलट कर बलेडी (बल्लियों) पर चढ़ गया है अर्थात् विषयों की ओर आकृष्ट होने वाली बहिर्मुखी आनन्द-वृत्ति उलट कर आत्मरति की ओर अभिमुख हो गई है। इस आत्मरति के जल को जिसने भी पीया है, वही इसके स्वाद को जानता है। प्राण-वायु से उलट कर षट्-चक्र का भेदन कर दिया है। हे साधक ! तुम्हारा ध्यान शून्य एवं सुरति तत्त्व में लग गया है अथवा तुम्हारी स्मृति-चेतना उस शून्य तत्त्व में अनुरक्त हो गई है। वह तत्त्व न आता है, न जाता है, न मरता है, न जन्म लेता है। हे विरक्त साधक ! तू उस तत्त्व की खोज करता रहा। यही तत्त्व उसका स्वरूप है। इस तत्त्व का अनुभव उन्हें ही होता है, जो इसके समीप रहते हैं अर्थात् जो इस तत्त्व को जैसा समझता है वह उसे वैसा ही अनुभव करता है। जिन ज्ञानियों ने उस तत्त्व को पहचाना है उन्होंने ही जीवात्मा को उस ऊँचाई तक पहुँचाया है। इसलिए संत कबीर कहते हैं कि गुरु ने हमें ज्ञान का जलता हुआ पलीता अर्थात् ज्ञान-ज्योति प्रदान की है, उस ज्योति के द्वारा ही परम् तत्त्व के दर्शन होते हैं, परन्तु उसके दर्शन कोई बिरला ही कर पाता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कवि ने गुरु की महिमा का उल्लेख कर ज्ञान साधना के मार्ग का चित्रण किया है।

2. विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से साधक के लिए योग-साधना का मार्ग प्रशस्त किया है।

3. अलंकार योजनान्तर्गत अनुप्रास, यमक और काव्यलिंग अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

4. समासोक्ति अलंकार के साथ प्रतीकात्मकता व भावाभिव्यक्ति चमत्कारपूर्ण है।

5. भाषा सहज व सधुक्कड़ी है।

पद- 6

इत तत राम जपहु रे प्रानी, बुझो अथक कहाणी।
हीर का भाव होई जा ऊपर, जाग्रत रैन बिहानी।।
डाइन डारै, सुनहा डोरै, स्यंघ रहे बन घेरे।
पंच कुटुम्ब मिलि झुझन लागे, बाजत सबद संघेरे।।
रोहै मृग ससा बन घेरे, पारधि बाण न मेले।
सायर जलै सकल बन दाझै, मंछ अहेरा खेले।।
सोई पण्डित सो तत ज्ञाता, जो इहि पदहि विचारै।
कहै कबीर सोइ गुर मेरा, आप तिरै मोहि तारै।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शब्दार्थ – इत=इस (संसार में)। तत=तत्त्व (राम)। बूझो=समझो। अथक=वर्णातीत। हीर=भगवान्। भाव=कृपा। जाग्रत=जीवन रूपी। सुनहा=सुनहरे। स्यंघ=सिंह। पंच कुटुम्ब=पांचों इन्द्रियों का परिवार। झूझन=झगड़ा। संघेरे=भोग विलास के सघन शब्द। ससा=खरगोश। पारधि=शिकारी। सायर=भवसागर। अहेरा=शिकार। सोई=वही।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के कबीर नामक पाठ से अवतरित है। यह उलटवांसी संत कबीरदास रचित ज्ञान-साधना से सम्बंधित है। इसमें कवि ने ज्ञान-साधना का रूपकात्मक परिचय प्रस्तुत किया है।

व्याख्या – कबीरदास ज्ञान-साधना का परिचय देते हुए कहते हैं कि हे प्राणी ! तुम इस संसार में परम्-तत्त्व राम का निरन्तर स्मरण करते रहो तथा ज्ञान की शब्दहीन अर्थात् वर्णनातीत कहानी को समझने का प्रयास करते रहो। इस संसार में जिस पर भगवान् का अनुग्रह रहता है, वह इस अज्ञान-जनित सांसारिक जीवन-रूपी रात्री को ज्ञानपूर्वक व्यतीत करता है। माया रूपी डायन मन पर सांसारिक आसक्ति रूपी-सोने के डोरे डालती रहती है और इस जीवन रूपी वन में अहंकार रूपी सिंह का अधिकार बना रहता है। पांचों इन्द्रियाँ सामूहिक रूप से सांसारिक विषयों के लिए झगड़ती रहती हैं। निरंतर भोगों के सघन शब्द गूँजते रहते हैं। तृष्णा रूपी मृग इस जीवन रूपी वन में विचरते रहते हैं और वासना रूपी खरगोश इस शरीर को घेरे रहते हैं। परन्तु जीवात्मा रूपी शिकारी उन पर बाण नहीं चला पाता है। इस संसार सागर में विषय-वासनाओं की आग लगी हुई है और इसमें सब कुछ भस्म हो रहा है, किंतु साधक आनन्द-क्रीडा में निमग्न है और शिकार का आनन्द ले रहा है। कबीरदास कहते हैं कि वही वास्तव में पण्डित है और परम् तत्त्व का ज्ञाता है, जो इस पद के अर्थ पर विचार कर सकता है। वही मेरा गुरू है, जो इस ज्ञान का साक्षात्कार करके स्वयं भवसागर से पार होता है और मुझे भी पार कराता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत उलटवांसी में कवि ने रहस्यात्मक भावना का परिचय दिया है। इसमें शरीर के विभिन्न अंगों व इन्द्रियों पर आरोप कर बताया है कि साधक को माया रास्ते से भटका देती है। परम्-तत्त्व का ज्ञानी व्यक्ति माया के चक्कर से हमेशा मुक्त रहता है।

2. अनुप्रास और रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है। पद की तुकान्तता उत्तम रही है।

पद-7

अवधू ग्यान लहरि धुनि मीडी रे।
सबद अतीत अनाहद राता, इहि विधि त्रिष्णा षाँड़ी ॥
बन कै ससै समंद घर किया, मंछा बसै पहाड़ी।
सुई पीवै ब्राह्मण मतवाला, फल लागा बिन बाड़ी॥
षाड बुणै कोली में बैठो, मैं खूँसा में गाढ़ी।
ताँणै बाँणै पड़ी अनवासी, सूत कहै बुणि गाढ़ी॥
कहै कबीर सुनहु रे सन्तौ, अगम ग्यांन पद माँहीं।
गरु प्रसाद सुई के नांके, हस्ती आवै जाँहीं॥

शब्दार्थ – धुनि=समाधि। मीडि=लीन। त्रिष्णा षाँड़ि=त्रिष्णा को खण्डित किया। ससै=खरगोश। समंद=समुद्र। मंछा=मछली। पहाड़ी=ब्रह्मरन्ध्र का शून्य-शिखर। सुई=अमृत। बाम्हण=मुक्त आत्मा। खूसा=कर्ता। गाढ़ी=साधक। अनवासी=पवित्र, स्वच्छ। सूई कै नाँके=सूई की नोक जैसे छिद्र से। हस्ती=हाथी।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के कबीर नामक पाठ से अवतरित है। यह पद रहस्यवादी साधना का परिचायक है। इसमें कबीर ने परमात्मा की भक्ति करने वाले प्रत्येक साधक के लिए ज्ञान चेतना को अनिवार्य बताया है, क्योंकि ज्ञानसाधना से ही हृदय में परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है।

व्याख्या – कबीरदास कहते हैं कि हे अवधूत ! ज्ञान लहर के उठने पर साधक समाधि में लीन हो जाता है और अनहद नाद से उत्पन्न आनन्द दायी शब्द में ही उसकी अन्त:करण की प्रवृत्तियाँ रमने लग जाती हैं। इस प्रकार उसने सांसारिक तृष्णा को नष्ट कर दिया है। जिसके परिणामस्वरूप संसार रूपी वन में भटकने वाले चंचल खरगोश रूपी मन ने शून्य-समुद्र में अपना वास-स्थान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

बना लिया है एवं मछली रूपी पवित्र आत्मा शून्य-शिखर रूपी पर्वत पर जा बसी है। वहाँ पहुँच कर प्रभुभक्ति में मस्त मुक्तात्मा रूपी ब्राह्मण अमृत पान करने लगा है। इस प्रकार बिना खेती किये ही साधक को परमात्मा रूपी अमूल्यफल की प्राप्ति हो गई है।

इस अवस्था में पहुँचकर आत्मा रूपी जुलाहिन सुन्दर कर्म रूपी वस्त्रों का निर्माण करती है। इस वस्त्र बुनने की प्रक्रिया में आत्मा ही कर्त्ता है और स्वयं ही साधक है। इस स्थिति में उसे ''अहं ब्रह्म अस्मि'' की प्रतीति होने लगती है।

आत्मा में स्थिति ज्ञान-चेतना विविध पवित्र कर्मों का ताना-बाना डालकर उस वस्त्र का निर्माण कर रही है। सूत अर्थात् सत्कर्म स्वयं उसे पुण्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। कबीरदास कहते हैं कि हे संतो! ध्यानपूर्वक सुनो, साधक इस अगम्य, अप्राप्य, सुक्त पद को गुरु कृपा से ही प्राप्त कर सकता है। गुरु कृपा से असंभव भी संभव हो जाता है। सुई की नोंक जैसे सूक्ष्म स्थान के मध्य से हाथी जैसे विशालकाय पशु का आगमन भी वे संभव कर सकते हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में निर्गुण ज्ञानधारा के अनुसार साधक के लिए भक्तिभावना का मार्ग बताया गया है।

2. ज्ञान-चेतना को जागृत करने में गुरु कृपा के महत्त्व को स्पष्ट किया है।

3. सम्पूर्ण पद में रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है। उपमा, दृष्टान्त, अनुप्रास अलंकारों को भी पुट दिया गया है।

4. राग गौड़ी की गेयता और पद-मैत्री प्रशस्य है।

पद-8

एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढा सिंघ चरावै गाई।
पहलै पूत पीछे भई माँई, चेला के गुरु लागे पाई॥
जल की मछली तरवर ब्याई, पकरि बिलाई मुरगै खाई।
बेलहि डारि गूँनि धरि आई, कुत्ता कूँ ले गई बिलाई॥
तलि कर साषा ऊपरि करि मूल, बहुत भाँति जड़ लागे फूल।
कहे कबीर या पद को बूझै, ताकूँ तीनों त्रिभुवन सूझैं॥

शब्दार्थ – अचंभा=आश्चर्य। ठाढा=खड़ा हुआ। सिंघ=शेर। माँई=माँ। तरवर=पेड़। बिलाई=बिल्ली। साषा=शाखा। गूँनि=गुणी आत्मा।

प्रसंग – प्रस्तुत पद कबीर द्वारा रचित 'पदावली' से लिया गया है जो हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के कबीर नामक पाठ से अवतरित है। प्रस्तुत पद में कवि ने माया और सांसारिक विषय-वासना को परमात्मा के साक्षात्कार में बाधक बताया है। माया से मुक्ति प्राप्त करने के लिए गुरु द्वारा प्रवत्त ज्ञान ही सबसे सरल साधन है। प्रस्तुत पव में कवि ने रहस्यवावी साधना के साथ ज्ञान चेतना को अपनाने की प्रेरणा दी है।

व्याख्या – कबीरदास कहते हैं हे भाई! आज मैंने एक आश्चर्य देखा है। यह आश्चर्य साधना क्षेत्र का है, वहाँ पर ज्ञान रूपी सिंह समस्त इन्द्रियों रूपी गायों को चरा रहा है, अर्थात् कर्मों का संचालन कर रहा है।

इस संसार में पहले तो पुत्र रूपी जीव का जन्म हुआ – ''जीव अंश जीव अविनाशी।'' तत्पश्चात् माता रूपी माया का आविर्भाव हुआ। गुरु-शिष्य के पैरों में पड़ रहा है, अर्थात् माया प्रभु की दासी है। प्रभु का अंश जीव (गुरु) उसके पीछे लग रहा है – पैरों में पड़ रहा है। भाव यह है कि प्रभु अपनी दासी माया में संलिप्त रहता है। जल में रहने वाली मछली पेड़ पर बच्चे पैदा कर रही है और मुर्गे बिल्ली को पकड़कर खा रहे हैं अर्थात् मूलाधार में स्थित कुण्डली में मेरुदण्ड की सुषुम्ना नाड़ी में अपना वास कर लिया है। माया ने विषय-वासना से पोषित जीवों को समाप्त कर दिया है। गुणी आत्मा तामसी प्रवृत्ति रूपी बैलों का नाश कर के अपने वास्तविक ध्यान-शून्य-महल में आ गई है। जो सांसारिकता में बद्ध, विषय-वासना में लिप्त कुत्ते के समान निकृष्ट जीव थे, उन्हें बिल्ली रूपी माया ने अपने बन्धन में बांध लिया है। इस संसार रूपी वृक्ष की शाखाएँ अधोमुखी एवं मूल ऊर्ध्वमुखी है। इस वृक्ष का ऊर्ध्वमुखी जड़पर अर्थात् ब्रह्म रन्ध्र पर विविध कामनाओं को तृप्त करने वाला फूल (अलख निरंजन दर्शन) प्राप्त होता है। कबीर कहते हैं कि जो मनुष्य इस पद के अर्थ को हृदयंगम (आचरण) करता है, उसे त्रिभुवन का ज्ञान सहज में प्राप्त हो जाता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में माया को सांसारिक विषय वासनाओं की जड़ बताया है। आत्मा माया के कारण ही अज्ञान में लिप्त रहती है। यह कवि का दार्शनिक चिन्तन है।

2. हठयोग के अनुसार साधना पद्धति कानिर्देश यह है कि जब साधक के हृदय में सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा सहस्त्र दल कमल विकसित होता है, तो हृदय में स्वतः परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है।

3. रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है। अप्रस्तुत योजना प्रशंसनीय रही है।

पद-9

संतो भाई आई ज्ञान की आँधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी, माया रहै न बाँधी॥
हित चित की द्वै थूँनी गिराँनी, मोह बलिंड़ा टूटा।
त्रिस्नाँ छानि परि घर ऊपर, कुबुधि का भाँडा फूटा॥
जोग जुगुति करि संतौं बाँधी, निरचू चुवै न पाँणी।
कूड कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जाँणी॥
आंधी पीछे जो जल बूठा, प्रेम हरि जन भीनाँ।
कहै कबीर भाँन के प्रकटै, उदित भया तम षीनाँ॥

शब्दार्थ – टाटी=घास-फूस की छाजन। थूँनी=खम्भे। बलींडा=बल्ली। छानि=छप्पर। निरचू=बिल्कुल, कतई। काया=शरीर। बूठा=बरसा। भींना=गीला। भान=सूर्य। षीनाँ =समाप्त, नष्ट।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के कबीर नामक पाठ से अवतरित है। कवि ने अपनी अन्तर्आत्मा के अलौकिक ज्ञान के आविर्भाव का अत्यंत सटीक और रूपक के माध्यम से वर्णन किया है।

व्याख्या – कबीरदास अपने अंतःकरण की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे संतजनों! अब मेरे जीवन में ज्ञान रूपी तीव्र आँधी का आगमन हो चुका है जिसके वेग से भ्रम रूपी छप्पर की सम्पूर्ण छाजन उड़ गई है। ज्ञान रूपी प्रकाश का तेज इतना है कि यह घास-फूस की छाजन माया के बाँधने से भी नहीं बँधी रह सकती है। अर्थात् आज तक मैं जिस माया के बंधन में भ्रम आदि के साथ पड़ा हुआ था वे सब समाप्त हो चुके हैं। मैं माया के प्रभाव से मुक्त हो गया हूँ। ज्ञान रूपी आँधी से जीवन रूपी छप्पर के द्विविधा रूपी खम्भे गिर चुके हैं और मोह रूपी बल्ली टूट गई है। शरीर रूपी घर पर जो तृष्णा का छप्पर पड़ा था वह पूर्णतः नष्ट हो गया है और कुबुद्धि, अज्ञान का भेद खुल गया है। अतः अब मेरा मन भ्रम, तृष्णा, मोह, माया, द्विविधा व कुबुद्धि से रहित हो गया है। अब मेरा जीवन ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित हो गया है। संतों ने योग की विभिन्न विधियों से युक्तियों का ऐसा छप्पर बाँध दिया है कि अब उसमें से वासना रूपी जल बिल्कुल नहीं टपकता है। अर्थात् योग के आचरण से सम्पूर्ण वासनाओं का अंत हो गया है। अब मेरे शरीर से सम्पूर्ण सांसारिक विकार (काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार आदि) रूपी कचरा निकल चुका है तथा ज्ञान के इस ज्योतिर्मय वातावरण प्रभु की गति का बोध हो गया है। ज्ञान रूपी आँधी के बाद जो सत्प्रेम युक्त भक्ति का शीतल जल बरसा, उससे मेरा अन्तःकरण प्रभु भक्ति से गीला हो गया है। कबीरदास कहते हैं कि जिस प्रकार सूर्य के प्रकट होने से समूचे अंधकार का विनाश हो जाता है, उसी प्रकार ईश्वरीय ज्ञान के प्रकाश से समस्त अज्ञान का विनाश हो गया है।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कवि ने जीवन के सम्पूर्ण सांसारिक विकारों को समाप्त करने के लिए ज्ञान-साधना की प्रेरणा दी है।

2. प्रस्तुत पद में सांग रूपक अलंकार का सुन्दरतम निर्वाह हुआ है।

3. भाषा सरल, प्रचलित और सधुक्कड़ी है।

पद-10

हिंडोलना तहाँ झूले आतम राम।
प्रेम भगति हिंडोलना, सब संतन को विश्राम॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चंद सूर दोई खँभवा, बंक नाल की डोर।
झूले पंच पियारियाँ, तहाँ झूले जिय मोर॥
द्वादस गम के अंतरा, तहाँ अमृत कौ ग्रास।
जिनि यह अमृत चाषिया, सो ठाकुर हम दास॥
सहस सुनि को नेहरौ, गगन मण्डल सिरिमौर।
दोऊ कुल हम आगरीं, जो हम झूलै हिंडोल॥
अरध उरध को गंगा-जमुना, मूल कवल को घाट।
षट चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बाट॥
नाद व्यंद की नावरी, राम नाम कनिहार।
कहै कबीर गुण गाइले, गुर गमि उतरो पार॥

शब्दार्थ – हिंडोलना=झूला। आतम=आत्मा। चन्द सूर=चन्द्रमा सूर्य (इड़ा और पिंगला)। खम्भवा=खम्भे। बंक नाली=बक्रनाड़ी। पंच पियारियाँ=पांचों इन्द्रियाँ। द्वादसगम=ब्रह्मरन्ध्र। अंतरा=ऊपर। सहस्त्रार कमल=परम ज्योति का स्थान। (परम्-ज्योति से अभिप्राय: पाँचों कामेन्द्रियों, पाँचों ज्ञानेन्द्रियों, मन तथा बुद्धि – इन बारह तत्त्वों से परे की वस्तु है। द्वादस गम अर्थात् बारह अंगुल से दूर कहा है।) ग्रास=वर्षा, स्वाद। चाषिया=आस्वादन करना। सुनि=शूण्य। नेहरो=निवास स्थान, पीहर। सिरिमौर=श्वसुराल। आँगरी=मर्यादा। गंगा यमुना=नदियों के नाम हैं किन्तु इड़ा और पिंगला नाड़ी से इसका अर्थ लिया गया है। मूल कमल को घाट=सुषुम्ना के ऊपरी भाग पर सहस्त्रार कमल का स्थान। त्रिवेणी संगम=सहस्त्रार कमल का वह स्थान जहाँ पर जीव विश्राम करता है वहीं पर इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीनों एकाकार हो जाती हैं इसी को त्रिवेणी संगम कहा गया है। व्यंद=बिन्दु। नावरी=नाव। कनिहार=कर्णधार।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के कबीर नामक पाठ से अवतरित है जिसे कबीर द्वारा रचित 'पदावली' से उद्धृत किया गया है। प्रस्तुत पद में कवि ने रहस्य-साधना और भक्ति-भावना का एक साथ मनोहारी और मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।

व्याख्या – कबीरदास कहते हैं कि जीवन का यह प्रेम, प्रेम-भक्ति का झूला है। यह सब संतों का आश्रय है। यहीं पर कबीर अथवा साधक का जीव झूल रहा है। इड़ा और पिंगला उस झूले के दो खम्भे हैं और बक्र नाड़ी की डोरी लगी हुई है। इस झूले अर्थात् प्रेम के आनन्द में पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ झूल रही हैं और वहीं पर मेरा हृदय भी झूल रहा है, झूम रहा है। ब्रह्मरन्ध्र के ऊपर स्थित सहस्त्रार कमल से अमृत की वर्षा हो रही है। यह कमल परम् ज्योति का स्थान है। यही अमृत का भण्डार है। जिसने इस अमृत का आस्वादन किया है या स्वाद चखा है, वही हमारा स्वामी है और हम उसके दास हैं।

कबीरदास कहते हैं कि सहज शून्य परम् तत्त्व का स्थान है। वह हमारा पीहर है क्योंकि वही जीव की उत्पत्ति का स्थान है, गगन मण्डल पर हमारा ससुराल है। जीवात्मा साधना और आध्यात्मिक, विवाह सम्बन्ध से वहाँ पर पहुँचती है और वहीं पर पति परमात्मा से उसका मिलन होता है। जीवात्मा इस प्रेम-रस के हिंडोले पर झूल कर अपने पीहर व ससुराल दोनों ही कुलों की मर्यादा का निर्वाह करती है। ऊपर -नीचे गंगा और यमुना अर्थात् इड़ा, पिंगला है। बीच में सुषुम्ना के ऊपरी भाग पर सहस्त्रार कमल का घाट है, वहीं पर जीव विश्राम करता है। वहीं पर इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के एकाकार होने से त्रिवेणी-संगम है। इस ब्रह्मरन्ध्र रूपी त्रिवेणी के अमृत-रस का पान करने के लिए ही षट्चक्र रूपी गागरी है। भावार्थ यह है कि इनकी साधना करने से उल्टे कूप के जल से रस का पान होता है। उसी त्रिवेणी में नाद और बिन्दु से निर्मित नौका है, जिसके कर्णधार स्वयं भगवान् अर्थात् परमात्मा का नाम स्मरण है। ब्रह्म रन्ध्र में प्रविष्ट जीव को ही नाद और बिन्दु का साक्षात्कार होता है। कवि कहते हैं कि हे जीव ! तुम भगवान् का गुणगान करो ताकि गुरुकृपा से तुम इस भव सागर से पार हो सको।

विशेष – प्रस्तुत पद में रहस्यवाद, भक्ति और साधना के अभेद को अभिव्यंजित किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

3.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

3.2.1 अति लघुत्तरात्मक प्रश्नोत्तर

प्रश्न-1. कबीर की भाषा कौन-सी है तथा इनकी रचनाएँ किसमें सम्मिलित की गई हैं ?

उत्तर – कबीर की मिलीजुली खिचड़ी भाषा को विद्वानों ने 'सधुक्कड़ी' भाषा का नाम दिया है तथा इनकी रचनाएँ 'बीजक' में संकलित की हैं। आचार्य श्यामसुन्दर दास ने 'कबीर ग्रंथावली' में सभी रचनाएँ सम्पादित की हैं।

प्रश्न-2. 'उलटवासी' क्या है तथा कबीर ने 'सूरवां' शब्द का प्रयोग किसके लिये किया है ?

उत्तर – कबीर द्वारा लौकिक दृष्टान्त अपनाकर आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारधारा के लिये अपनाई गई शैली को 'उलटवासी' कहा है तथा इन्होंने परमात्मा के ज्ञानलोक के लिए 'सूरवां' शब्द का प्रयोग किया है।

प्रश्न-3. कबीर के आराध्य कौन हैं तथा इन्होंने अपने पद में 'दुलहनि' किसे कहा है ?

उत्तर – कबीर के आराध्य अलख, अविनाशी, घट-घट वासी परमात्मा हैं। इन्होंने सौभाग्यवती नारियों (अन्य आत्माओं) को 'दुलहनि' कहा है।

प्रश्न-4. कबीर के द्वारा उनके आराध्य को किन शब्दों में व्यक्त किया गया है ?

उत्तर – कबीर के आराध्य निर्गुण-ब्रह्म हैं,

''जाके मुँह माथा नहीं, नहिं रूप-कुरूप।
पुहुप वास ते पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप।।''

प्रश्न-5. 'साखी' का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

उत्तर – 'साखी' का अर्थ साक्षी या गवाह होता है। कबीर ने साधु-संतों के ज्ञान-तत्त्वों की साक्षी लेकर जो सीख या शिक्षाप्रद वाणी व्यक्त की है, उसे 'साखी' कहा गया है।

प्रश्न-6. ''एक अचम्भा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंह चरावै गाई।'' पंक्ति का भावार्थ स्पष्ट कीजिए।

उत्तर – कबीर की साधना-पद्धति में ज्ञान रूपी सिंह समस्त इन्द्रियों रूपी गायों को चरा रहा है, अर्थात् कर्मों का संचालन कर रहा है।

प्रश्न-7. ''नरहरि सहजे ही हरि जाना'' – इस पंक्ति में कबीर ने प्रभु प्राप्ति का सहज ज्ञान किससे प्राप्त करने को कहा है ?

उत्तर – कबीर ने कहा कि प्रभु की सहज साधना ज्ञान के प्रकाश से ही प्राप्त करना संभव है, यह ज्ञान ज्योति सद्गुरु द्वारा ही प्राप्त हो सकती है।

प्रश्न-8. कबीर के पदों में 'अबधू और 'अनहद तूरा' शब्दों का प्रयोग हुआ है, इनका अर्थ स्पष्ट कीजिए।

उत्तर – कबीर ने 'अबधू' पद का प्रयोग ज्ञान-चेतना के आधार पर समाधि लगाने वाले व्यक्ति या 'साधक' के लिए किया है।

साधक की कुण्डलिनी षट्चक्रों का भेदन कर ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचती है, तब परमात्मा की अलख ज्योति के दर्शन होते हैं और हृदय में प्रभु का नाम गूँजने लगता है जिसे कवि ने ''अनहदतूरा'' कहा है।

प्रश्न-9. ''कहै कबीर सोइ गुरु मेरा'' कबीर ने अपना गुरु किसे माना है ?

उत्तर – जो परम्तत्त्व का साक्षात्कार करके स्वयं भी भवसागर से पार होता है, और अपने शिष्यों को भी पार कराता है उसे ही कबीर ने अपना गुरु माना है।

प्रश्न-10. ''हिंडोलनाँ तहाँ झूले आतम राम।'' पंक्ति में कवि ने किस झूले की ओर संकेत किया है ?

उत्तर – कवि ने प्रेम भक्ति रूपी झूले की ओर संकेत किया है, जो सभी संतों का आश्रय रहता है तथा जिस पर साधक का जीव झूलता हुआ आनन्दित होता रहता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3.2.2 लघुत्तरात्मक-प्रश्न

प्रश्न-1. कबीर के काव्य में रहस्यवादी प्रवृत्ति को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर – साधारण शब्दों में आत्मा और परमात्मा की तात्विक एकता को स्पष्ट करने वाला वाद रहस्यवाद कहलाता है। कबीर के काव्य में यहप्रवृत्ति पर्याप्त रूप में मिलती है। अद्वैत भावना से प्रभावित होकर कवि ने सम्पूर्ण जगत् में अभेद का प्रतिपादन किया है, उन्हें सारा विश्व ही परमात्मा प्रतीत होता है। ईश्वर को समुद्र और स्वयं को उसके जल में जीवित रहने वाली मछली के समान देखते हैं, उनकी वेदना यह है कि पानी में रहकर भी वे पानी से वंचित हैं –

''तू जलनिधि हम जल का मीनु।
जल मँहि रहहुँ, जलहिं बिनु खीनु॥

कवि ने आत्मा और परमात्मा के सम्बंध में कहा है कि आत्मा तो परमात्मा कीी विरहिणी प्रेयसी या प्रेमिका है, जो प्रियतमा सदैव अपने प्रियतम (परमात्मा) के आगमन मार्ग को निहारती रहती है।

बिरहनि ऊभी पंथसरि, पंथी बूझै धाई।
एक सबद कहि पीव का, कबरे मिलहुँगे आई॥

कबीर ने साधनात्मक रहस्यवादी प्रवृत्ति के अनुसार मुक्तावस्था का भी चित्रण किया है। ब्रह्मरन्ध्र से निरन्तर आनन्द की झंकार उठती रहती है, जो केवल सिद्ध पुरुष को ही सुनाई देती है। इस प्रकार कबीर के काव्य मेंरहस्यवादी प्रवृत्ति का पर्याप्त चित्रण मिलता है।

प्रश्न-2. कबीर की भक्तिभावना पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

उत्तर – रहस्यवादी भक्तिधारा के ज्ञानाश्रयी कवि निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। निराकार ईश्वर का ज्ञान, तत्त्व-ज्ञान एवं आध्यात्मिक अनुभूति द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। ईश्वर प्राप्ति के लिए मन की शुद्धता, माया-मोह का त्याग और मन अहंकार रहित हो क्योंकि ये सभी कारण भक्तिमार्ग में बाधक हैं।

भगति दुवाारा सांकड़ा, राई दसवैं भाइ।
मन तो मगल है रह्यो, क्यूं करि सकै समाइ॥

यदि मन, हृदय, शरीर, इन्द्रियाँ पवित्राचरण से युक्त हैं तो वही ईश्वर की सच्ची भक्ति है। निर्गुण भक्ति के लिये कवि ने राम के नाम स्मरण को भी महत्त्वपूर्ण माना है।

''सत कहे सतगुरु को चीन्हें, सत्तनाम विश्वासा।
सत्त नाम ताही को मिलिये, कहे कबीर सुजासा ॥''

कबीर की भक्ति-भावना में लौकिक उपादानों की अपेक्षा आध्यात्मिक तत्त्व प्रमुख है। इससे उनकी भक्ति सिद्ध-साधकों की साधना के ही समान मानी गई है। जब चित्त में सत्त्वोद्रेग होता है तभी साधक परम्तत्त्व की भक्ति कर पाता है। कबीर का भक्ति मार्ग अत्यंत कठिन है। इसके लिए अहंकार का परित्याग अतिआवश्यक है –

मैमंता मन मारि रे, नौन्हाँ करि करि पीस।
तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म झल्लकै सीस॥

3.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. ''कबीर श्रेष्ठ कवि होने के साथ उच्च कोटि के समाज सुधारक भी थे।'' इस कथन की पुष्टि कीजिये।

अथवा

''कबीर मध्यकालीन 'क्रान्तिपुरुष' थे।'' कथन की सत्यता पर प्रकाश डालते हुए इसकी प्रासंगिकता बताइये।

अथवा

कबीर के काव्य में तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों पर गहरा प्रहार कर समाज सुधार का जो स्वर व्यक्त हुआ है, उसे स्पष्ट कीजिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उत्तर – निर्गुण ब्रह्म के उपासक रहस्यवादी कवि कबीर का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ जब धर्म समाज व राजनीति आदि क्षेत्रों में सर्वत्र पारस्परिक वैषम्य और विभेद का बोलबाला था। समाज में उस समय नागपंथी और शाक्त सिद्ध गायक अपनी अटपटी वाणी में ''अलख निरंजन'' की मनमानी व्याख्या कर रहे थे। इधर धर्म के अनेक ठेकेदारों पंडितों, मौलानाओं, मौलवियों और तान्त्रिकों ने जन-साधारण को अपने हाथों की उँगलियों के इशारे पर नाचने वाली कठपुतली बना लिया था। मुस्लिम शेख मुल्ला-सम्प्रदायवाद को बढावा दे रहे थे। समूचा समाज अनेक प्रकार की रूढ़ियों और आडम्बरों की भ्रान्तियों में भटक रहा था। आर्थिक असमानता का अन्तराल इतना अधिक बढ गया था कि उसे आसानी से पाटना असंभव था। जाति भेद, वर्ग भेद, रंग भेद, नारी उत्पीड़न, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बालविवाह, धार्मिक आडम्बर, मूर्त्तिपूजा, अंधविश्वास जैसी प्रथाओं ने जन-साधारण की मनःस्थिति को पूर्णतः विकृत कर दिया था। धर्म अपना यथार्थ रूप त्याग चुका था, वह मोक्ष का नहीं बंधन का सेतु बन गया था। तत्कालीन समाज की इस हालत को देखकर मध्ययुग के संत कवियों ने समाज सुधार का उद्घोष किया। ऐसी स्थिति में कबीर का आविर्भाव भारतीय जनता के लिए संजीवनी सिद्ध हुआ। महात्मा कबीर उन समाज सुधारकों में मध्यकाल के क्रांतिपुरुष माने जाते हैं इन्होंने सम्पूर्ण समाज में व्याप्त वैषम्य का विरोध करते हुए उसमें समन्वय स्थापित किया। यद्यपि वे पूर्णतः अनपढ़ थे, जैसा कि उनकी जीवनी के एक लेख द्वारा पता चलता है,

''मसि कागद छुऔ नहिं, कलम गही नहिं हाथ।''

फिर भी उपदेशात्मकता का जो समावेश किया वह लोक-कल्याण का पथ-प्रदर्शक माना जाता है।

समाज सुधारक के रूप में संत कबीर –

कबीर मूलतः सुधारवादी संत कवि माने जाते हैं। उनके काव्य में खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति दिखाई देती है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्यास अनेक विसंगतियों, आपसी विभिन्न भेद-भावों, पाखण्डों, आडम्बरों, अंधविश्वासों का भरसक विरोध किया। वे समाज में थोथे और हास्यास्पद धार्मिक तथा सामाजिक बन्धनों से ऊपर उठकर एक आत्मविश्वास का भाव उत्पन्न करना चाहते थे। कबीरदास घुमक्कड़ और भीड़-भाड़ पसन्द संत नहीं थे। वे एक ही स्थान पर अधिक समय तक रहकर साधु-संतों के समागम पर ही अपना उपदेश सामूहिक रूप से देते थे। वे सद्-गृहस्थ की भाँति श्रमनिष्ठ जीवन परम्परा का निर्वाह करने वाले संत थे। वे अपने परम्परागत पैतृक कार्य 'जुलाहे कर्म' में दक्ष थे। उनका लोकानुभव पर्यास विस्तृत था। साधु संतों की संगति में बैठकर उन्होंने अपने पाण्डित्य ज्ञान और लोक अनुभव का विस्तार किया था। अनपढ़ होने के कारण उनकी अपनी ऐसी भाषा नहीं थी कि जिसे हम उनकी भाषा कह सकें। अनेक भाषाओं के शब्दों का सम्मिश्रण उनकी बोली में था अथवा यों कहें कि उनकी भाषा खिचड़ी भाषा थी जिसे विद्वानों ने ''सधुक्कड़ी'' भाषा का नाम दिया था। कबीर ने इसी भाषा में अपने दार्शनिक विचारों के तीखे प्रहारों से समाज में व्यास बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। कबीर के समाज सुधारक को इन बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते हैं –

1. मानवीय एकता :– कबीर एकेश्वरवाद के प्रवर्तक थे। उनके अनुसार मानव ईश्वर की ही संतान है। जातीयता तो केवल कर्मबन्धन में से उभर कर सामने आई है। मानव का शरीर पंच भौतिक तत्त्वों (वायु, जल, अग्नि, पृथ्वी, आकाश) से निर्मित है और मृत्युपरान्त इन्हीं भौतिक तत्त्वों में विलीन हो जाता है। अतः हमें जाति तथा वर्णगत भेद को नहीं मानना चाहिए।

''साधो एक रूप सब माहिं।
अपने मनहिं विचारि के देखो, और दूसरो नाहीं।
एकै त्वचा रुधिर पुनि एकै, विप्र सूद के माहीं॥''

2. बाह्य आडम्बरों का विरोध – कबीर ने तत्कालीन समाज में व्यास धर्म के नाम पर हो रहे बाहरी आडम्बरों की जमकर भर्त्सना की है। उन्होंने कहा कि –

'माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेरि।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेरि॥

काया कँसू कमाण ज्यूँ, पंचतत्त करि बाँण।
मारौ तो मन मृग कौ, नहीं तो मिथ्या जाँण।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

इसी प्रकार कबीर ने वैष्णव भक्तों के आडम्बरों की खण्डना की है। उनका मत है कि मन की पवित्रता के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति संभव है। ढोंग रचना और छापा तिलक लगाना अपना ही अनर्थ करना है।

''वैसनौ भया तो क्या भया, बूझा नहीं विवेक।
छापा तिलक बनाइ कर, दगध्या लोक अनेक॥
छापा तिलक लगाय के, हुआ जो घोटम घोट।
मैमन्ता नहिं मारिया, जामैं बसया खोट॥''

ईश्वर तत्त्व का वास्तविक ज्ञान न रखने वाले ढोंगियों को वे नरपिशाच की संज्ञा देते हुए उनका विरोध करते हैं। ऐसे लोग समाज में केवल पाखण्ड का ही प्रसार करते हैं और भोले-भाले लोगों को गुमराह कर अपना स्वार्थ साधते हैं।

''करता दीसै कीरतन, संचा करि-करि तुंड।
जाणै बूझै कछु नहीं, यों ही आधा रूंड॥

कबीर ने मुसलमानों के आडम्बर युक्त कृत्यों की भी जमकर खण्डना करते हुए कहा कि ईश्वर (अल्लाह) का स्मरण मात्र से साक्षात्कार किया जा सकता है तो अनावश्यक दिखावे की क्या आवश्यकता है ? अल्लाह के करम को घृणात्मक कृत्यों से प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

''कांकर पाथर जोरि के, मस्जिद लई चिनाय।
ता चढि मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥''

''दिन भर रोज़ा रहत है, रात हनत है गाय।
यह खून वह बंदगी, कैसे खुशी खुदाय॥''

इसी क्रम में कबीर की यह साखी भी स्मरणीय है –

''बकरी पाती खात है, ताकी काढी खाल।
जे नर बकरी खात है, तिनको कौन हवाल॥''

कबीर ने ईश्वर प्राप्ति के लिए किये जाने वाले कुकृत्यों का विरोध करते हुए कहा कि ईश्वर का निवास स्वच्छ मन में है, उसे प्राप्त करने के लिए शारीरिक स्वच्छता के लिए किये जाने वाले आडम्बरों की आवश्यकता नहीं है। इसी क्रम में वे कहते हैं कि –

''मन मथुरा दिल द्वारका, काया काशी जाण।
दसवे द्वारे देहुरा, तामै ज्योति पिछाण॥''

3. अंधविश्वासों का खण्डन – कबीर ने तत्कालीन समाज में प्रचलित अंधविश्वासों का खण्डन करते हुए कहा कि – ईश्वर का साक्षात्कार मार्ग केवल मन की एकाग्रता व आत्मा की शुद्धि है। शारीरिक क्रिया कलाप तो ईश्वर भक्ति में एक प्रकार से व्यवधान है –

''मूँड मुड़ाये हरि मिलै तो सब कोई लेय मुँड़ाय।
बार-बार के मूड़ते भेड़ न बैकुण्ठ जाय॥''

ईश्वर प्राप्ति के लिए देवालयों, मस्जिदों, गुरूद्वारों या अन्य धार्मिक स्थानों पर जाने की आवश्यकता नहीं है और न हीं वैराग्य या समाधि की आवश्यकता है –

''मौकों कहाँ ढूँढ़े बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मन्दिर में ना मस्जिद में, ना काबे कैलास में॥''
''ना तो कौने क्रिया-कर्म में, नहीं योग वैराग में।
खोजी होई तो तुरतहिं मिलिहौं पल भर की तलास में॥''

अज्ञान से युक्त मन के द्वारा ईश्वर प्राप्ति का प्रयास भी व्यर्थ है। इसके लिए मन की स्वच्छता के साथ ज्ञान का भी होना आवश्यक है। हमारे हृदय में ईश्वर का निवास है। इसकी अनुभूति भी स्वयं को करनी है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''कस्तूरी कुण्डलि बसै, मृग ढूँढे बन माहिं।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखे नाहिं॥''
''ज्यों तिल माँही तेल है, ज्यो चकमक में आगि।
तेरा साँई तुज्झ में, जागि सके तो जागि॥''

4. मूर्त्ति पूजा का विरोध – कबीर ने ईश्वर प्राप्ति के लिये किये जाने मूर्तिपूजा के कार्य का भी अपने कड़े शब्दों में विरोध किया और कहा कि मूर्तियों की स्थापना व मन्दिरों का निर्माण और उनमें आस्था भी आडम्बर हैं। इन कार्यों से समाज में आर्थिक विषमता फैलती है। पादरियों, पुजारियों के द्वारा दिये जाने वाले प्रोत्साहन से इस क्षेत्र मेंनिरन्तर वृद्धि होती गई और धर्म के ठेकेदार माला-माल होते चले गये और जन-साधारण के लिए आर्थिक संकट सामने आते चले गये। कबीर ने इस मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए कहा कि –

''पाहन पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूँ पहाड़।
तातें यह चाकी भली, पीस खाय संसार॥''

ऐसे मूर्त्ति पूजकों को कबीर ने अपना ही अहित करने वाला बताया है –

''पाहण केरा पूतला, करि पूजै करतार।
इहिं भरोसे जे रहे, ते बूड़े काली धार॥''

5. अहंकार का विरोध – मानवीय जीवन के मूल्यों को समाप्त करने वाला एक महत्त्वपूर्ण खोट अहंकार है। तत्कालीन समाज में अनेक कुरीतियों, दुष्कृत्यों और कुचालों का जन्मदाता अहंकार ही है। अहम् भावना तो मानव के पैरों में पड़ी वह चक्की है जो निरंतर अवनति के मार्ग पर उसे ले जाकर एक ऐसे अँधे चौराहे पर खड़ा करती है, जहाँ कोई मार्ग दिखाई नहीं देता है। ईश्वर भक्ति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा अहंकार ही है। कवि ने इसका विरोध करते हुए कहा है कि –

''मैमंता मन मारि रे, घट ही माँहें घेरि।
जबहि चालै पीठ दै, अंकुस दे दे फेरि॥''
कागद केरी नाँव री, पाँणी केरी गंग।
कहे कबीर कैसे तिरू, पंच कुसंगी संग॥
मैमंता मन मारि रे, नान्हाँ करि करि पीस।
तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म झलकैं सीस॥

6. प्रचलित उपासना पद्धति का विरोध – तत्कालीन समाज में वैष्णव, शैव, नागपंथी तथा शाक्त अलग अलग प्रकार की उपासना पद्धति प्रचलित हैं यह केवल दिखावा मात्र है। कबीर ने इन सभी का विरोध करते हुए कहा है कि उपासना का मर्म समझने वाला ही सच्ची उपासना कर सकता है –

''अवधू भजन भेद है न्यारा।
क्या गावे क्या लिख बतावै, क्या भरमै संसारा॥
क्या संध्या तर्पण के कान्हें, जो नहीं तत्त्व विचारा।
मूंड़ मूडाये सिर जटा रखाये, क्या तन लाये छारा॥
क्या पूजा पाहन की कान्हे, क्या फल दिये अहारा।
विन षरचै साहिब हो बैठे, विषय करै ब्यौपारा॥''

7. जीवन की नश्वरता का संदेश – कबीर ने इस बात को बड़े ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया कि संसार नाशवान है, जीवन नश्वर है। सांसारिक आवागमन का क्रम निरन्तर और शाश्वत सत्य है अत: मानव मात्र के नेक कर्म, नेक भावना, यथा – दया, करुणा, स्नेह, सहानुभूति, भ्रातृत्व भाव, परोपकार, अहिंसा, सत्य और ईश्वर की भक्ति ही उसे चिरकाल तक जीवित रख सकती है, अ त: अहंकार रहित जीवन से सत्कर्मों का मार्ग मानव को अपनाना चाहिए और इन विचारों को कभी नहीं भूलना चाहिए कि –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

"चलती चक्की देखि के, दिया कबीरा रोय,
दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय॥"
"माली आवत देखि के कलियाँ करी पुकारि।
फुले फूले चुन लिये, काल्हि हमारी बारि॥"
"पानी केरा बुदबुदा, अस मानस की जाति।
देखत ही छुप जायेगा, ज्यों तारा परभाति॥"

निष्कर्ष – हम कह सकते हैं कि कबीर अपने युग के अग्रणी समाज-सुधारक और क्रान्ति पुरुष थे। उन्होंने तत्कालीन समाज में जो भी विसंगतियाँ और कुरीतियाँ देखीं, उन पर सशक्त प्रहार किया। उन्होंने पाखण्ड, अंधविश्वास और आडम्बरों का खण्डन करते हुए जन-मानस को सही दिशानिर्देश दिये और शुद्ध व मानवीय आचरणों का अनुसरण ही मुक्ति का मार्ग बताया। अतः हम कह सकते हैं कि कवि कबीर एक उच्चकोटि के श्रेष्ठ समाज सुधारक थे।

प्रश्न-2. कबीर के काव्य में समाविष्ट दार्शनिक तत्त्वों का समीक्षात्मक वर्णन कीजिए।

अथवा

कबीर के दार्शनिक चिन्तन पर सोदाहरण प्रकाश डालिए।

उत्तर – ब्राह्मण कुल में जन्मे, जुलाहा परिवार में पले-बढ़े कबीर स्वभाव से ही सन्त थे। उनका जीवन शिक्षा जगत् से सदैव अछूता रहा है। "मसि कागद छुऔ नहीं, कलम गहीं नहिं हाथ।" उन्होंने किसी पाठशाला में शिक्षाप्राप्त नहीं की थी फिर भी उनके काव्य में अध्यात्म और दर्शन सम्बंधित मार्मिक तथ्य मिलते हैं। धर्म, दर्शन, पुराण आदि की पुस्तकें नहीं पढ़ीं थी किन्तु उनके अन्तःकरण में प्रकाशित ज्ञान ज्योति ने उन्हें बहुमुखी क्षेत्रों में आभासित कर दिया था। उनका लौकिक ज्ञान बहुत विस्तृत था। रामानन्द के परम शिष्य कबीर ने लोक अनुभव और साधु-संतों की सत्संगति से सम्पूर्ण ज्ञान-जगत् का स्वच्छन्द भ्रमण किया था। कबीर के काव्यों में वही श्रुत एवं अनुभूत ज्ञान व्यक्त हुआ है। उसी आधार पर उन्होंने समाज सुधार, धर्म एवं दर्शन सम्बंधी विचार व्यक्त किये हैं।

कबीर का दार्शनिक चिन्तन – निर्गुण भक्ति काव्यधारा में संत कबीर का व्यक्तित्व सबसे अधिक प्रखर माना जाता है। निर्गुण काव्य धारा के कवियों पर नाथपंथियों तथा हठयोग का गहरा प्रभाव पड़ा था, इसी वजह से उन्होंने ब्रह्म को निराकार एवं निर्गुण प्रतिपादित किया। कबीर के काव्य में निराकार ब्रह्म को लक्ष्य बनाकर जो दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचाराभिव्यक्ति मिलती है, उसमें विधि-निषेध एवं कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर अधिक बल दिया है। इसी कारण कबीर के काव्य में जातिगत भेद-भाव, अवतारवाद, नमाज-उपासना, मूर्त्तिपूजा, बहुदेववाद का विरोध व्यक्त हुआ है और समाज में प्रचलित पाखण्डों व रूढ़ियों की कटु आलोचना मिली है।

उन्होंने साधक के शुद्ध आचरण पर अधिक बल देकर गुरु-कृपा से प्राप्त ज्ञान उसका साधन बताया है। कबीर के काव्य में प्रेमासक्ति और रहस्यवाद की प्रवृत्तियों का स्पष्टीकरण मिलता है। उन्होंने ब्रह्म तथा जीव के बीच माया को व्यवधान बताया और प्रेम का आलौकिक वर्णन करते हुए अनासक्त रहकर ब्रह्म को प्राप्त करने की बात को प्रतिपादित किया है। इस प्रकार उनके काव्य में दार्शनिक चिन्तन तथा ज्ञान तत्त्व का विस्तृत वर्णन मिलता है। उन्होंने अपने दार्शनिक चिन्तन में गुरु-कृपा, माया, परमात्मा, ज्ञान,मोक्ष, अद्वैतवाद एवं आध्यात्मिक भक्ति पर प्रकाश डाला है। कबीर के दार्शनिक तत्त्वों की जो समीक्षा की है उस पर प्रकाश डालते हुए –

1. गुरु कृपा – कबीर की साधना में गुरु का सर्वाधिक महत्त्व है। उनके मतानुसार गुरु-कृपा ही एकमात्र ऐसा साधन है जिसमें प्राणी इस संसार-सागर से पार उतर सकता है और जीवन-मरण के बंधन से मुक्ति पा सकता है। गुरु-कृपा ही ईश्वर से साक्षात्कार कराने का अचूक मार्ग है। गुरु को गोविन्द से भी बड़ा मानकर परम्-तत्त्व की प्राप्ति का साधन बताया है। कबीर ने अनेक प्रकार से गुरु की महिमा का वर्णन किया है।

"गुरु कृपाल कृपा जब कीन्हीं, हृदय कँवल बिगासा।
भागा भ्रम दसौं दिस सूझ्या, पर जोति परकासा॥"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खानि।
सीस दिये जो गुरु मिलै, तौ भी सस्ता जानि॥''
''गुरु सिकलीगर कीजिये, मनहिं मुस्कुरा देय।
मन की मैल छुडाय कै, चित्त दरपन कर लेय॥''

2. माया का स्वरूप – अज्ञान जनित भ्रम जाल माया है। यह संसार माया-जाल है। इस पृथ्वी पर व्याप्त सभी सुख नाशवान हैं, सब कुछ नश्वर है फिर भी इनके प्रति आसक्ति रखते हुए मनुष्य मोहवश अज्ञान के बंधन में बँधा रहता है। अपने ही घर में विद्यमान परम् ब्रह्म परमेश्वर के परम् तत्त्व की अनुभूति इसी अज्ञानवश प्राणी नहीं कर पाता है। माया अपने त्रिविध गुणों से जीवात्मा को बाँधे रखती है।

यही माया जीवात्मा को अज्ञान से आवृत्त रखती है और उसे सांसारिक सुख-भोग एवं वासना में आसक्तकर उसको पथ भ्रष्ट बनाए रखती है। कबीर ने माया को ठगिनी व डायन कहा है –

''माया महा ठगिनी हम जानी।
तिरगुण फाँसि लिये कर डोलै, बोले मधुरै बानी॥
केशव के कमला होई बैठी, सिव के भवन भवानी।
पण्डा के मूरति होई बैठी, तीरथ में भई पानी॥''
''डायन एक सकल जग खायो, सो भी देख डरी॥''

3. त्रिगुणात्मक जगत् – कबीर ने इस संसार को मायात्नक व त्रिगुणात्मक बताकर इसे जीवात्मा के अज्ञानग्रस्त होने का उल्लेख किया है। सत्त्व, रज और तम – ये तीनों गुण व्यक्ति के मन को सुख-भोग में आसक्तरखते हैं, जिससे उसकी तृष्णा निरन्तर बढती है और वह अविवेक, लोभ, मोह आदि से ग्रस्त हो जाता है। जब तक मन पर इन तीनों गुणों का प्रभाव रहता है तब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है –

''माया मुई न मन मुआ, मरि-मरि गया सरीर।
आसा तृष्णा ना मुई, यौं कह गया दास कबीर॥''

4. ईश्वरीय स्वरूप – कबीर ने निर्गुण, निराकार और अरूप ईश्वर की उपासना पर बल दिया है। इनके अनुसार ईश्वर का केवल अनुभव किया जा सकता है क्योंकि परम् ब्रह्म अगम और अगोचर है –

''जाके मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप-कुरूप।
पुहुप बास ते पातरा, ऐसा तत्व अनूप॥''

जिस प्रकार पुष्प की पंखुड़ियों में खुशबू को देखा नहीं जा सकता बल्कि अनुभव किया जा सकता है, ठीक वैसे ही हम परम प्रभु की उपस्थिति का अहसास कर सकते हैं। यह अनुभूति गूँगे के लिये गुड़ के मिठास के स्वाद की अनुभूति है जो अवर्णनीय है।

''पार ब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे को सोभा नहीं, देख्या ही परवान॥''

परमात्मा घट-घट वासी है। हम अज्ञानवश उसे देख नहीं पाते हैं –

''कस्तुरी कुण्डलि बसे, मृग ढूँढे बन माहिं।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनियाँ देखे नाहिं॥''

5. अद्वैतवाद का समर्थन – कबीर का दार्शनिक चिन्तन अद्वैत वेदान्त से प्रभावित है। वे एकेश्वरवाद के अनुसार ब्रह्म और अल्लाह में, राम और रहीम में, केशव और शिव में कोई अन्तर नहीं मानते हैं। वे जीवात्मा और परमात्मा को भी अभेद बताते हुए उनकी तात्विक एकता को स्पष्ट करते हैं। उनके अनुसार माया के कारण जीवात्मा स्वयं को परमात्मा से पृथक् समझने लगती है जबकि –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

"पानी ही ते हिम भया, हिम ह्वै गया विलाय।
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कह्या न जाय॥"

6. ज्ञान-साधना – कबीर निर्गुण व्यक्ति धारा की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि माने गये हैं। उन्होंने आत्मा व परमात्मा की तात्त्विक एकता को स्पष्ट करते हुए बताया है कि यह संसार मिथ्या एवं नश्वर है। जब व्यक्ति ज्ञान की साधना करता है तो उसका समूचा अज्ञान दूर हो जाता है, माया का बन्धन टूट जाता है। अहंकार का भाव नष्ट हो जाता है और परमात्मा की ज्योति के दर्शन सहज भाव से हो जाते हैं, यथा –

"जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं।
सब अंधियारा मिट गया, जब दीपक देख्या माहिं॥"

कबीर के अनुसार इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त होना ही एक प्रकार की मुक्ति है। उन्होंने ज्ञान साधना के मार्ग को कठिन, अगम और मुश्किल बताया है। जब जीवात्मा माया और द्वैतभाव से मुक्त होकर श्रद्धा पूर्वक गुरु कृपा से आगे बढ़ता है तो उसे ज्ञान प्राप्त हो सकता है, अन्यथा नहीं।

"फल मीठे ते तरुवर ऊँचा, कौन जतन करि लीजै।
नेक निचोई सुधा रस बाकी, कौन जुगुति सो पीजै॥"

इस प्रकार की दार्शनिक विचारधारा प्रकट करते हुए कबीर ने ज्ञान के द्वारा हृदय के आलोकित होने को सच्ची समाधि बताया है। इसी ज्ञान लोक की साधना को जीवन का चरम लक्ष्य कहा है –

"ज्ञान दीप परकास करि, भीतर भवन जराय।
तहाँ सुमिर सत नाम कौ, सहज समाधि लगाय॥"

7. मोक्ष (निर्वाण) – संत कबीर के काव्य में माया, ईश्वर, अद्वैत आदि के साथ-साथ मोक्ष (निर्वाण) के सम्बन्ध में भी विशद् विचारों की अभिव्यंजना की गई है। कबीर ने मोक्ष की आनन्द अवस्था का कहीं आलंकारिक और कहीं सांकेतिक चित्रण किया है।

"रस गगन गुफा मैं अजर झरै।
अजपा सुमिरन जाप करै॥"

कवि ने भारतीय दर्शन के अनुसार कहा है कि जब जीवात्मा को मुक्ति मिलती है तो वह सांसारिक आवागमनों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है तथा परम् तत्त्व में ही आनन्दमग्न रहता है –

"मान सरोवर सुभग जल, हंसा केलि कराहिं।
मुक्ताहल मुक्ता चुगै, अब उड़ि अनत न जाहि॥"

इसीलिए कबीरने कर्मों के बन्धन से मुक्त होने की बात कही है और जीवात्मा व परमात्मा के अभेदात्मक मिलन को ही मोक्ष बताया है। कर्म बन्धनों को तोड़े बिना मोक्ष की प्राप्ति किसी भी अन्य स्थिति में नहीं है –

"जीवत समझे, जीवत बूझे, जीवत मुक्ति निवासा।
जीवत करम की फाँस न काटी, मुये मुक्ति की आसा।
तन छूटे जिव मिलन करत है, सो सब झूँठी आसा।"

8. योग साधना – संत कबीर पर हठयोग और नाथ-पंथ की विचारधारा का प्रभाव था, इसी कारण से उन्होंने अपने काव्य में ब्रह्मरन्ध्र, सहस्त्रार कमल, कुण्डलिनी, सुषुम्ना आदि का पारिभाषित, संख्यात्मक और सांकेतिक प्रतीकों द्वारा परिचय दिया है और योग-साधना के अनुसार उन्हें जागृत करने की अनेक क्लिष्ट क्रियाओं पर प्रकाश डाला है, यथा –

"इंगला पिंगला ताना भरनी, सुसमन तार से बीनी चदरिया।
आठ कँवल दल चरखा डोले, पाँच तत्त्व गुनी तीनी चदरिया॥"

9. रहस्य साधना – कबीर के काव्य में अमूर्त और निगूढ़ दार्शनिक तत्त्वों तथा आध्यात्मिक अनुभूतियों का आधिक्य है। जब

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उन्होंने स्वयं को ईश्वर की प्रियतमा बताकर आत्मा व परमात्मा के विरह तथा प्रेम की पीर का चित्रण किया है, तब उनका रहस्यवाद भावात्मक बन गया है, परन्तु जहाँ दर्शन के गूढ़ तत्त्वों के आधार पर अद्वैतवाद तथा जीवात्मा परमात्मा की एकता के रूपक प्रस्तुत किये हैं, वहाँ पर कवि का साधनात्मक रहस्यवादी चिन्तन व्यक्त हुआ है। उनका साधनात्मक रहस्यवाद पूर्व में योग-साधना ही है, परन्तु भावात्मक रहस्यवाद उनकी अलौकिक प्रेमासक्ति का परिचायक है। ऐसे प्रसंगों में कबीर के काव्यों में व्यक्ति दार्शनिक चिन्तन आध्यात्मिक अनुभूति से अनुरंजित दिखाई देता है –

''दुलहनि गावहुं मंगलाचार।
हम घरि आये हौं राजाराम भरतार॥
तन रत करि मैं मन रत करिहौं, पंचतत्त बाराती।
रामदेव मोरे पाहुँने आये, मैं जोवन मद माती॥''

प्रतीत होता है कि कबीर पर सूफ़ीवाद का भी प्रभाव था और स थ ही उन पर हठयोग का भी। इस कारण उन्होंने रहस्यसाधना के रूप में कभी तो परमात्मा को अपने घट में ही विराजमान बताया है और कभी उसे अपना प्रियतम बताकर विरह-व्यथा का अंकन किया है–

''साइ बिन दरद करेजे होय।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया, कासूँ कहुँ दुख होय॥''

निष्कर्ष – कबीर के काव्य में दार्शनिकता का स्वर सशक्त अनुभव होता है। उनके दार्शनिक चिन्तन पर हठयोग, नाथपंथ का प्रभाव है, वहीं दूसरी ओर अद्वैत वेदान्त, योग और सांख्यदर्शन का भी प्रभाव है। शैव तथा शाक्त मत के साथ वैष्णव मत का भी पर्याप्त ज्ञान था। अपने दार्शनिक चिन्तन की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने अनेक प्रतीकों और कूट पदों को अपनाया है। अत: हम कह सकते हैं कि कबीर ने अपने विभिन्न प्रतिकों के माध्यम से अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों और दर्शन के गूढ़ तत्त्वों का जैसा प्रभावशाली वर्णन किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रश्न-3. कबीर की ''रहस्यवादी प्रवृत्ति'' पर प्रकाश डालते हुए उनकी काव्यगत विशेषताओं को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

अथवा

कबीर की साखियों में समाहित विशेषताओं को सोदाहरण व्यक्त करते हुए उनकी रहस्यवादी प्रवृत्ति पर टिप्पणी लिखिये।

उत्तर – कबीर संत-काव्यधारा के प्रमुख शिरोमणी एवं प्रतिनिधि कवि माने गये हैं। इनके जीवन के संदर्भ में कोई प्रामाणिक तथ्य नहीं है किन्तु पौराणिक जनश्रुतियों और साहित्यिक शोधकर्त्ताओं के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रमाणों के आधार पर कहा जाता है कि इस दिव्यात्मा का संसारागमन 1455 में हुआ था। कहा जाता है कि इनका जन्म विधवा ब्राह्मणी की कोख से हुआ था। लोक लाज और सामाजिक मान-मर्यादाओं के कारण वह कबीर को अपने पास नहीं रख पाई और नवजात शिशु को एक अज्ञात स्थान पर 'लहरतारा' नामक तालाब के किनारे छोड़ आई थी। इस तालाब को 'तरणतारा' के नाम से भी जाना जाता है। कुछ जनश्रुतियों के अनुसार उस ब्राह्मणी ने अपनी आर्थिक स्थिति के कारण कबीर को नहीं अपनाया था, किन्तु यह तथ्य अतिमान्य नहीं हो सकता है क्योंकि कभी भी ''माता कुमाता नहीं होती है।'' हम इस सत्य से भी मुँह नहीं मोड़ सकते हैं कि ''जाकौ राखै साइयां, मारि सकै नहिं कोई।'' अर्थात् मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है और जिस पर परमेश्वर की कृपा हो उसका तो कुछ बिगड़ ही नहीं सकता है। कदाचित् कबीर को ईश्वर ने भेजा ही मानवता का मसीहा बनाकर था। एक जुलाहा दम्पत्ति नीमा और नीरू ने उस अज्ञात स्थान पर से इस बालक को उठा लिया और ईश्वर का आशीर्वाद समझ कर उसे अपने पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया। यथास्थिति कबीर का लालन-पालन होने लगा था। इनके नामकरण के संदर्भ में कहा जाता है कि मौलाना और मौलवियों ने धर्मग्रंथ 'कुरान' में इस बालक का सभी स्थितियों और परिस्थितियों के अनुसार 'कबीर' नाम निकाला था, किन्तु वे यह नाम इस बालक को नहीं देना चाहते थे, क्योंकि कबीर का अर्थ मुस्लिम धर्मग्रंथ की शब्दावली में 'महान्' होता है और जुलाहा जाति के घर में पलने वाले बालक को 'महान्' या 'कबीर' नाम देना मौलानाओं और मौलवियों की शान के विरूद्ध था। बार-बार उन्होंने अनेक धर्मग्रंथों में इस बालक के अन्य नाम का शोध किया, किन्तु हर बार यही नाम 'कबीर' सामने आया था। उस समय बालविवाह का प्रचलन था। कबीर का विवाह भी बाल्यावस्था में 'लुई' नामक कन्या के साथ सम्पन्न हो गया। कबीर को एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम 'कमाल' रखा गया था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''मसि कागज छुओ नहीं, कलम गही नहिं हाथ।'' पौराणिक ग्रंथ में उल्लेखित प्रस्तुत पंक्ति के आधार पर कहा जाता है कि वे अनपढ थे। कबीर बहुश्रुत अवश्य थे और संतों के सम्पर्क में रहकर वे और अधिक ज्ञानी होते चले गये। भ्रमणशील व्यक्ति होने के कारण उन्हें लोकानुभव प्राप्त हुआ, जो आगे चलकर उनकी साखियों के रूप में व्यक्त हुआ। कबीर के गुरु रामानन्द थे। उन्हीं से कबीर ने ''राम-राम'' रूपी गुरु मंत्र प्राप्त किया था।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा कि, ''पन्द्रहवीं शताब्दी में कबीर सबसे अधिक शक्तिशाली व प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व के धनी थे। संस्कार ग्रहण करने के जितने भी रास्ते होते हैं, वे सभी उनके लिए बन्द थे। वे न मुसलमान थे और न हिन्दू ही थे, वे तो भगवान् की ओर से ही सबसे न्यारे बनाकर भेजे गये थे।'' वास्तव में उस समय कबीर ऐसे मिलन बिन्दु पर खड़े थे, जहाँ पर हिन्दुत्व और मुस्लिमत्व का कोई व्यापक अर्थ नहीं था। यही कारण है कि उन्होंने अपने काव्य में रूढ़ियों और आडम्बरों का विरोध कर सम्पूर्ण मानव जाति को एकता, सद्भाव, प्रेम, भक्ति, ज्ञान, सत्संगति और मानवता का उपदेश दिया है।

कबीर स्वभाव से फक्कड़ और आदत से अक्खड़ व जन्म से अभिशप्त होते हुए भी कर्म से वन्दनीय थे। उन्होंने अपने समकालीन सामाजिक बुराइयों, अंधविश्वासों और पाखण्डों का विरोध करते हुए आत्मा-परमात्मा और जीवन व्यवहार के विषय में अनेक प्रकार के क्रांतिकारी विचार प्रस्तुत किये।

इनके काव्य में खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति, धर्म व समाज सुधार की भावना तथा आत्मानुभूति के द्वारा प्रेम रहस्य का समन्वय मुख्य रूप से देखने को मिलता है। कबीर की एकमात्र रचना ''बीजक'' है, जिसके तीन भाग हैं, साखी, सबद और रमैनी। साखियों की संख्या सर्वाधिक है और बेजोड़ चमत्कारपूर्ण हैं।

'साखी' शब्द का अभिप्राय –

''साखी आँखी ज्ञान की, समझि लेहु मन माहिं।
बिन साखी संसार का, झगड़ा छुटे नाहिं॥''

साखी का सामान्य बोल-चाल में अर्थ ''साक्षी'' या गवाह अथवा प्रत्यक्ष दृष्टा होता है। साक्षी शब्द का तद्भव रूप ही साखी है। जहाँ तक कबीर के साखी शब्द के अर्थ का सम्बन्ध है, तो इस शब्द का अर्थ है – 'शिक्षा' अथवा 'ज्ञान या सीख'।

रहस्यवादी प्रवृत्ति के प्रवर्तक के रूप में – कबीर

रहस्यवाद की सभी स्थितियाँ कबीर की साखियों में भली भाँति देखी जा सकती हैं। कबीर की आत्मा-परमात्मा की अलौकिक ज्योति के दर्शन कर पहले आश्चर्य चकित होती है और फिर परमात्मा से मिलन की व्याकुलता का अनुभव करती है। इस व्याकुलता की स्थिति में विरह-मिलन, आशा-निराशा, अभिलाषा और वेदना की सहज अभिव्यक्ति कबीर के काव्य में देखी जा सकती है। जब चिर प्रतिक्षित मिलन की घड़ियाँ समाप्त होती हैं, तो आत्मा, परमात्मा में विलीन हो जाती है। उस समय कबीर को सम्पूर्ण संसार ब्रह्ममय प्रतीत होने लगता है। कबीर की रहस्यवादी प्रवृत्ति को स्पष्ट करने के लिये –

1. अभेद का प्रतिपादन – अद्वैत भावना से प्रभावित होकर कबीर ने सम्पूर्ण संसार को अभेद बताया है और कहा है ब्रह्म सर्वत्र है। आत्मा-परमात्मा भिन्न नहीं हैं –

''लाली मेरे लाल की, नित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥''

कबीर को सम्पूर्ण संसार के व्यापक चक्र में परमात्मा की ज्योति लक्षित होती है। वे ईश्वर को समुद्र और स्वयं को मछली समझते हैं।

2. जीवात्मा का परमात्मा से महामिलन – कबीर का रहस्यवाद आत्मा और परमात्मा को प्रेमी-प्रेमिका मानता है। जबसे आत्मा रूपी नायिका या प्रेमिका परमात्मा रूपी प्रेमी से बिछुड़ी है, वह पुनर्मिलन के लिये व्याकुल है, हमेशा प्रभु की राह देखती रहती है। वह खुलकर रो भी नहीं पाती है क्योंकि रोने से आँखें खराब हो जाती हैं, कहीं प्रभु आकर चले जाये और वह उन्हें देख भी न पाये।

पंथ निहारै कामिनी लोचन भरी ले उसासा।
उर न भीजे, पगु न खीसै, हरि परसन की आसा॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. मुक्तावस्था का वर्णन – कबीर के अनुसार ब्रह्मरन्ध्र से हमेशा आनन्दरस गिरता है। वहाँ पर बिना किसी वाद्य-यंत्र के मनमोहक झंकार होती है। अनहद नाद गूँजता रहता है किन्तु वह सिद्ध पुरुष को ही सुनाई देता है।

''रस गगन गुफा में अजर झरै। अजपा सुमिरन जाप करे॥
बिन बाजा झँकार उठै, जहै समुझि परै जब ध्यान धरै।
बिन चँदा उजियारो दरसै, जँह-जँह हंसा नजर परै॥

4. हठयोग – कबीर ने पंच भौतिक तत्त्वों एवं सहस्त्रदल कमल का वर्णन कर हृदयस्थ कुण्डली जागृत करने की प्रेरणा देकर हठयोग की प्रतीकात्मकता को स्पष्ट किया है –

''इंगला-पिंगला ताना भरनी, सुसमन तार से बीनी चदरिया।
आठ कँवलदल चरखा डोलै, पाँच तत्त्व गुन तीनि चदरिया॥''

अत: कबीर एक श्रेष्ठ रहस्यवादी कवि माने जाते हैं।

काव्यगत विशेषताएँ – भक्तिकाल भले ही सगुण और निर्गुण धाराओं में विभाजित होकर सामने आया हो, किन्तु उसमें कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, ऐसी मान्यताएँ हैं और ऐसे जीवन मूल्य हैं, जो समान रूप से सन्तों, सूफियों, रामभक्तों, कृष्ण भक्तों में देखने को मिल जाते हैं और उन्हीं समान बातों के कारण भक्तिकाल का अपना महत्त्व है। प्रत्येक कवि की रचनाओं में भी अनेक लक्ष्यों, जीवन मूल्यों, आदर्शों, सिद्धान्तों आदि में कुछ-न-कुछ समानताएँ अवश्य रही हैं, भले ही उनके मार्ग अलग-अलग रहे हों। हर रचनाकार की कृतियाँ अपनी अलग विशेषताएँ लिये हुए हैं। इन प्रमुख विशेषताओं को हम दो भागों में विभाजित करते हैं – भावपक्षीय विशेषताएँ और कलापक्षीय विशेषताएँ। कबीर की काव्यगत विशेषताओं को भी हम इसी प्रकार वर्णित करेंगे।

भावपक्ष– कबीर की साखियों का काव्य-सौन्दर्य भावपक्ष की दृष्टि से जितना सशक्त है। इनका कला पक्ष भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने विभिन्न प्रसंगों को लेकर जनमंगल का जो भाव व्यक्त किया है, वह अपने आपमें एक क्रान्ति लिये हुए है। कबीर को तात्कालिक समाज में जो भी कुरीतियाँ दिखाई दीं, उन पर तुरन्त प्रहार प्रारम्भ किये गये। कबीर ने अनपढ़ होते हुए भी अपने भावों की जो अभिव्यक्ति की वह वास्तव में प्रशंनीय हैं उन अभिव्यक्तियों के तीखे प्रहारों से उनका ओघड़ रूप भी सामने आया। कबीर की साखियों के आधार पर उनके भाव पक्ष को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं –

1. गुरु महिमा –

''पीछे लागा जाई था, लोक वेद के साथी।
आगै थे सत गुरु मिल्या, दीपक दीया हाथी॥''

भारतीय धर्म संस्कृति के अनुसार मानव जीव गुरु के बिना अपूर्ण माना गया है। जीवन के दुर्गम और टेढ़े-मेढ़े मार्ग पर मानव धर्म का निर्वाह करते हुए निरंतर आगे बढ़ने के लिए गुरु एक सच्चे मार्गदर्शन की अहम् भूमिका निभाता है। गुरु के द्वारा जीवन के सम्पूर्ण अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट कर ज्ञान-दीप प्रज्वलित किया जाता है। गुरु की महिमा का वर्णन करना साधारण मानव ज्ञान के वश की बात नहीं है। कबीर ने गुरु कृपा का अत्यधिक महत्त्व बताया है। गुरु ही साधक को सांसारिक माया-मोह के बन्धनों से छुटकारा दिलाकर जीवन में व्यास अज्ञान रूपी अंधकार से मुक्त करा सकता है।

कबीर ने गुरु के महत्त्व को ईश्वर से अधिक बताया है –

''गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय॥''

निराकार, अगम, अगोचर परम् तत्त्व अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति के लिए गुरु-कृपा अत्यंत आवश्यक है।

''यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान॥''

सच्चे गुरु को प्राप्त करना भी इस संसार में आसान नहीं है। सत्कर्म, अहंकार रहित जीवन ज्ञान के प्रभाव से ही गुरु को प्राप्त किया जा सकता है। कबीर ने गुरु को ज्ञान रूपी अमृत की खान और मानव जीवन को विष अर्थात् सांसारिक विकारों की बेलरी बताकर गुरु के महत्त्व का प्रतिपादन किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

"गुरु कृपालु कृपा जब कीन्ही, ह्रदय कँवल बिगासा।
भागा भ्रम दसौं दिस सूझया, पर जोति परगासा॥"

"गुरु सिकलीगर कीजिये, मनहिं मसकला देय।
मन की मैल छुड़ाय कै चित दरपन करि लेय॥

इसलिये संत कबीर ने अनेक प्रकार से गुरु के महत्त्व को स्पष्ट किया है और बताया है कि सच्चे गुरु की अनुपम कृपा से मानव देह शुद्ध और पवित्र होकर सांसारिक आवागमन अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त होती है।

2. अहंकार रहित ज्ञान-साधना – संत कबीर निर्गुण भक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा के कवि थे, उन्होंने आत्मा और परमात्मा की तात्विक एकता को स्पष्ट करते हुए बताया कि ये दोनों अभेद हैं। यह संसार मिथ्या एवं नश्वर है –

"पानी और लहर में भिन्न कोयम।
उठे तो नीर है, बैठे तो नीर है कहौ किस तरह भिन्न होयम।"

जिस प्रकार समुद्र में निरन्तर उठती हुई लहरों और शान्त जल में तात्विक एकता है उसी प्रकार आत्मा व परमात्मा एक हैं। जब व्यक्ति सच्चे मन से अहंकार रहित ज्ञान की साधना करता है तो उसे सद्ज्ञान प्राप्त होने लगता है और उसका सांसारिक माया-बन्धन टूट जाता है। अहंकार भी स्वयं नष्ट होने लगता है और परम् ज्योति के दर्शन भी स्वयं होने लगते हैं। ज्ञान और अहंकार दोनों एक दूसरे के विरोधी तत्त्व हैं –

"जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है, मैं नाहिं।
सब अंधियारा मिट गया, जब दीपक देख्या माहिं॥

कबीर के अनुसार इस प्रकार का ज्ञान ही एक प्रकार से 'मुक्ति' है। उन्होंने ज्ञान-साधना के मार्ग को बहुत कठिन बताया है। अगम, चिकना और रपटीला व संकटों से युक्त मुक्ति का मार्ग है। जब जीवात्मा, माया और द्वैत भाव से मुक्त होकर श्रद्धा पूर्वक गुरु-कृपा से आगे की ओर बढ़ती है, तभी उसे ज्ञान प्राप्त होता है –

"फल मीठे पै तरवर ऊँचा, कौन जतन कर लीजै।
नेक निचोई सुधा रस वाकी, कौन जुगुति सो पीजै॥"

दार्शनिक विचारधारा के अनुसार यह स्पष्ट होता है कि ज्ञानदीप द्वारा ह्रदय का आलोकित होना सच्ची समाधि है, उसी ज्ञान लोक की साधना को जीवन का परम लक्ष्य बताया है।

3. विरहानुभूति – रहस्यवाद में आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध प्रेम पर टिका है। आत्मा और परमात्मा को प्रेमी व प्रेमिका के रूप में प्रदर्शित किया गया है। भावनात्मक-रहस्यवाद की दूसरी स्थिति विरह की मानी गई है। इसमें भक्त अपने आराध्य के साक्षात्कार के लिये व्याकुल और प्रयत्नशील रहता है। कबीर की साखियों में प्रेम की पीर का वर्णन सहृदयता और निर्मलता से किया गया है। उन्होंने अपनी विरह व्याकुलता और अकुलाहट को स्पष्ट करते हुए "विरह का अंग" में कहा है कि –

"विरहिन ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाई।
एक सबद कहि पीव का, कबरै मिलहिंगे आई॥"

"नैना नीझर लाइया, रहँट बसे निस जाम।
पपिहा ज्यों पिउँ-पिउँ करौ, कबिरै मिलहिंगे राम।"

कबीर ने विरह श्रृंगार की अभिव्यंजना बहुत ही मार्मिक ढंग से की है। जहाँ कबीर के काव्य में मार्मिकता है वहाँ पर उनका कलात्मक सौन्दर्य भी सामने आया है।

"बहुत दिनन की जोवती, बाट तुम्हारी राम।
जिव तरसै पिउ मिलन को, मन नाही बिसराम॥"

"आय न सकौ तुज्झ पै, सकौ न तुज्झ बुलाय।
जिउरा यूँ ही लेहुंगे, विरह तपाय-तपाय॥"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. आत्मा व परमात्मा का महामिलन – कवि की साखियों में परमात्मा और आत्मा के मिलन की आनन्दमयी अनुभूति का सरस व रोमांचक चित्रण मिलता है। उन्होंने कहा कि अज्ञान में डूबी हुई जीवात्मा को जब ज्ञान-पथ पर अग्रसर होने की शक्ति प्राप्त होती है तो उसे ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है और उसे इस संसार में आवागमन से मुक्ति मिल जाती है। आत्मा व परमात्मा का मधुर मिलन अलौकिक आनन्ददायी होता है जिसका वर्णन असंभव है। उस महामिलन का महाआनन्द तो उस गूँगे व्यक्ति के गुड़ के स्वाद की भांति है जिसका वह चाहते हुए भी वर्णन नहीं कर सकता है –

''कबीर सुपने हरि मिल्या, मोहि सूता लिया जगाय।
आँखि न मीच्यों डरपता, मति सुपना होई जाय॥''

5. एकेश्वरवाद को महत्त्व – संत कबीर ने बहुदेववाद का खण्डन कर एकेश्वरवाद के महत्त्व पर अपनी साखियों में बल प्रदर्शित किया है। उनके अनुसार ईश्वर एक है और सम्पूर्ण सृष्टि में उसी की कान्ति देदीप्यमान रहती है। कबीर ने अवतारवाद को स्वीकार नहीं किया है। कबीर के राम दशरथ नन्दन राम नहीं बल्कि परम ब्रह्म ही राम है। वे स्पष्ट रूप से यह मानते थे कि विविध देवताओं के नाम एक ही परम्‌तत्त्व के विभिन्न लोकोपकारक हैं।

6. तत्त्वज्ञान की महत्ता – संत कबीर ने शास्त्रों से प्राप्त ज्ञान को महत्त्व नहीं दिया है बल्कि शास्त्र ज्ञान की अपेक्षा निजी अनुभव से प्राप्त अनुभूतिपरक ज्ञान अथवा साधना से प्राप्त ज्ञान को महत्त्वपूर्ण बताया है। निर्गुणवादी कबीर की साखियों में स्पष्ट किया गया है कि –

''पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई।
ढाई आखर प्रेम का, पढै सो पंडित होई॥''

7. मोक्ष या निर्वाण की प्राप्ति – कबीर की साखियों में मोक्ष-प्राप्ति और उसकी अभेदात्मक अवस्था का चित्रण किया है। उनके अनुसार मोक्ष की अवस्था में जीवात्मा मन रूपी सागर में मुक्ति रूपी मोती चुगता है, वह कभी भी इस संसार में विचरण नहीं करता है –

''मान सरोवर सुभग जल, हंसा केलि कराहिं।
मुक्ताहल मुक्ता चुगै, अब उड़ि अनत न जाहिं॥''

जीवात्मा और परमात्मा का जब अभेदात्मक महामिलन होता है तो वही मोक्ष-प्राप्ति है।

8. सांसारिक नश्वरता – कबीर की साखियों में सांसारिकता और क्षणभंगुरता का जो चित्रण हुआ है उससे स्वतः संसार की असारता का अहसास होने लगता है और जीवन मूल्य का वास्तविक रूप सामने उभरने लगता है। काल (समय) शाश्वत् गतिशील है। ''काल कौ अंग'' साखियाँ इसका प्रमाण हैं। जीवात्मा इस संसार में केवल चार दिन का मेहमान है, अतः इस अल्प समय में पार्थिव शरीर से प्रेम न करके उस परम् सत्ता के स्वामी से प्रेम करना चाहिये।

''कबीर नौबत आपणी, दिन दस लेउ बजाय।
ए पुर पट्टन ए गली, बहुरि न देखो आय॥''

कबीर ने शरीर की नश्वरता के प्रति विचार व्यक्त करते हुए माया से दूर रहने के उपदेश दिये हैं।

''चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय॥''
''माली आवत देखिकै, कलियाँ करी पुकारि।
फूले फूले चुन लिये, काल्हि हमारी बारि॥''

9. बाह्य आडम्बरों का खण्डन – कवि की साखियों में मानवीय आचरण, सदाचार व मन की शुद्धि पर विशेष बल दिया गया है। धार्मिक पाखण्डों का खण्डन किया गया है और बताया है कि ईश्वर की प्राप्ति के लिए मन की शुद्धि, तत्त्वज्ञान, पवित्राचरण और आस्था की आवश्यकता है। पूजा-पाठ, मूर्ति-पूजा, जाप, वैराग्य अथवा अन्य धार्मिक रूढ़ियों की कवि ने कटु आलोचना की है –

''कबीर माला काठ की कहि समझावै तोय।
मन का फिरावै आपना, कहा फिरावै मोय।''
''तंत्र-मंत्र सब झूठ है, मत भरमौ जग कोय।
सार शब्द जाने बिना, कागा हँस न होय॥''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

"पाहन पूजै हरि मिलै तो मैं पूजूँ पहार।
तातें यह चक्की भली, पीस खाय संसार॥"
"काँकर पाथर जोरि के, मसजिद लई चिनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बागि दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।"

कवि ने अनेक धर्म के ठेकेदारों को बेनकाब कर उनकी ढोंगी आचरण प्रवृत्तियों पर अनेक प्रकार से तीखे प्रहार अपनी साखियों के माध्यम से किये हैं। कहा है कि ईश्वर को ज्ञान द्वारा अपने ही मन में अनुभव किया जा सकता है और आत्मा में पाया जा सकता है।

"मन मथुरा दिल द्वारका काया काशी जानि।
दसवें द्वारे देहुरा, तामैं ज्योति पिछांणि॥"
"माला पहरें मनमुषी, ताथे कछु नहिं होय।
मन माला को फेरताँ, जग उजियारा होय॥"

10. प्रेमानुभूति – कबीर ने अपनी साखी की रचनाओं में सच्चे प्रेम की अनुभूति का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। कबीर के प्रेम में ज्ञान का ज्योतिपुंज और समर्पण की प्रधानता है। सच्चा प्रेम-पथ गुरु कृपा से ही संभव है। प्रेम का पथ एक ऐसा अग्नि-पथ है जिस पर हमेशा विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों के अंगारे दहकते रहते हैं। इस पर चलने वाला कोई विरला ही होता है।

कबीर ने प्रेम के महत्त्व को मुक्त हृदय से स्वीकार कर मुक्तकण्ठ से उसकी अभिव्यक्ति की है। उन्होंने कहा है कि प्रेम मानव की कोमलतम भावना है जो त्याग और समर्पण का प्रतिरूप है –

"प्रेम न बारी ऊपजै, प्रेम न हाट विकाय।
राजा परजा जेहिं रुचै, सीस देई ले जाय॥"

11. भक्ति भावना एवं अहंकार का त्याग – कवि ने स्पष्ट किया है कि बिना अहंकार का त्याग किये भक्तिभावना जागृत हो ही नहीं सकती है। समर्पण के मार्ग पर गमन करने के लिए अहंकार का त्याग अति-आवश्यक है –

"मैमन्ता मन मारि रे, नान्हाँ करि करि पीस।
तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म झलकै सीस॥"
"मैमन्ता मन मारि रे, घट ही माहें घेरि।
जब ही चालै पीठि दे, अंकुस दे दे फेरि॥"

कबीर ने भक्ति-भावना से परिपूर्ण साखियों में ईश्वर की सर्वव्यापकता को स्पष्ट किया है। पृथ्वी से आकाश तक, जल में, थल में, जड़ में, चेतन में सर्वत्र कण-कण में उस परम ब्रह्म की सत्ता समाहित है जिसे पहचानने के लिए अन्त:चक्षु अथवा अज्ञान व अहंकार रहित प्रयास की आवश्यकता है –

"कस्तूरी कुण्डलि बसै, मृग ढूँढै बन माहिं।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनियाँ देखे नाहिं॥"

अत: कबीर की रचनाओं में भावात्मकता अनेक प्रारूपों का प्रतिबिम्ब है। इनकी साखियों में गुरुकृपा, ईश्वर, ज्ञान, सदाचरण, मोक्ष, भक्ति, प्रेम, समर्पण आदि विषयों से सम्बंधित विचारों की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति हुई है। ज्ञान और भक्ति के साथ नैतिकता, व्यावहारिकता, दार्शनिक एवं भावुकता आदि का खूबसूरत समन्वय है। अत: भावपक्ष की दृष्टि से कबीर का काव्य-सौन्दर्य बेजोड़ है।

"काव्य का कला-पक्ष" – कला-पक्ष के अन्तर्गत काव्य में प्रयुक्त भाषा-शैली, छन्द, अलंकार, काव्य-गुण और प्रतीक-योजना का विवेचन किया जाता है। कबीर की काव्यगत विशेषताओं का हम निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते हैं –

1. भाषा-शैली – कबीर मूलत: अच्छे कवि होने के साथ-साथ एक श्रेष्ठ लोकनायक भी थे। वे अपने संदेश आम भाषा में जन-मानस तक पहुँचाने की क्षमता रखते थे। चूंकि कबीर अनपढ़ थे, उन्हें भाषा विशेष का पूर्ण अनुशासित ज्ञान नहीं था इसलिए उनके काव्य की भाषा 'जनभाषा' है, जिसे विद्वानों ने 'सधुक्कड़ी भाषा' का नाम दिया है। कबीर की अनपढ़ भाषा सीधी-सादी, अलंकार योजना विहीन है, उसका व्याकरण की दृष्टि से अनगढ़ प्रयोग हुआ है किन्तु अभिव्यक्ति की सहजता युक्त क्षमता वास्तव में आश्चर्यचकित करने वाली है। कवि की भावना में स्वाभाविक प्रवाह का गुण है। इनकी भाषाभिव्यक्ति मिश्रित शब्दों से युक्त है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हिन्दी के साथ अवधी, अरबी, मगही, उर्दू, भोजपुरी, अपभ्रंश आदि सभी का प्रयोग होने से खिचड़ी भाषा बन गई, किन्तु फिर भी उसमें स्वाभा-भिव्यक्ति की तीव्रता और सशक्तता है तथा अपने कथ्य को प्रहार के साथ व्यक्त करने की पूर्ण क्षमता है।

कबीर के काव्य में विभिन्न शैलियों से रू-ब-रू होने का अवसर मिलता है। उन्होंने लोक-जीवन की अभिव्यक्ति के लिए सरल प्रतीक शैली का प्रयोग किया है। अन्योक्ति शैली, व्यंग्यशैली, उलटवासी शैली, विरोधात्मक शैली, प्रबोधनशैली आदि का सफल प्रयोग किया है। इनकी रचनाओं में ''उलटवांसी शैली'' का प्रयोग चमत्कारपूर्ण किया गया है।

2. अलंकार योजना का प्रयोग – किसी भी काव्य की रोचकता या कर्ण-प्रियता उसमें निहित अलंकारों के प्रयोग पर निर्भर है। यद्यपि कबीर की अलंकार योजना ज्ञान रहित है किन्तु अनुप्रास, यमक, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, विरोधाभास जैसे अलंकार अनायास ही सफलता पूर्वक अपना-अपना स्थान ग्रहण कर चुके हैं और रचनाओं को चमत्कारपूर्ण व कर्णप्रियता जैसे गुणों से युक्त बनाते रहे हैं। इनकी अधिकांश रचनाओं में 'रूपक अलंकार' का सफल प्रयोग हुआ है।

''गुरु धोबी सिख कापड़ा, साबुन सिरजन हार।
सुरति सिला पर धोइये, निकसे जोति अपार।''
''चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय॥''
''माली आवत देखि कै, कलियाँ करी पुकारि।
फूले फूले चुन लिये, काल्हि हमारी बारि॥''

प्रस्तुत पंक्तियों में ''अन्योक्ति अलंकार'' जैसे मुँह से बोल रहा हो।

''लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।''

प्रस्तुत साखी ''यमक अलंकार'' का जीवन्त उदाहरण है।

3. छंद विधान – पद्य काव्य में छंदों का अधिक महत्त्व होता है। छंदोबद्ध रचना ही पद्य रचना मानी जाती है। इस विधान में काव्य की वर्ण योजना, मात्रा, गति, यति, ताल, तुक आदि सभी निर्धारित होती हैं। कबीर ने अधिकतर अपनी साखियाँ 'दोहा छन्द' में की हैं। कुछ साखियाँ चौपाई, उल्लाला, गीतिका, हरिपद, सार अथवा छप्पय छंदों में भी हैं। कबीर ने विभिन्न राग-रागनियों के आधार पर पदावलियों एवं रमैनियों की रचना भी की है और कुछ मुक्तक भी रचे हैं। कबीर के काव्य में गेयता और नाद सौन्दर्य का गुण विद्यमान है।

4. प्रतीक-विधान का सौन्दर्य – कबीर के काव्य में प्रतीकों का प्रयोग अनेक प्रकार से हुआ है। उन्होंने प्रतीकों को संख्यात्मक, पारिभाषिक, विशिष्ट, रूपात्मक दृष्टि से अपनाया है –

''सायर नाहीं सीप बिन, स्वाति बूँद भी नाहिं।
कबीर मोती नीपजै, सुन्नि शिखर गढ़ माहिं॥''

प्रस्तुत साखी में ''सुन्नि शिखरगढ़'' ब्रह्मरन्ध्र का पारिभाषिक प्रतीक है। इनकी रचनाओं में सांकेतिक और रूपात्मक प्रतीकों को अधिक अपनाया है। पारिभाषिक और संख्यामूलक प्रतीक भी इनकी रचनाओं में मिल जाते हैं, यथा – 'नौ पौरी पर दसँवा द्वारा', 'काहे री नलिनी तू कुम्हलानि', 'तेरे ही नाल सरोवर पानी।' 'आकासे मुख औंधा कुआ' आदि प्रतीक हैं।

3.3 सारांश

निष्कर्ष – भावपक्ष की सशक्तता कबीर की रचनाओं में विद्यमान है जिसका कारण 'विषय-वैविध्य' है। इनमें मानवतावादी विचारधाराओं को लेकर क्रांतिकारी भावों की अभिव्यक्ति की है। कबीर का काव्य कलापक्ष भी प्रशस्य और शक्तिशाली है। सहज सम्प्रेषणीयता एवं उक्ति चमत्कार के साथ साधारण जन-भाषा का प्रयोग स्वाभाविक रूप से रू-ब-रू हो जाता है। अत: हम कह सकते हैं कि कबीर के काव्य में भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों ही अपने आप में प्रशंसनीय स्थान रखते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-4 : मलिक मुहम्मद जायसी

संरचना

4.0 कवि परिचय

4.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

4.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

4.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

4.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

4.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

4.3 सारांश

4.0 कवि परिचय

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में ''प्रेमाख्यानक'' अथवा 'प्रेम के पीर' कवि जायसी का जन्म कब और कहाँ हुआ, इस पर विद्वान एकमत नहीं हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्मकाल सन् 1492 और जन्मस्थान जायसनगर स्वीकार किया है। किन्तु यह मत अब अमान्य है। डॉ. वासुदेव शरण ने अपनी शोध रिपोर्ट्स के आधार पर इनका जन्म सन् 1475 और जन्मस्थल गाजीपुर स्वीकार किया है। कुछ विद्वान् इनका जन्म 1500ई. के आस-पास मानते हैं। जायसी ने पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम नाम से तीन काव्य लिखे हैं। पद्मावत का रचनाकाल 'आखिरी कलाम' में दिया गया है। इसी के आधार पर विद्वानों ने निष्कर्ष निकाले हैं। ऐसी जनश्रुति है कि वे अत्यधिक कुरुप थे। काने, बहरे और काले थे। इनके चेहरे पर चेचक के बड़े-बड़े निशान भी थे और भूरे बाल थे। एक बार जायसी शेरशाह के दरबार में पहुंचे, शेरशाह इनके कुरूप चेहरे को देखकर हँस पड़ा। इस पर जायसी ने बड़े ही शान्त भाव से राजा से पूछा, ''मोहिका हँससि, कि कोहरहिं'' अर्थात् ''मुझ पर हँस रहे हो या मेरे निर्माता पर?'' इस बात पर राजा ने **लज्जित होकर जायसी से क्षमा माँगी थी।**

मलिक मुहम्मद जायसी के माता-पिता की मृत्यु हो जाने के कारण इनका लालन-पालन इनके ननिहाल में हुआ था। बड़े होने पर ये पुन: अपने जन्म स्थान पर लौट आए। वहीं पर सन् 1558 में इनका निधन हो गया था। कुछ विद्वान् इनकी मृत्यु 1542 में अमेठी के निकट समीपवर्ती जंगल में बताते हैं।

जायसी निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा में थे। आचार्य शुक्ल ने माना है कि इनके दो गुरु थे – 1. गुरु मुहिउद्दीन और 2. सैयद अशरफ। किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि ये चिश्ती परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। उन्होंने ''चित्ररेखा'' में शेख मोहदी को ही अपना गुरु माना है। जायसी ने अपने पदमावत वर्णन में चार मित्रों का भी वर्णन किया है। जायसी प्रेमाख्यान परम्परा के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। इनके द्वारा रचित पद्मावत एक विशिष्ट, प्रभावी प्रेम काव्य है। इसे हम आध्यात्मिक प्रेम काव्य भी कह सकते हैं, यह फारसी की मसनवी शैली में लिखा गया है, इसमें इतिहास और कल्पना का समावेश है। इसमें रतनसेन और पद्मावती की लौकिक प्रणय गाथा का प्रभावी चित्रण किया गया है। इस लौकिक प्रेम कहानी के द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना कराई गई है। लोक प्रचलित हीरामन 'तोता' और रानी पद्मिनी की कथा को काल्पनिकता और ऐतिहासिकता के ताने-बाने में आबद्ध कर कवि ने असाधारण सफलता के साथ इस ग्रंथ की रचना की है। प्रेम की साधना और सिद्धि का चित्रण इस कृति में प्रमुख विशेषता है। हिन्दू और मुस्लिम के आपसी तनाव को मिटाकर सांस्कृतिक समन्वय की स्थिति का महत्त्व साहित्यिक दृष्टिसे तो है ही, सांस्कृतिक दृष्टि से भी कम नहीं है।

''पद्मावत'' जायसी-कृत सर्वश्रेष्ठ सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्य है। इसकी रचनावधि 947 हिज़री स्वीकार की गई है। इसका पूर्वार्द्ध पूर्णत: कल्पना पर आधारित है और उत्तरार्द्ध का आधार राजस्थान के इतिहास का अध्याय प्रतीत होता है। ऐतिहासिक और लौकिक तत्त्वों का समावेश इस रूप में नियोजित किया है कि कथा का तारतम्य और सम्बन्ध निर्वाह बिखरने नहीं पाता है। पूर्वार्द्ध कल्पना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हीरामन तोता के रूप में लोक जीवन से ग्रहण की और उत्तरार्द्ध के लिए रतनसेन की गौरवगाथा, पद्मिनी का आदर्श और गोरा, बादल से आदर्श बलिदान की घटनाओं को ऐतिहासिक सत्य के रूप में ग्रहण किया है।

हिन्दी प्रेमाख्यानकारों में जायसी का स्थान निःसंदेह सर्वोच्च है। प्रबन्ध पटुता की अद्‌भुद क्षमता से युक्त पद्मावत काव्य हिन्दी जगत् में अद्वितीय है। उनका संयोग और वियोग शृंगार फारसी की मसनवी शैली पर आधारित होते हुए भी हिन्दू संस्कृति को समेटे हुए हैं। हिन्दु पात्रों की योजना में हिन्दुत्व की रक्षा की गई है। हिन्दू संस्कृति के अन्तर्गत अनेक दार्शनिक और धार्मिक तथ्यों की चर्चा करना कवि भूला नहीं है। भारतीय ज्योतिष, हठयोग, कामशास्त्र और रसायन-शास्त्र का ज्ञान भी कवि को था। जायसी ने अवधी भाषा का प्रयोग किया है। छन्दों में दोहा, चौपाई का प्रयोग कर रचना-तंत्र का सुन्दर निर्माण किया है। अलंकारों के प्रयोग में भी कवि जायसी हिन्दी साहित्य की परिपाटी से मुक्त नहीं रह सके। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकार कवि के काव्य में यत्र-तत्र तैरते से दिखाई देते हैं। बाबू गुलाब राय ने जायसी की प्रशस्ति में लिखा है कि ''जायसी महान् कवि हैं, उनमें कवि के समस्त सहज गुण विद्यमान हैं और उन्होंने सामयिक समस्या के लिए हमें प्रेम के पीर की देन ही है। उस पीर को अपने शक्तिशाली महाकाव्य के द्वारा उपस्थित किया, वे अमर कवि हैं।''

''अखरावट'' का मूलभूत विषय सृष्टि की उत्पत्ति है। यह मूलतः इस्लामी धर्म-ग्रंथों पर आधारित है। इस ग्रंथ में कवि ने जीव, ब्रह्म और प्रकृति की सैद्धान्तिक विवेचना की है। इस रचना के द्वारा कवि की आध्यात्मिक विचारधारा को समझा जा सकता है। ''आखिरी कलाम'' कवि का प्रलय सेसम्बंधित कलाम है, इसमें इस्लामी मज़हब के 'हश्र' (प्रलय) की कथा का नियोजन है, जो कुरान पर आधारित है। इस ग्रंथ में सृष्टि के अंत में मौहम्मद साहब के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। ''चित्ररेखा'' में एक लघु प्रेम-कथा वर्णित है। इसमें गोमती तट पर स्थित चन्द्रपुर के राजा भानुचन्द्र की पुत्री चित्ररेखा और कन्नौज के राजा कल्याणसिंह के पुत्र प्रीतम कुंवर की प्रणयगाथा का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। ''कहरनामा'' में कवि ने आध्यात्मिक विवाह की प्रस्तावना के साथ कहार जाति में प्रचलित विवाहप्रथा द्वारा आत्मा और परमात्मा के परिणय और मिलन की कथायोजना प्रस्तुत की है। ''कहारनामा'' कहारों के लोकगीत 'कहरवा' की 'लोकधुन' पर आधारित है। ''मासलानामा'' में कवि की ईश्वर भक्ति और प्रेम निवेदन का चित्रण है।

4.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड

(1)

सिंहलद्वीप कथा अब गावौ। औ सो पद्‌मिनी बरनि सुनावौ॥
निरमल दर्पन भाँति बिसेखा। जो जेहि रूप तो तैसे ही देखा॥
धनि सो दीप जहँ दीपक-बारी। औ पद्‌मिनी जो दई सँवारी॥
सात दीप बरनै सब लोगू। एको दीप न ओहि सरि जोगू॥
दिया दीप नहीं तस उजियारा। सरन दीप सरि होइ न पारा॥
जंबू दीप कहौ तस नाहीं। लंकदीप सरि पूज न छाहीं॥
दीप गंभस्थल आरन परा। दीप महुस्थल मानुस हरा॥

सब संसार परथमै, आये सातों दीप।
एक दीप नहीं उत्तिम, सिंहलदीप समीप॥

शब्दार्थ – गावौ=गाता हूँ। औ=और। सो=साथ ही। निरमल=स्वच्छ। विसेखा=विशेषता। बारी=उज्वल। सँवारी=सजाया। ओहि=उसके। सरि=समान। तस=वैसा। पूजन छाही=परछाई भी नहीं। आरन=जंगल। हरा=हरने वाला। दीप=द्वीप।

हिन्दी साहित्य में प्रेमाख्यान परम्परा को समृद्ध करने वाले कवियों में सूफ़ी कवि जायसी का मूर्धन्य स्थान है। जायसी कृत पद्मावत समस्त सूफ़ी कवियों में देदीप्यमान रत्न हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के जायसी नामक पाठ से अवतरित है जो जायसी द्वारा विरचित ''पद्मावत'' के 'सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड' से लिया गया है। इसमें कवि ने सर्वप्रथम सिंहल द्वीप का वर्णन करते हुए पद्मावती का भी वर्णन किया है।

व्याख्या – कवि जायसी कहते हैं कि अब मेरे द्वारा सिंहलद्वीप का वर्णन किया जा रहा है और साथ ही पद्मिनी नायिका के लक्षणों से युक्त पद्मावती की कथा का भी। जिस प्रकार निर्मल दर्पण में प्रत्येक वस्तु का प्रतिबिम्ब (अक्स या परछाई) स्वच्छ दिखाई पड़ता है उसी प्रकार कवि के वर्णन की यह विशेषता है कि जिसका जैसा रूप है उसका बिल्कुल वैसा ही चित्रण प्रस्तुत किया है। वह द्वीप धन्य है, जहाँ की बालाएँ दीपक के समान दैदीप्यमान और कान्तियुक्त हैं तथा जहाँ पर पद्मावती जैसी महान् नायिका ने जन्म लिया है। सब लोग सात द्वीपों का वर्णन करते हैं किन्तु उस सिंहल द्वीप के समान एक भी द्वीप नहीं है। जितना प्रकाश या तेज दिया द्वीप में भी नहीं है उतना सिंहल द्वीप में है। सरनद्वीप में भी उसके साथ समानता रखने की क्षमता नहीं है। जम्बूद्वीप को भी हम सिंहलद्वीप जैसानहीं कह सकते हैं। लंकाद्वीप तो सिंहलद्वीप की परछाई के समान भी नहीं है। गर्भस्थलद्वीप तो जंगलों से भरा हुआ है और मरुस्थलद्वीप मनुष्यों को हरने वाला है।

सम्पूर्ण संसार में सर्वप्रथम सात द्वीप ही गिने गये हैं किन्तु एक भी द्वीप ऐसा नहीं है जो सिंहलद्वीप के समान है।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद्यांश में जायसी ने जिस सिंहलद्वीप का वर्णन किया है वह केवल लोक कथाओं में ही चर्चित है। पुराणों में इस प्रकार का लेख नहीं है।

2. कवि जायसी ने सात द्वीपों के माध्यम से पद्मावती के सात अंगों की विशेषताएँ सांकेतिक की हैं। कवि की यह व्यंजना है सिंहलद्वीप अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र के महत्त्व की क्षमता पद्मावती के सात द्वीप रूपी सात अंग नहीं कर सकते हैं।

3. प्रस्तुत अंश में चौपाई छन्द की गति और यति है, अवधी भाषा का लालित्य है तथा रूपक, अतिशयोक्ति और प्रतीप अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(2)

गंधवसेन सुगन्ध नरेसू। सो राजा वह ताकर देसू॥
लंका सुना जो रावन राजू। तेहु चाहि बड़ ताकर साजू॥
छप्पन कोटि कटक दल साजा। सबै छत्रपति औ गढ-राजा॥
सोरह सहस घोड़ घोड़सारा। स्यामकरन अरु बाँक तुखारा॥
सात सहस हस्ती सिंघली। जनु कविलास एरावत बली॥
अस्वपतिक सिरमौर कहावै। गजपतीक आंकुस-गज नावै॥
नरपतीक कहँ और नरिंदू। भूपतीक जग दूसर इन्दू॥
ऐस चक्कवे राजा, चहूँ खण्ड भय होय।
सबै आई सिर नावहिं, सरबरि करै न कोय॥

शब्दार्थ – सुगन्ध=यशस्वी। कटक=सैना। घोड़सारा=घुड़सवार। तुखारा=तुषार देश। नरिन्दु=राजा, नरश्रेष्ठ। इन्दू=इन्द्र। सरबरि=समानता, बराबरी।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत' के 'सिंहलद्वीप' वर्णन-खण्ड से अवतरित है, जो हमारी पाठ्य-पुस्तक 'प्राचीन काव्य माधुरी' वे लिया गया है। प्रस्तुत अवतरण में कवि ने राजा गन्धर्वसेन के प्रताप और ऐश्वर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या – सिंहल द्वीप के राजा गन्धर्वसेन अत्यधिक प्रतापी और यशस्वी राजा थे। सिंहलगढ़ उनका राज्य था। लंका के रावण की अच्छी राज्य ख्याति रही है, किंतु गन्धर्वसेन का राज्य उससे भी बड़ा था। गन्धर्वसेन की सेना छप्पन करोड़ थी। उस सेना के सभी सरदार क्षत्रपति और गढ़पति थे। सौलह हजार घोड़े और घुड़सवार थे। वे सभी घोड़े या तो श्याम वर्ण थे या तुषार देश के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

थे। उसके यहाँ पर सात हजार सिंहली हाथी थे। वे हाथी इन्द्र के ऐरावत के समान बलशाली थे। वह राजा अश्वपतियों में सिरमौर माना जाता था। उसका अंकुश बडे-बडे गजपतियों को इस प्रकार झुका देता था, जैसे महावत अंकुश से बडे-बडे हाथियों को झुका देता है। नरपतियों में वह नरेन्द्र माना जाता था। भू-पतियों में वह दूसरा इन्द्र था।

जब गंधर्वसेन राजा किसी पर क्रोध भरी दृष्टि डालता था तो सभी भयभीत हो जाते थे। अन्य देश के राजा भी उसके सामने नतमस्तक होकर प्रणाम करते थे। कोई भी उसकी बराबरी नहीं कर सकता था अर्थात् सिंहलगढ़ का राजा गंधर्वसेन अत्यधिक प्रतापी और वैभवशाली था।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कवि ने योग-साधना की दृष्टि से ब्रह्मरन्ध्र के अधिष्ठाता का वर्णन गंधर्वसेन के रूपक से किया है और उनका सांकेतिक दृष्टिकोण है।

2. अवधी भाषा की पदयोजना और चौपाई, दोहा छन्द का व्यवस्थित प्रयोग किया गया है।

3. प्रस्तुत पद में तथ्य को अत्युक्ति अलंकार के द्वारा व्यक्त करने का सफल प्रयास किया गया है।

(3)

बसहिं पंखि बोलहिं बहु भाखा। करहि हुलास देखि कै साखा॥
भोर होत बोलहिं चुह-चुही। बोलहिं पांडुक एकै तूही॥
सारो सुआ जो रहचह करही। कुरहि परेवा औ कर बरही॥
'पीप-पीव' कर लाग पपीहा। 'तुही-तुही' कर गडुरी जीहा॥
'कुहू-कुहू' करि कोइल राखा। औं भिंगराज बोलहुँ बहुभाखा॥
'दही-दही' करि महरि पुकारा। हरिल बिनवै आपन हारा॥
कुहुकहि मोर सोहावन लागा। होई कुराहर बोलहिं कागा॥
जावत पंखी जगत के, भरि बैठे अमराउँ।
आपनि आपनि भाषा, लेहिं दई कर नाउँ॥

शब्दार्थ – पंखि=पक्षी। भाखा=भाषा। हुलास=प्रसन्नता। साखा=शाखा। चुहचुही=एक विशेष प्रकार की चिड़िया जो पुष्पों की महक सूंघती है। पाण्डुक=पाण्डुकी। सौरों=सारिका। कुरहि परेवा=कुररि नामक पक्षी। भिंगराज=एक विशेष प्रकार का पक्षी जो दूसरे पक्षियों की नकल करके उनके समान बोलता है। महरि=ग्वालिन चिड़िया। दई=परमात्मा। अमराउँ=अमराई। नाउँ=नाम।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'जायसी' नामक पाठ से अवतरित है, जिसे 'पद्मावत' के सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड से लिया गया है। प्रस्तुत पद में कवि जायसी ने सिंहलद्वीप के बगीचों में रहने वाले विभिन्न पक्षियों का सजीव और मनमोहक वर्णन किया है।

व्याख्या – जायसी सिंहलद्वीप के बाग-बगीचों में विहार करने वाले विभिन्न प्रकार के पक्षियों का मनोहारी वर्णन करते हुए कहते हैं कि वहाँ के बाग-बगीचों में अनेक प्रकार के सुन्दर पक्षी रहते हैं और वे विभिन्न प्रकार के भाषाएँ मुक्त रूप से बोलते हैं। वे सभी पक्षी वृक्षों की सघन शाखाओं को देखकर प्रसन्न होते हैं। भोर होते ही प्रतिदिन चुहचुही चिड़िया मधुर आवाज में बोलने लगती है और पाण्डुकी ''एकै तूही'' बोलने लगती है।

तोते और सारिका प्रसन्न होकर चहकने लगते हैं। कबूतर और कुररि पक्षी ऊपर से नीचे की ओर गिरते हैं। पपीहा पक्षी अपनी मधुर वाणी में 'पिउ-पिउ' की रट लगाते रहते हैं। गडुरी पक्षी 'तुहि-तुहि' बोलती है। कोयल कुहू-कुहू की रट लगाती है। भिंग राज दूसरे पक्षियों की नकल कर अनेक प्रकार की भाषाएँ बोलता है। ग्वालिन चिड़िया 'दहि-दहि' पुकारती रहती है। हारिल, मोर अपनी धुन में बोलते हुए बहुत ही सुन्दर लगते हैं किन्तु जब कौवे बोलते हैं तो समूचे बगीचे में एक अजीब-सा कोलाहल होने लगता है।

जायसी के अनुसार संसार के सभी प्रकार के पक्षी उस सिंहलद्वीप के बागों में विहार कर रहे हैं और वे सभी अपनी-अपनी बोलियों में प्रसन्नता पूर्वक मानो प्रभु का गुण-गान करते रहते हों।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में सिंहलद्वीप के घने और हरे-भरे बगीचों में विहार करने वाले विभिन्न जाति-प्रजाति के पक्षियों और उनकी बोलियों का मनोहर वर्णन किया है।

2. प्रात:कालीन पावन बेला का मनोहारी चित्रण कल्पनाओं को जीवन्त करने वाला है।

3. अनुप्रास, यमक और स्वाभावोक्ति अलंकार से अवतरण में रोचकता और चमत्कार का गुण प्रस्फुटित होने लगा है।

(4)

मानसरोदक बरनौ काहा। भरा समुद अस अति अवगाहा॥
पानि मोति अस निरमल तासू। अमृत आनि कपूर सुबासू॥
लंक द्वीप के सिला अनाई। बाँधा सरवर घाट बनाई॥
खँड-खँड सीढ़ी भई गरेरी। उतरहिं चढहिं लो चहु फेरी॥
फूला कँवल रहा होइ राता। सहस-सहस पखुरिन कर छाता॥
उलथहिं सीप मोती उतराहीं। चुगहिं हंस औ केलि कराहीं॥
खनि पतार पानी तँह काढा। छीर-समुद निकसा हुत बाढ़ा॥
ऊपर पाल चहुँ दिसि, अमृतफल सब रूख।
देखि रूप सरवर के, गै पियास औ भूख॥

शब्दार्थ – मान सरोदक=मानसरोवर। अस=ऐसा। अवगाहा=अगाध। निरमल=पवित्र। सिला=शिलाएं। अनाई=लाकर। गरेरी=घुमावदार। उलथहिं=उलट जाना। केलि=क्रीड़ा। छीर समुद्र=क्षीर सागर (श्री हरि विष्णु का आवास स्थल)। रूख=वृक्ष।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'प्राचीन काव्य माधुरी' के 'जायसी' नामक पाठ से अवतरित है जिसे जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत' के 'सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड' से लिया गया है। प्रस्तुत पद्यावतरण में कवि ने सिंहल द्वीप के मानसरोवर की शोभा का जीवन्त चित्रण किया है।

व्याख्या – कवि जायसी कहते हैं कि सिंहलद्वीप में स्थित ज्ञान-सरोवर के वैभव का क्या वर्णन करूँ ? वह तो अवर्णनीय है। वह तो अगाध समुद्र की भाँति जल से भरा हुआ है। उसका जल मोती जैसा स्वच्छ और अमृत जैसा निर्मल है। ऐसा लगता है, जैसे उस जल में कपूर की महक व्याप्त हो। लंकाद्वीप से शिलाखण्ड मँगाई गई और उनसे उस मानसरोवर का घाट बनाया गया है। सरोवर के प्रत्येक खण्ड में घुमावदार सीढियाँ बनी हुई हैं। लोग उसके चारों ओर से उतरते-चढ़ते हैं। उस मानसरोवर में बीचों-बीच एक सहस्त्रदल कमल खिला है। जब उसके निर्मल जल में सीपी उलट जाती है तो उनमें भरे हुए सभी मोती पानी में गिर जाते हैं और हंस उन मोतियों को चुगते हुए अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करने लगते हैं। उस सरोवर में सुनहरे पंखों वाले पक्षी तैरते हुए बहुत ही मन-मोहक लगते हैं। ऐसा लगता है मानो क्षीर सागर का अलौकिक दृश्य उभर कर सामने आ गया हो।

कवि जायसी कहते हैं कि मानसरोवर के चारों ओर ऊँचे पाल हैं और इन पर उगे हुए सभी वृक्षों पर अमृत जैसे मधुर फल लगे हुए हैं। सरोवर की शोभा को देखने मात्र से भूख व प्यास मिट जाती है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में कवि जायसी ने हठयोग की रहस्यात्मकता को अभिव्यंजित किया है।

2. कवि ने सहस्त्रार कमल का वर्णन किया है जो कि ''फूला कँवल रहा होई राता'' से स्पष्ट होता है।

3. हंस से कवि ने सिद्ध-साधकों की ओर संकेत दिया है और स्पष्ट किया है कि जीवनमुक्त साधक सहस्त्रार में स्थित ब्रह्मरन्ध्र में रहकर आनन्दमग्न हो जाता है।

(5)

पानि भरै आवहिं पनिहारी। रूप सरूप पद्मिनी नारी॥
पदुमगन्ध तिन्ह अंग बसाही। भँवर लागि तिन्ह संग फिराही॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

लंफ-सिंघिनी सारंग नैनी। हंस गामिनी कोकिल बैनी॥
आवहिं झुण्ड सो पाँतहि पाँती। गवन सोहाइ सु भातिहि भाँति॥
कनक कलस मुख चन्द दिपाहीं। रहस केलि सन आवहिं जाही॥
जा सहुँ वै हेरे चख नारी। बाँक नैन जनु हनहिं कटारी॥
केस मेघावर सिर ता पाई। चमकहिं दसन बीजु के नाईं॥
माथे कनक गागरी, आवहिं रूप अनूप।
जेहि के अस पनिहारी, सो रानी केहि रूप॥

शब्दार्थ – पदुमगंध=कमल की महक। भंवर=भँवर। लंफ=कमर। सारंग नयनी=मृग नयनी। कोकिल=कोयल। गवन=गति। दिपाहीं=चमकते हैं। मेघावर=बादलों के समान। बीजु=बिजली। कनक=सोना। अनूप=अनुपम।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक 'प्राचीन काव्य माधुरी' के 'जायसी' नामक पाठ से अवतरित है जिसे जायसी द्वारा विरचित ''पद्मावत'' के ''सिंहल द्वीप वर्णन खण्ड'' से लिया गया है। प्रस्तुत अवतरण में कवि जायसी ने सिंहलद्वीप की नारियों की सुन्दरता को रोचक ढंग से वर्णित किया है।

व्याख्या – कवि जायसी सिंहल द्वीप की स्त्रियों के स्वाभाविक और शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वहाँ मानसरोवर में जो भी स्त्रियाँ जल भरने आती हैं वे अपने रूप सौन्दर्य के कारण पद्मिनी ही प्रतीत होती हैं। उनके अंगों से कमल की महक निकलती है, जिसके कारण उनके चारों और भौंरे मँडराते रहते हैं। उनकी कमर सिंहनी के समान दुबली-पतली है। उनके नेत्र हिरणी जैसे और चाल हंस के समान है। वे कोयल जैसी मधुर वाणी बोलती हैं। वे पंक्तियों के समूह में चलती हैं। उनकी चाल बहुत ही रमणीय लगती है। उनके चन्द्रमुखों की कान्ति के कारण उनके हाथों में स्वर्ण-कलश और भी अधिक देदीप्यमान लगते हैं। वे केलिक्रीड़ा करती हुई गमन करती हैं। उनके बाल काली घटाओं जैसे हैं और दाँतों की पंक्ति बिजली की तरह चमकती हैं।

जायसी कहते हैं कि उनके मस्तक पर सोने की गगरी बहुत ही शोभायमान लगती है। इस प्रकार की अनुपम रूप सौन्दर्य वाली नारियाँ मन मोहित करती हैं।

जिस देश की नारियाँ इतनी रूपवती हैं, उस देश की रानी कितनी रूपवती हो सकती है इसका अनुमान लगाना मुश्किल है।

विशेष – 1. नारी सौन्दर्य विशेषज्ञों ने नारियों को सौन्दर्य की दृष्टि से चार भागों में विभाजित किया है – पद्मिनी, चित्रणी, शंखनी और हस्तिनी। इनमें से पद्मिनी नारी सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। कवि ने उस द्वीप की नारी को 'पद्मिनी' कहा है।

2. प्रस्तुत अवतरण में गुणीभूत व्यंग्य और उत्प्रेक्षा का रूपक अलंकार है।

3. भाषा - अवधी, 4. छंद - कड़वक, 5. रस - संयोग-शृंगार

(6)

सिंघल नगर देखि पुनि बसा। धनी राजा अस जे कै दसा॥
ऊँची पौरी ऊँच अबासा। जनु कैलास इन्द्र कर बासा॥
राव रंक सब घर-घर सुखी। जो दीखै सौ हँसता-मुखी॥
रचि-रचि साजे चन्दन चौरा। पोतें अगर मेद औ गौरा॥
सब चौपारहिं चन्दन खम्भा। ओठधि सभासद बैठे सभा।।
मनहुँ सभा देवतन कर जुरी। परी दीठि इन्द्रासन पुरी॥
सवै गुनी औ पण्डित ज्ञाता। संसकिरति सबके मुख बाता॥
अस कै मन्दिर-सँवारे, जनु सिवालोक अनूप।
घर-घर नारी पद्मिनी, मोहहि दरसन रूप॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शब्दार्थ – चौरा=चबूतरा। मेद=कस्तूरी। गोरा=केवड़ा। औठंधी=सहारा लेकर। संसकिरति=संस्कृत। दीठि=दृष्टि, अनूप=अनुपम।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'जायसी' नामक पाठ से अवतरित है जिसे जायसी द्वारा विरचित 'पद्मावत' के 'सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड' से लिया गया है। प्रस्तुत अवतरण में कवि जायसी ने मनोहारी सिंहल नगर का सुन्दर चित्रण किया है।

व्याख्या – कवि जायसी सिंहलद्वीप में स्थित 'सिंहल' नगर का वर्णन करते हुए कहते हैं वह राजा धन्य है, जिसकी इतनी सुन्दर नगरी है। उस नगर में ऊँचे-ऊँचे द्वार और विशाल आवासीय भवन हैं। वे आवास ऐसे सुन्दर हैं मानो इन्द्रलोक में स्वयं इन्द्र के ही भवन हों। उस नगर के सभी निवासी (राजा और रंक) अपने-अपने घरों में पूर्णतः सुखी हैं और जिसे भी देखें वह प्रसन्न चित्त ही दिखाई देता है। वहाँ पर बैठने के चबूतरे चन्दन से रच-रच कर बनाए हुए हैं एवं उन्हें अगर, कस्तूरी और केवड़े से पोता गया है। उस नगर के सभी चौपालों में चन्दन के खम्भे हैं। उन चौपालों में सभा के सदस्य उन खम्भों का सहारा लेकर बैठते हैं। उन्हें देखकर ऐसा लगता है मानो स्वयं देवताओं की सभा जुड़ी हुई है। वह नगर इन्द्रलोक जैसा दिखाई देता है। वहाँ के सभाजन पूर्ण विद्वान, ज्ञानवान और कलावंत हैं। सभी की भाषा संस्कृत है।

सिंहल नगर के मार्ग और घर इतने सुन्दर और सुव्यवस्थित हैं कि जैसे शिवलोक का सौन्दर्यीकरण हो। वहाँ की पद्मिनी स्त्रियाँ सभी को सम्मोहित किये हुए रहती हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद्यावतरण में सिंहलद्वीप में स्थित सिंहलनगर के सौन्दर्य को शिवलोक और इन्द्रलोक से उपमित किया है।

2. सिंहल नगर को श्रृंगार विलास से युक्त बताया है।

3. पद्यांश में अनुप्रास, उत्प्रेक्षा और उदात्त अलंकार का प्रयोग कर चमत्कार उत्पन्न किया है।

(7)

पुनि सिंगारहाट भल देसा। किये सिंगार बैठी तहँ बेसा॥
मुख तमोल, तन चीर कुसुम्भी। कानन कनक जड़ाऊ खुम्भी॥
हाथ बीन सुनि मिरिग भुलाही। नर मोहहि सुनि, पैग न जाही॥
भौंह धनुष, तिन्ह नैन अहेरी। मारहि बान सान सौ फेरी॥
अलक कपोल डोल हँसि देहीं। लाइ कटाक्ष मारि जिउ लेही॥
कुच कंचुक जानौ जुग सारी। अंचल देहि सुभावहिं ढारी॥
केत खिलार हारि तेहि पासा। हाथ झारि उठि चलहिं निरासा॥
चेटक लाइ हरहिंमन, जब लहि होय गथ फेंट।
सांठ नाहि उठि भए बटाऊ ना पहचान न भेंट॥

शब्दार्थ – तहँ=वहाँ। बेसा=वैश्या। तमोल=पान। चीर=वस्त्र। कनक=सोना। कुम्भी=एक आभूषण कुण्डलाकृति का। मिरिग=ग्राहक रूपी हिरण। पैग=कदम। अहेरी=शिकारी। कपोल=गाल। अलक=बाल। कटाक्ष=प्यार भरी तीखी नजरें। जिउ=प्राण। कंचुक =चोली। कुच=स्तन। केत=कितने ही। खिलार=खिलाड़ी। चेटक=सजावट।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'जायसी' नामक पाठ से अवतरित है जो 'पद्मावत' के 'सिंहल द्वीप वर्णन खण्ड' का अंश है। प्रस्तुत पद्यांश में कवि जायसी ने सिंहल नगर में स्थित सिंगार हाट का वर्णन किया है।

व्याख्या – श्रृंगार रस के कवि शिरोमणी 'जायसी' सिंहल नगर में स्थित 'सिंगार हाट' का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह अत्यंत सुन्दर और मनमोहक ढंग से सजा हुआ है। वहाँ पर श्रृंगार करके अनेक वेश्याएँ बैठी हैं। वे अपने मुँह में पान रखकर और तन पर कुसुंभी रंग की साड़ी पहने हुए हैं। उनके कानों में कुम्भी नामक आभूषण जड़ा हुआ है और वे अपने हाथों में वाद्य-यंत्र (बीन की आवाज निकालने वाला) लेकर बैठी रहती हैं, जिसे सुनकर राहगीर (जन-साधारण) भी मोहित हो जाते हैं और वे एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उस संगीत को सुनकर सभी प्रभावित हो जाते हैं। वे अपनी भौंह रूपी धनुष को ताने रहती हैं और शिकारी नेत्रों से देखने लगती हैं। वे कटाक्ष रूपी बाण को काम रूपी शान पर पैना करके प्रहार करती हैं और अपने कपोलों पर जुल्फें गिराकर मुस्कुराने लगती हैं जिससे देखने वालों की जान ही निकल जाती है। उनकी चोली में बंद स्तन किसी पाँसे से कम नहीं हैं। जिन पर स्वाभाविक रूप से अपना आँचल डाले रहती हैं, उन पाँसों से खेलने वाले न जाने कितने ही खिलाड़ी हाथ झाड़-झाड़ कर निराश होते हुए चले गये।

जायसी कहते हैं कि जब तक व्यक्ति के पास धन रहता है तब तक उस सौन्दर्य से आसक्त रहता है और धन समाप्त होने पर अपरिचित की भाँति अपना रास्ता पकड़ लेता है अर्थात् धन रहने तक ही वह वेश्या उस व्यक्ति को पहचानती है, उसके बाद नहीं।

विशेष – रूपक, अतिशयोक्ति और अनुपास अलंकार का प्रयोग कर कवि ने शृंगार बाजार का वर्णन किया है।

(४)

निति गढ बांचि चले ससि सुरु। नाहिं त होई बाजि रथ चूरु॥
पौरी नवौ बज्र कै साजी। सहस सहस तह बैठे पाजी॥
फिरहिं पाँच कोतवाल सुभौरी। काँपि पाँव चपत वह पौरी॥
पौरिहिं पौरि सिंह गढि काढ़े। डरपहिं लोग देख तहै ठाढे॥
बहु विधान वै नाहर गढे। जनु गाजहिं, चाहहिं सिर चढे॥
टारहिं, पूंछ, पसारहिं जीहा। कुंजर डरहिं कि गुंजरि लीहा॥
कनक सिला गढि सीढी लाई। जगमगाहि गढ ऊपर ताई॥
नवों खण्ड नव पौरी, औ तहं बज्र केवार।
चारि बसेरे सौ चढै, सत सौं उतरै पार॥

शब्दार्थ – निति=प्रतिदिन। ससि=चन्द्रमा। सुरु=सूर्य। बांच=बचकर। नाहित=नहीं तो। बाजि=घोड़े। चुरु=चकनाचूर। बज्र=कठोर। सहस=हजारों। पाजी=सिपाही। चपत=चलते हुए। बहु विधान=अनेक कलाओं से। टारहिं=लटकाये हुए। कुंजर=हाथी। ऊपरी नाईं=ऊपर तक। केवार=किवाड़।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'जायसी' नामक पाठ से अवतरित है। इसे जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत' के सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड से लिया गया है। प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने सिंहलगढ़ का रहस्यपूर्ण वर्णन किया है। इस अवतरण के दो प्रकार से अर्थ स्पष्ट होते हैं – गढ़परक और योगपरक। इसमें कवि का सूफ़ीपरक रूप भी स्पष्ट झलकता है।

व्याख्या – जायसी सिंहलगढ़ का वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह इतना ऊँचा है कि सूर्य और चन्द्रमा भी उसकी ऊँचाई से बचकर विचरण करते हैं, उन्हें भय रहता है कि उनके घोड़े और रथ उससे टकराकर कहीं चकनाचूर न हो जाएँ। उस गढ़की नवों पौरियाँ बज्र से बनी हुई हैं। अर्थात् अत्यधिक कठोर है। उन पौरियों पर हजारों पैदल सिपाही बैठे हुए हैं। पांच कोतवाल उन पौरियों के चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं वे किसी को वहाँ तक पहुँचने नहीं देते हैं। वहाँ जाते समय पैर काँपते हैं। उन पौरियों के द्वार पर सिंह गढे हुए हैं। लोग उन चित्रित सिंहों को देखने मात्र से भयभीत हो जाते हैं। वे सिंह इतने कलात्मक ढंग से बना रखे हैं कि सजीव ही हों। ऐसा लगता है मानों वे अभी गर्जना के साथ सिर पर चढ़ बैठेंगे। वे जीवित सिंहों की भाँति पूँछ लटकाये और जीभ फैलाए बैठे प्रतीत होते हैं। उन्हें देखकर हाथी भी भयभीत हो जाते हैं। सिंहलगढ़ की सीढ़ियाँ स्वर्ण-निर्मित हैं जो गढ़ के ऊपर तक जगमगाहट किये हुए हैं।

जायसी कहते हैं कि सिंहलगढ़ के नौ खण्डों पर नौद्वार बने हुए हैं जिन पर बज्र के समान कठोर किवाड़ लगे हुए हैं। उन पर चार पड़ाव हैं, जो सच्चे मन से वहाँ जायेगा, वही वहाँ पहुँच पायेगा।

हठयोग पक्ष में पद की व्याख्या

जायसी के हठयोगानुसार मानव शरीर में सूर्य और चन्द्रमा पृथक्-पृथक् रहते हैं। उनका मिलन नहीं होता है। नव चक्र अत्यधिक कठोर और दुर्भेद्य हैं। उनके द्वार पर हजारों दुर्विकार बाधक रूप में रहते हैं, वे साधक को चक्र तोड़ने नहीं देते हैं। पाँच कोतवाल सदैव चक्कर लगाते हैं। ये पाँच कोतवाल हैं – काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार। साधना मार्ग पर चलते हुए मानव भयभीत रहता है। हर चक्र की अधिष्ठात्री देवी है जिसके वाहन सिंह उन चक्रों का भेदन नहीं करने देते हैं अर्थात् साधक को डरातेरहते हैं। अज्ञान रूपी हाथी उन सिंहों को देख कर ही भयभीत हो जाता है। उस गढ़ की सुषुम्ना रूपी सुनहरी सीढियाँ हैं। शरीर रूपी सिंहलगढ़ के नौ चक्र

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हैं, नौद्वार हैं जो अत्यधिक कठोर हैं। इनके मार्ग में चार पड़ाव हैं – प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि। जो सत्यतापूर्वक साधना करता है वही सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

विशेष – प्रस्तुत अवतरण में दार्शनिक तत्त्व उभर कर सामने आये हैं जिनके आधार हठयोग, नाथपंथ और अद्वैत वेदान्त है। सूफ़ी काव्यों में प्रस्तुत के माध्यम से अप्रस्तुतकी व्यंजना की जाती है अतएव यहां समासोक्ति भी है।

2. कवि की रहस्यवादी प्रकृति का परिचय हुआ है।
3. कवि की सूफ़ी विचारधारा का भी पुट मिलता है।
4. अनुप्रास, अतिशयोक्ति, यमक आदि अलंकारों का प्रयोग है।

(9)

नव पौरी पर दसवं दुवारा। तेहि पर बाज राज-घरियारा॥
घरी सौ बैठ गनै घरियारी। पहर-पहर सो अपनि बारी॥
जबहि घरी पूजि तेईं मारा। घरी-घरी घरियार पुकारा॥
परा जो डांड जगत सब डांडा। का निचिंत मारी कर भांडा॥
तुम्ह तेहि चाक चढे हौ कांचे। आएहु रहै न थिर होइ बांचे॥
घरी जो भरी घटी तुम्ह आऊ। का निचिंत होइ तोउ बटाऊ॥
पहरहि पहर गजर नित होईं। हिया बजर, मन जाग न सोई॥
मुहम्मद जीवन जल भरन, रहंट घरी के रीति।
घरी जो आई ज्यों भरी, ढरी जनम गा बीति॥

शब्दार्थ – घरियारी=घड़ियाल। घरी=जलघडी। डांड=डंडा। डाँडा=दण्डित। भाँडा=बर्तन। काँचे=कच्चे। चाक=बर्तन बनाने वाला कुम्हार का चाक।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' में जायसी द्वारा विरचित 'पद्मावत' के ''सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड'' से अवतरित है। इस अवतरण में कवि ने सिंहलगढ़ के आन्तरिक भाग का वर्णन किया है। इस पद के दो प्रकार से अर्थ स्पष्ट होते हैं – गढ पक्ष में और हठयोग पक्ष में।

गढ पक्ष में व्याख्या – कवि जायसी सिंहलगढ़ के आन्तरिक भाग का वर्णन करते हुए कहते हैं कि इस गढ़ की नौ पौरियों को पार करने के पश्चात् एक दसवाँ द्वार मिलता है। यहाँ पर राजघड़ियाल (घंटाघर) है, जो बजता है। घड़ी मापने वाली स्त्री वहाँ पर बैठकर समय-समय पर घड़ी मापने का कार्य करती है। जब घड़ी भर जाती है तो घड़ियाल पर प्रहार कर उसे बजा देती है। इस घड़ी का संकेत मिलता रहता है। उस घड़ियाल पर जब डंके का प्रहार होता है तो ऐसा लगता है मानों संसार को दण्डित कर कह रहा हो कि हे मर्त्य मानव ! तू इतना निश्चिंत क्यों है ? तू उस कच्ची मिट्टी का बना हुआ है, जिसका नष्ट होना आवश्यक है। घड़ियाँ जितनी बार भरती जाती है उतनी ही मनुष्य की आयु घटती जाती है। कवि कहते हैं कि हे राहगीर ! तू निश्चित होकर क्यों सो रहा है, तुझे जागना चाहिए। प्रत्येक प्रहर में घड़ियाल की टंकार सुनाई देती है और चेतावनी देती है। हे मानव ! तू जाग। किन्तु मनुष्य बे-परवाह बिना किसी चिन्ता के आराम से सो रहा है।

जायसी कहते हैं कि यह जीवन रहँट के समान है। रहँट की घड़ियाँ जल में भरकर आती है और ऊपर आकर रिक्त हो जाती है। इसी प्रकार मानव का जीवन-चक्र निरन्तर समाप्ति की ओर बढ़ रहा है।

हठयोग पक्ष में व्याख्या – योग साधना की ओर संकेत करते हुए जायसी कहते हैं कि नौ चक्रों के बाद दसवां द्वार यानी 'ब्रह्मरन्ध्र' है। वहाँ राजघड़ियाल अर्थात् अनहद नाद होता है। वहाँ पर कालगति रूपी घड़ियारी बैठकर समय का मापन करती रहती है। अत: कालगति निर्बाध रूप से चलती रहती है। जब समय का एक खण्ड पूरा हो जाता है तो यह चेतावनी मिलती है कि यह संसार अब घड़ी भर का शेष है। मानव को भी उसके जीवनचक्र की समाप्ति का संकेत देता है और कहता है कि हे मानव ! सजग हो जा। तू

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उस कच्ची मिट्टी के चाक से बना हुआ है, जिसका नष्ट होना सार्वभौम सत्य है। जितनी कालावधि समाप्त हो जाती है, मानव की आयु भी उतनी ही कम होती चली जाती है। अत: हे साधक! तू ब्रह्म-रचना में स्थित काल चक्र (घडियाल) से प्रेरणा प्राप्त क्यों नहीं करता है? प्रत्येक प्रहर में सूचना संकेत मिलता है किन्तु मानव का कठोर हृदय उस संकेत को सुन नहीं पाता है। जायसी कहते हैं कि यह जीवन रहँट चक्र के समान है, जैसे-जैसे रहँट की घड़ियाँ भरती हैं और खाली होती हैं, वैसे-वैसे समय की गति से सारी आयु कम होती चली जाती है।

विशेष — कवि जायसी ने सिंहलगढ़ के आन्तरिक भाग का वर्णन रहस्यात्मक विचार-धारा से युक्त शैली में किया है। यौगिक ग्रंथों में 'ब्रह्मरन्ध्र' को दशम द्वार कहा है। इसके साथ योग-साधना का भी संकेतात्मक उल्लेख किया है।

प्रस्तुत अवतरण में समासोक्ति, यमक, उपमा, विभावना आदि अलंकारों का प्रयोग कर वर्णन को चमत्कारपूर्ण बना दिया है।

(10)

गढ पर बसहिं झारि गढपति। असुपति, गजपति, भू-पर-पती॥
सब धौराहर सोने राजा। अपने अपने घर सब राजा॥
रूपवंत धनवंत सभागे। परस पखान पौरि तिन्ह जागे॥
भोग-विलास सदा सब माना। दु:ख चिन्ता कोई जनम न जाना॥
मन्दिर मन्दिर सब कै चौपारी। बैठ कुंवर सब खेलहिं सारी॥
पासा ढरहिं खेल भल होई। खड्गदान सरि पूज न कोई॥
भॉट बरनि कहि कीरति भली। पावहिं हस्ति घोड़ सिंघली॥
मन्दिर मन्दिर फुलवारी, चोवा चन्दन बासा।
निसि दिन रहे बसन्त तह, छवों ऋतु बारह मासा॥

शब्दार्थ — झारि=अनेक। गढपति=राजागण। असुपति=अश्वपति। चोबा=कपूर। धौराहर=धवल ग्रह। सभागे= सौभाग्यशाली। चौपारी=चौपाले। सारी=पासा। परस पखान=पारस पत्थर। खड्गदान=युद्ध। सरि=समान।

प्रसंग — प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'जायसी' नामक पाठ से अवतरित है, जिसे 'पद्मावत' के ''सिंहल द्वीप वर्णन खण्ड'' से लिया गया है। इस अवतरण में सिंहल नगर के सरदारों के वैभव का वर्णन किया गया है।

व्याख्या — कवि जायसी सिंहल नगर के सरदारों के वैभव का चमत्कारपूर्ण वर्णन करते हुए कहते हैं कि वहाँ पर अनेक गढ़पति, अश्वपति, भूपति और नरपति निवास करते हैं, उन सब के भवन श्वेत अर्थात् अत्यंत धवल दिखाई देते हैं, वे स्वर्ण सज्जित हैं। सभी सरदार अपने-अपने क्षेत्र के स्वामी हैं। वे सब अत्यन्त रूपवान्, धनवान् और भाग्यवान् हैं। उनके भवन के मुख्य द्वारों पर पारस पत्थर जड़े हुए हैं और वे सभी सरदार भोग-विलास में मस्त रहते हैं। उनके जीवन में किसी प्रकार का कष्ट या चिन्ता नहीं है अर्थात् वे आजन्म सुखी हैं। वहाँ प्रत्येक भवन में चौपालें हैं। उन चौपालों पर बैठकर वे सभी कुंवर चौपड़-पासा खेलते रहते हैं और पासे निरन्तर गिरते रहते हैं। तलवार चलाने में उनका कोई सानी नहीं है। चारण और भाट उनके यश और वैभव का विस्तृत गुण-गान करते हैं जिसके बदले उन्हें पुरस्कार रूप में एक विशेष जाति के सिंहली हाथी-घोड़े प्राप्त होते हैं।

जायसी कहते हैं कि वहाँ प्रत्येक महल में अनेक प्रकार की फुलवारियाँ हैं। उनके अन्दर भाँति-भाँति की मनमोहक कपूर और चन्दनादि से युक्त खुशबू प्रवाहित होती रहती है। वहाँ हमेशा बसंत ऋतु की जैसी समां बनी रहती है तथा षट्ऋतुओं का सुख बारह मासों तक प्राप्त होता रहता है।

विशेष — 1. प्रस्तुत पद में कवि ने जिन गढपतियों, नरपतियों, भू-पतियों आदि का नाम दिया है। ये सभी मध्ययुगीन उपाधियाँ हैं।

2. सिंहलगढ़ के सम्पूर्ण सुखों और वैभव का वर्णन है।
3. अनुप्रास, यमक, काव्यलिंग आदि को सटीक रखा है।
4. चौपाई और दोहा छन्दों को अवधी भाषा में उचित गति, यति प्रदान की है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(11)

पुनि चलि देखा राज-दुआरा। मानुष फिरहिं पाइ नहीं बारा॥
हस्ति सिंहली बाँधे बारा। जनु सजीव सब ठाढ पहारा॥
कौनो सेत, पीत रतनारे। कौनो हरे, धूम और कारे॥
बरनहिं बरन गगन जस मेघा। औ तिन्ह गगन पीठि जनू ठेघा॥
सिंहल के बरनौ सिंघली। एक-एक चाही एक-एक बली॥
गिरि पहार वे पैंगहि पेलहिं। बिरिछ उचार डारि मख मेलहिं॥
मावे तेई सब गरजहिं बाँधे। निसि-दिन रहहिं महाउत काधे॥
धरती भार न अंगवै, पाँव धरत उठ हालि।
कुरुम टूटे, मुई फाटै, तिन हस्तिन के चालि॥

शब्दार्थ— बारा=प्रदेश। कौनो=कोई। सेत=सफेद। पीत=पीले। रतनारे=लाल। धूम=धूमिल। ठेघा=टिकना। पेलहि=धक्का देना। पैगहि=ठोकर से। मावे=मदमस्त। कुरुम=कच्छप।

प्रसंग— प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'जायसी' नामक पाठ से लिया गया है, जो 'पद्मावत' के ''सिंहल द्वीप वर्णन खण्ड'' से अवतरित है। प्रस्तुत भाग में कवि ने 'सिंहलगढ़ के राजद्वार' का मनोहारी चित्रण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या— कवि जायसी सिंहलगढ़ के राजद्वार का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सिंहलगढ़ के विभिन्न स्थानों को देखने के बाद राजा और उसके साथी राजद्वार को देखने गये। वे वहाँ पर प्रवेश करना चाहते हैं किन्तु प्रवेश नहीं मिलता है। उस विशाल राजद्वार पर सिंहली हाथी बंधे हुए हैं जो सजीव पहाड़ की तरह अड़े हुए हैं जो सफेद, पीले, लाल, हरे, धूमिल, काले जैसे दिखाई देते हैं। वे इतने विशालकाय हैं कि ऐसा लगता है, मानो गगन मण्डल पूरा ही उनकी पीठ पर चिपका हुआ या टिका हुआ हो। उन हाथियों की प्रसिद्धि का वर्णन नहीं किया जा सकता है। ये सभी इतने बलिष्ठ हैं कि बड़े-बड़े पर्वतों को अपने पैरों की ठोकर से उखाड़ कर फैंक देते हैं तथा विशाल वृक्षों को उखाड़ कर अपने मुँह में डाल लेते हैं। वे सभी हाथी मद-मस्त हैं और बंधे हुए रहने पर चिंहाड़ते हैं। रात-दिन उनके कंधों पर अंकुशधारी महावत बैठे रहते हैं और उन पर नियंत्रण करते रहते हैं।

जायसी उन हाथियों की विशालता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि पृथ्वी उनके भार को सहन नहीं कर पाती है। पृथ्वी उनके पैरों तले हिलती रहती है। जो कच्छप और शेषनाग पृथ्वी को धारण किये हुए हैं वे भी उन हाथियों के भार के कारण परेशान रहते हैं। कच्छप की पीठ टूटने लगती है और शेषनाग का फन भी फडकने लगता है।

विशेष— प्रस्तुत भाग में कवि ने सिंहलगढ़ के राजद्वार क वर्णन पूर्णत अतिशयोक्तियुक्त किया है।

(12)

राजसभा पुनि देखि बईठी। इन्द्रसभा जनु परि गै डीठी॥
धनि राजा असि सभा सँभारी। जानहुँ फूल रही फुल वारी॥
मुकुट बाँधि सब बैठे राजा। दर निसान नित जिनके बाजा॥
रूपवंत मनि दिपै लिलाटा। माथे छात, बैठ सब पाटा॥
मानहुँ कुँवर सरोवर फूले। सभा के रूप देखि मन भूले॥
पान कपूर मेद कस्तूरी। सुगन्ध बास भरि रही अपूरी॥
मांझ ऊँच इन्द्रासन साजा। गन्धबसेन बैठ तहं राजा॥
छत्र गगन लगि ताकर, सूर तबे जस आप।
सभा कँवल अस बिगसै, माथे बड परताप॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – दीठि =दृष्टि। दर=द्वार। दिपै=देदीप्यमान। मेद=मेवा। माँझ=मध्य।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'जायसी' नामक पाठ से अवतरित है जो प्रसिद्ध काव्य ''पद्माकर'' के 'सिंहल द्वीप वर्णन-खण्ड' से लिया गया है, इसमें कवि ने सिंहलगढ़ की 'राज्य सभा' का वैभव व्यंजित किया है।

व्याख्या – कवि जायसी सिंहलगढ़की राजसभा का जीवन्त वर्णन करते हुए कहते हैं कि वहाँ पर एक विशाल राजसभा दिखाई दी। उस राजसभा को देखकर ऐसा लगा मानो वह इन्द्रसभा है। वह राजा धन्य है, जिसकी इतनी सुन्दर सभा है। उसे देखकर ऐसा लगता था कि मानो वह कोई फुलवारी-सी लगी हुई हो। वहाँ सभी राजा सिर पर ताज धारण किये हुए थे और अपने-अपने सिंहासनों पर विराजमान थे। उसकी सुन्दरता ऐसी लग रही थी मानो सरोवर में भाँति-भाँति के सुन्दर कमल खिल रहे हों। रूप सौन्दर्य मन-मोहक था। पान, कपूर, मेवा आदि की सुगंधित पदार्थों से पूरी सभा महक रही थी। बीचों बीच इन्द्रासन सजा हुआ था, जिस पर गन्धर्वसेन विराजमान थे।

जायसी कहते हैं कि गन्धर्वसेन राजा का श्वेत छत्र आकाश मण्डल तक फैला हुआ था, जो सूर्य की भाँति देदीप्यमान लग रहा था। ऐसा लग रहा था कि सूर्य का प्रकाश जिस प्रकार कमलों को खिला देता है उसी प्रकार सभी राजा रूपी कमल खिले-खिले प्रतीत हो रहे थे।

विशेष – 1. कवि जायसी ने प्रस्तुत अवतरण में सिंहलगढ़ की राजसभा का मनोहारी वर्णन किया है।

2. गन्धर्वसेन की सभा की विशालता का परिचय प्राप्त हो रहा है।

3. उत्प्रेक्षा, उदात्त और रूपक अलंकार का सफल प्रयोग किया गया है।

(13)

साजा राजमन्दिर कैलासू। सोने कर सब धरति अकासू॥
सात खण्ड धौराहर साजा। उहैं संवारि सकै अस राजा॥
हीरा, ईंट, कपूर गिलाबा। औ नग लाई सरग ले लाबा॥
जावत सबै उरेह उरेहे। भाँति-भाँति नग लाग उबेहे॥
भा कटाव सब अनबन भाँति। चित्र कोरि के पाँतहि पांति॥
लाग खंभ-मनि मनिक जरे। निसि-दिन रहहि दीप जनु बरे॥
देखि धौरहर कर उजियारा। छुपि गये चाँद सुरुज औ तारा॥
सुना सात बैकुण्ठ जस, तस साजे खंड सात।
बेहर बेहर भाव तस, खण्ड-खण्ड उपरात॥

शब्दार्थ – कैलासू=सात खण्डों वाला विशाल भवन, जिसमें राजा और रानी रहते थे। (कैलास पर्वत के समान) धरती अकासू=फर्श और छत। गिलाब=गारा। सरग=स्वर्ग। उरेह=चित्रकार। उरेहे=चित्रकारी करना। उबेहे=पच्चीकारी। अनबर=अनोखा। जड़ेहुए=जरे। बाटे=जले हुए। बेहर=अलग।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'जायसी' नामक पाठ से अवतरित है, इसे ''पद्मावत'' के 'सिंहल द्वीप वर्णन-खण्ड' से लिया गया है। प्रस्तुत भाग में कवि ने सिंहलगढ़ के राज भवन का अति सुन्दर वर्णन किया है।

व्याख्या – कवि जायसी कहते हैं कि सिंहलगढ़ में सात खण्डों का विशाल राज प्रासाद कैलाश पर्वत के समान ऊँचा है और अत्यंत मनोहारी तरीके से सजा हुआ है। उस महल के छत और फर्श सोने के बनाए गये हैं। सातवाँ खण्ड धवलगृह जैसा है और बहुत अधिक सजाया गया है। उस प्रकार की सजावट केवल उस जैसा राजा ही कर सकता है। अर्थात् वह महल अद्वितीय है। उस महल में हीरे की ईंट और कपूर का गारा लगा हुआ है। रत्न जड़ित वह प्रासाद स्वर्ग तक की ऊँचाई पर पहुँचाया गया है। जितने प्रकार की भी चित्रकारी हो सकती है, वह वहाँ पर की गई है। अनेक प्रकार के नग वहाँ पच्चीकारी कर के लगाये गये हैं। उनमें अनेक सुन्दर कटाव

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

हैं और प्रत्येक पंक्ति में विभिन्न प्रकार के चित्र बने हुए हैं। उस राज भवन में लगे हुए मणि व माणिक्य वेश कीमती हैं। वहाँ के खम्भों में मणि और माणिक्य जडे हुए हैं। उस धवलगृही उज्वलता को देखकर सूर्य चन्द्रमा और तारे भी छुप जाते हैं।

जायसी कहते हैं कि सातों बैकुण्ठों के सम्बंध में जो विशेषताएँ सुनी जाती हैं वे सभी विशेषताएँ उस राजभवन के सातों खण्डों में देखी जा सकती हैं। उसके प्रत्येक खण्ड में अलग-अलग सजावट है और वे सब खण्ड अनुपम लगते हैं।

विशेष – 1. प्राचीन कालीन सात खण्डों बाले प्रासाद को कैलाश कहा जाता था, जिसमें राजा व रानी सोते थे।

2. प्रस्तुत राजप्रासाद वर्णन में अनुप्रास, उदात्त, व्यतिरेक और उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(14)

बरनौ राजमन्दिर रनिबासू। जनु अछरोन्ह भरा कबिलासू॥
सोरह सहस पद्मिनी रानी। एक-एक ते रूप बखानी॥
अति सरूप औ अति सुकुमारी। पान फूल के रहहिं अधारी॥
तिन ऊपर चम्पावति रानी। महा सरूप पाट-परधानी॥
पाट बैठि रह किये सिंगारु। सब रानी ओहि करहि जोहारू॥
निति नौरंग सुरंगम सोई। प्रथम बैस नहिं सरवरि कोई॥
सकल दीप मँह जेती रानी। तिन मँह दीपक बारह-बानी॥
कुबरि बत्तीसी लच्छनी, अस सब मौह अनूप।
जानत सिंहलद्वीप के, सबै बखानै रूप॥

शब्दार्थ – अछरीन्ह=अप्सराओं। सहस=सहस्त्र। परधानी=मुख्य। सरवरि=बराबरी। बैस=अवस्था। बारह-बानी=सोना। जोहाऊ=प्रणाम।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'जायसी' पाठ से लिया गया है, यह जायसी द्वारा रचित ''पद्मावत'' के 'सिंहल द्वीप वर्णन-खण्ड' से अवतरित है। इस पद में कवि ने गन्धर्वसेन के रनिवास की सुन्दरता का वर्णन किया है।

व्याख्या – जायसी सिंहलगढ़ के राज प्रासाद में स्थित रनिवास के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वहाँ अनेक सुन्दरियाँ विद्यमान थीं। वह रनिवास अप्सराओं से युक्त स्वर्ग के समान लग रहा था। उसमें सौलह हजार पद्मिनी रानियाँ थीं जो एक से बढ़कर एक सुन्दर थीं। वे सदा पान और फूलों का आहार करने वाली सुकोमलाएँ थीं। उन सबमें चम्पावती रानी सबसे अधिक सुन्दरी और सुकुमारी थी। वही राजा गन्धर्वसेन की पटरानी थी। वह पूर्ण सिंगार करके बैठी रहती थी। अन्य सब रानियाँ उसे प्रणाम करती थीं। वह नित्य नये रूप यौवन से सुसज्जित रहती थी। वह पूर्ण यौवना थी, जिसकी बराबरी कोई नहीं कर सकती थी। राजा गन्धर्वसेन ने सभी द्वीपों से सुन्दरियों को चुन-चुन के अपने रनिवास में स्थान दिया था। सिंहलद्वीप की सभी रानियाँ में बारहबानी दीपक के समान सुन्दर व दैदीप्यमान थी।

जायसी चम्पावती के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह बत्तीसों लक्षणों से युक्त थी। सम्पूर्ण सिंहलद्वीप में उसके सौन्दर्य की चर्चा होती थी।

विशेष – 1. चम्पावती बारबानी में विशेषण-विपर्यय है। इसका अर्थ दीपक नहीं, सोना होता है। सोने के विशेषण का आरोप दीपक पर किया गया है।

2. वृहत्संहिता में स्त्रियों के रूप में बत्तीस लक्षण बताये हैं। चम्पावती को उन सभी लक्षणों से युक्त बताया है।

3. अतिशयोक्ति, रूपक, काव्यलिंग अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

(15)

पुनि आये सिंहलगढ़ पासा। का बरनौ जनु लाग अकासा॥
तरहि करिन्ह बासुकि कै पीठी। ऊपर इन्द्र लोक पर दीठि॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

परा खोह चहुँ दिसि अस बाँका। काँपै जाँघ, जाइ नहिं झाँका॥
अग असूझ देखि डर खाई। परै सो सपत: पतारहि जाई॥
नव पौरी, बाँकी नव खण्डा। नवौ जो चढै जाइ बरम्हंडा॥
कंचन कोट जरे नग सीसा। नखतहिं भरी बीजु जनु दीसा॥
लंका चाहि ऊँच गढ ताका। निरखि न जाय दीठि तन थाका॥
हिय न समाई दीठि नहिं, जानऊँ ठाढ सुमेर।
कहँ लगि कहौं ऊँचाई, कहँ लगि बरनौ फेर॥

शब्दार्थ – करिन्ह=कच्छप। दीठि=दृष्टि। खोइ=खाई। झौका=देखने पर। पतारहिं=पाताल को। कंचन कोट=सोने का परकोटा। नखतहिं=नक्षत्रों में। निरखि=देखना।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के जायसी नामक पाठ से अवतरित है। इसे ''पद्मावत'' के 'सिंहल द्वीप वर्णन-खण्ड' से लिया गया है। इसमें कवि ने सिंहलगढ़ के विशाल रूप और सौन्दर्य का जीवन्त चित्रण किया है।

व्याख्या – कवि जायसी सिंहलगढ़ की विशालता और वहाँ के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि बाजार के सौन्दर्य को देखकर तो आश्चर्य की सीमा ही नहीं रही। वह गगनचुम्बी गढ़ अवर्णनीय है। वह गढ़ नीचे से कूर्म (कच्छप) की पीठ पर टिका हुआ है और ऊपर इन्द्रलोक दिखाई देता है। उसके चारों तरफ गहरी खाई है जिसमें देखा नहीं जा सकता है। उनमें देखने पर जाँघें काँपने लगती हैं क्योंकि वह अगम व अबूझ खाई है। उसमें गिरने वाला सीधे सातवें पाताल की ही खबर लेता है। उस गढ़ में सुन्दर व ऊँचे-ऊँचे नौ खण्ड (मंजिलें) हैं, जिनमें नव पौरियाँ हैं। जो व्यक्ति उन नौ मंजिलों को पार कर लेता है, वह सीधा ब्रह्माण्ड में पहुँच जाता है। उसका सोने का परकोटा है और उनमें कंगुरे जड़े हुए हैं। ऐसा दिखाई देता है मानो नक्षत्रों के मध्य विद्युत चमक रही हो। देखने में वह गढ़ लंका से भी ऊँचा जान पड़ता है। उसकी ओर देखने पर दृष्टि व शरीर थक जाते हैं। कवि जायसी कहते हैं कि सिंहलगढ़ की विशालता न तो हृदय में समाती है और न ही दृष्टि से देखी जा सकती है, ऐसा लगता है मानो वह गढ़ नहीं बल्कि सुमेरु पर्वत हो। उस गढ़ की ऊँचाई और विस्तार का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में कवि ने हठयोग साधना का संकेत दिया है, उसके अनुसार साधक नौ चक्रों का भेदन कर ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचाता है।

2. गढ़ की विशालता का वर्णन व्यंग्यात्मक सा प्रतीत होता है।

3. अतिश्योक्ति अलंकार का प्रचुर प्रयोग है और अन्त में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

4.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

4.2.1 अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. जायसी का पूरा नाम क्या था और उनकी प्रमुख रचना कौन-सी है?

उत्तर – जायसी का पूरा नाम 'मलिक मुहम्मद जायसी' है। 'पद्मावत' उनकी प्रमुख काव्य रचना है।

प्रश्न- 2. ''नव पौरी बांकी नवखण्डा, नवौ जो चढे जाइ बरम्हंडा'' का भाव क्या है?

उत्तर – सिंहलद्वीप में नवखण्डों की नौ पौरियां हैं, जो उन्हें पार कर लेता है, वह ''ब्रह्माण्ड'' में पहुंच जाता है। हठयोग से नौ चक्रों को पार कर प्राणी 'ब्रह्मरन्ध्र' में पहुँचता है।

प्रश्न- 3. जायसी हिन्दी साहित्य में कौन-सी भक्तिधारा के कवि हैं?

उत्तर – जायसी हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में प्रेमाश्रयी अथवा सूफ़ी प्रेममार्गी काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं।

प्रश्न- 4. जायसी ने 'पद्मावत' में राजा रतनसेन और पद्मावती के प्रेम का वर्णन किस रूप में किया है?

उत्तर – जायसी ने रूपक के द्वारा राजा को जीवात्मा और रानी को परमात्मा बताकर जीव और ब्रह्म के प्रेम सम्बंधों का निरूपण किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रश्न- 5. हिन्दी साहित्य में सर्वश्रेष्ठ प्रेमाख्यान काव्य किसे माना गया है और उसमें कौन-सी शैली को अपनाया है?

उत्तर – जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत' को हिन्दी साहित्य में सर्वश्रेष्ठ प्रेमाख्यान काव्य माना है। इसमें सूफ़ी काव्य परम्परा की मसनबी शैली को अपनाया गया है।

प्रश्न- 6. ''जबहिं दीप नियराबा जाई, जनु कविलास नियरवा आई।'' कवि ने प्रस्तुत पंक्ति में 'कविलास' किसे कहा है ?

उत्तर – सामान्य अर्थों के अनुसार 'कविलास' स्वर्ग को कहा है किन्तु रहस्यवादी विचार धारानुसार इसका अर्थ 'ब्रह्मरन्ध्र' अथवा 'शिवलोक' है।

4.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. सिंहल द्वीप वर्णन खण्ड की विशेषताएँ बताइये।

उत्तर – कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने ''सिंहल द्वीप वर्णन खण्ड'' में सिंहल द्वीप के साथ ही रानी पद्मावती का भी वर्णन किया है। इसमें भौगोलिक परिचय देकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सात द्वीप बताये गये हैं। इनमें सिंहलद्वीप को सबसे अधिक रमणीय वर्णित किया गया है। इस प्रसंग में कवि ने एक ओर सिंहलगढ़ का चित्रण किया है और दूसरी ओर सूफ़ी साधना के अनुरूप हठयोग का वर्णन किया है। सिंहलद्वीप की घनी अमराई, सुन्दर जलाशय, वन-उपवन, मानसरोवर, हाट-बाजार, प्रासाद-वैभव की सम्पन्नता को चित्रित किया है। इसमें रहस्यात्मकता और प्रतीकात्मकता का सुन्दर समावेश किया है। एक साधक के लिए हठयोग की क्रियाएँ किस प्रकार उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं इसका भी संकेत दिया है। इस वर्णन में वस्तुपरिगणन शैली भी अपनाई गई है तथा परमात्मा की प्राप्ति के लिए उन्हें साधक बताया है। इस काव्य में सूफ़ी साधना-पंथ का सुन्दर चित्रण किया गया है।

4.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. जायसी के काव्य-सौन्दर्य की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

उत्तर – हिन्दी साहित्य जगत् में 'प्रेमाख्यानक' अथवा 'प्रेम के पीर' मलिक मुहम्मद जायसी का स्थान गौरवमय माना गया है। 'प्रेम के पीर' मूल तत्त्व को लेकर जिस प्रेमाश्रयी का सूफ़ी प्रेम मार्गी काव्यधारा का प्रारम्भ हुआ उसमें जायसी का नाम अग्रगण्य और गौरवमयी ढंग से लिया जाता है। जायसी के जन्म के सम्बंध में अनेक विचार धाराएँ सामने आती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्म सन् 1492 बताया और जन्म स्थान उत्तरप्रदेश के जायस नामक कस्बे को स्वीकार किया है। कुछ विद्वान् इनका जन्म सन् 1475 मानते हैं और जन्मस्थान गाजीपुर मानते हैं। सन् 1558 में इनका निधन हो गया था। कुछ लोग 1542 मानते हैं।

(जीवनी के संदर्भ में विस्तृत जानकारी अध्याय के आरम्भ में वर्णित की जा चुकी है।)

जायसी प्रेमाख्यान परम्परा के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। ये जितने कुरूप थे उतने ही मन के सरस और सौन्दर्य प्रेमी भी थे। ये निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा के ग्यारहवें शिष्य थे। शास्त्रज्ञान, लोक व्यवहार और सत्संग के कारण जातिगत, धार्मिक और साम्प्रदायिक संकीर्णता से पूर्णतः मुक्त थे। इन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को समान मानकर सभी प्रकार की धर्म-साधनाओं को महत्त्व दिया। इसीलिए ये समन्वय-साधना वाले कवियों में प्रमुख माने जाते हैं।

प्रमुख रचनाएँ – जायसी द्वारा विरचित रचनाओं की संख्या भी विवादास्पद रही है किन्तु विशेष शोध द्वारा पता चला कि इनकी कुल इक्कीस रचनाएँ थी किन्तु उपलब्ध रचनाएँ मुख्य तीन ही हैं – पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम। मसनवी शैली का सर्वोत्तम प्रेमाख्यान काव्य 'पद्मावत' ही माना गया है। इसमें लौकिक प्रेम कहानी के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना की है। इनकी द्वितीय रचना 'अखरावट' में वर्णमाला के एक-एक अक्षर पर सूफ़ी सिद्धान्तों से सम्बंधित तथ्य प्रकट किये गये हैं। ''आखिरी-कलाम'' में मरणोपरान्त जीव की दशा और कयामत के अन्तिम न्याय का वर्णन मिलता है। इनके अतिरिक्त चित्ररेखा या चित्रावत, पोस्तीनामा, कन्हावत् आदि रचनाएँ हैं। किन्तु इन रचनाओं के साथ सत्यता कसमसाती है। साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से 'पद्मावत' काव्य का बहुत अधिक महत्त्व माना गया है।

काव्यगत विशेषताएँ –

सुप्रसिद्ध और विशिष्ट प्रभावी प्रेम-काव्य 'पद्मावत' ही आधारभूत काव्य रचना मानी गई है जो उनकी काव्यगत विशेषताओं का विवेचन करने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस रचना में उनके काव्य-कला की निर्मल झाँकी व वास्तविक प्रतिमा के स्पष्ट दर्शन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

होते हैं। इस काव्य को हम आध्यात्मिक प्रेम काव्य भी कह सकते हैं। यह फारसी की मसनबी शैली में लिखा गया है। 'पद्मावत' में इतिहास और कल्पना का समावेश है। जायसी ने इस काव्य में अनेक आदर्श प्रस्तुत किये हैं। रत्नसेन को सच्चे प्रेम का आदर्श बताया है। गोरा-बादल यदि वीरता का आदर्श प्रस्तुत करते हैं तो नागमती पति परायणा पत्नी का आदर्श है। कविने इस काव्य में भाषा और भावों के संयोजन में, कथा संगठन में, विरह व्यथा से द्रवीभूत करने और मानवीय संवेदनाओं को उद्घटित करने में अत्यन्त कला कौशल दिखाया है। इनका यह काव्य भक्ति-रस के प्लावित और विरहाश्रु से सिक्त है। पात्रों का स्वभाव वर्णन, सौन्दर्य निरूपण, लोक पक्ष का समर्थन और भारतीय संस्कृति के उत्कर्ष व उत्कृष्ट उदाहरणों का कोई अन्य सानी नहीं है।

'पद्मावत' की कथावस्तु लोक प्रसिद्ध इतिहास और कल्पना के मिश्रण से तैयार की गई है। पद्मावत काव्य का पूर्वार्द्ध पूर्णतः काल्पनिक है और उत्तरार्द्ध का आधार राजस्थान के इतिहास का अध्याय-सा प्रतीत होता है। जैसे –

राजा रत्नसेन हीरामन तोते से सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर अनेक विघ्न बाधाएँ पार करता हुआ दल-बल सहित पद्मावती को प्राप्त करने के लिए चल पड़ता है। आगे चलकर शिवजी के मन्दिर में दोनों की मुलाकात होती है, किन्तु रत्नसेन पद्मावती के रूप सौन्दर्य को देखकर बेहोश हो जाता है। पद्मावती उसे मूर्च्छित जानकर अपने महल में चली जाती है। होश में आने पर रत्नसेन को शिव-पार्वती के दर्शन होते हैं और वे रत्नसेन को पद्मावती मिलने का वरदान दे देते हैं। वे उसे एक सिद्ध गुटका भी देते हैं। राजा रत्नसेन विवाहित था। उनकी पत्नी का नाम नागमती था जो राजा के चले जाने के बाद विरहिणी रूप धारण करती हुई रोती व कलपती दर्शाई गई है। अन्ततः नागमती, पद्मावती और रत्नसेन का मिलन होता है और राजा रत्नसेन चित्तौड़ के महल में पहुँच कर दोनों रानियों के साथ आनन्द पूर्वक रहने लगता है। इसी कथा में अलाउद्दीन प्रसंग भी वर्णित है। वह पद्मावती के दर्शन करना चाहता था। शतरंज खेलते समय उसे एक दिन पद्मावती का प्रतिबिम्ब दिखाई दे जाता है तो अलाउद्दीन पागल-सा हो जाता है और धोखे से मित्रता दिखाते हुए रत्नसेन को बन्दी बना लेता है और शर्त यहरखता है कि यदि उसे पद्मावती को दे दे तो वह उसे मुक्त कर सकता है। पद्मावती चालाक थी अतः वह अपने दो विश्वास-पात्र सरदारों से मन्त्रणा करके अलाउद्दीन के छल का बदला छल से लेना चाहती थी। पद्मावती ने प्रस्ताव भेजा कि, "मैं अपनी सोलह-सौ सखियों के साथ आपके पास आ रही हूँ।" अलाउद्दीन प्रसन्न हो जाता है। रानी ने बन्द पालकियों में सखियों के स्थान पर सोलह सौ शूरवीर राजपूत बिठा लिये और यहीं पर युद्ध होता है। एक लोहार पिंजरा तोड़कर रत्नसेन की बेड़ियाँ काट देता है, उधर कुम्भलनेर के राजा ने पद्मावती को बहकाने के लिए एक कुट्टनी भेज दी थी। राजा रत्नसेन ने क्रोध में आकर वहाँ कुम्भलनेर पर आक्रमण कर दिया और द्वन्द्व युद्ध प्रारम्भ हो गया। दोनों राजा उस द्वन्द्व युद्ध में मरे गये। अलाउद्दीन भी अवसर पाकर चित्तौड़ पर आक्रमण कर देता है। बादल वीरगति को प्राप्त हो जाता है। रत्नसेन की मृत्यु का समाचार पाकर नागमती और पद्मावती दोनों सती हो जाती हैं। अन्त में, जब अलाउद्दीन पद्मावती को पाने के लिए चित्तौड़ में प्रवेश करता है तो वहाँ पद्मावती की राख मिलती है और अलाउद्दीन सिर धुनकर रह जाता है। जायसी के काव्य की विशेषताओं को हम निम्नलिखित आधारों से स्पष्ट कर सकते हैं –

काव्यगत भाव पक्ष –

1. प्रेम तत्त्व का निरूपण – सूफ़ी से आबद्ध प्रेम के पीर कवि जायसी के काव्य में जहाँ एक ओर लौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है वहीं दूसरी ओर उन्होंने अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। लौकिक दृष्टि से 'पद्मावत' में राजा रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम को वर्णित किया है। कवि के अनुसार लौकिक प्रेम-पथ अत्यन्त कठिन है, कष्टदायी और बाधाओं से युक्त है। फिर भी सच्चा प्रेमी इस अग्निपथ को पार कर सफलता प्राप्त करता है। सूफ़ी मतानुसार जायसी ने प्रेम को साधना का केन्द्र माना है –

भलेहि प्रेम है कठिन सुहेला।
दुइ जग तरा प्रेम जेई खेला॥

जायसी ने पद्मावत में प्रेम-कथा का तात्विक निरूपण किया है।

2. गुरु कृपा का महत्त्व – कवि जायसी ने गुरु महिमा को वर्णित करते हुए कहा है कि गुरु कृपा जीवन का आधार है। प्रत्येक शिष्य गुरुकृपा द्वारा ही अनुपम प्रेम के मार्ग पर चल सकता है और गुरु कृपा से ही प्रेम ज्योति से साक्षात्कार कर सकता है। गुरु द्वारा ही प्रेम ज्योति प्रज्वलित की जाती है। गुरु-कृपा से ही प्रेम का विस्तार होता है और परम् लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। कवि ने गुरु महिमा का वर्णन करते हुए कहा है कि –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

"गुरु विरह चिनगी जो मेला।
जो सुलगाई लेइ सो चेला॥
सबद एक उन कहा अकेला।
गुरु जस भृंग फनिग जस चेला॥
गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा।
बिन गुरु को निरगुन पावा॥"

3. रहस्यानुभूति – सूफ़ी संत जायसी के काव्य में प्रेम तथा प्रकृतिमूलक रहस्यवाद निखरा हुआ देखने को मिलता है। भारतीय अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद से प्रभावित होने के कारण इनके काव्य में रहस्यानुभूति की भावपूर्ण व्यंजना हुई है। उन्होंने रत्नसेन को आत्मा और पद्मावती को परमात्मा के रूप में प्रस्तुत कर कहा है कि संसार के नाना रूपों में परमात्मा प्रियतम के रूप-माधुर्य की परछाई परिलक्षित होती है। सम्पूर्ण प्राकृतिक पदार्थ और व्यापार परमात्मा का समागम चाहते हैं। यही कारण है कि सम्पूर्ण जगत् में उस प्रभु की परम्-सत्ता ज्योति जगमगाती रहती है –

जेहि दिन देखन ज्योति निरमई
बहुते ज्योति-ज्योति ओहि भई।
रवि ससि नखत दिपहि ओहि जोति।
रतन पदारथ मानिक मोती।
जहँ-जहँ विहंसि सुभावहिं हँसि।
तहँ-तहँ छिटकी जोति परगसी।

तीव्र रहस्यानुभूति के कारण जायसी ने मनुष्य के अन्दर परमात्मा के सामीप्य से उत्पन्न असीमित आनन्द की मनोरम व्यंजना की है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि प्रकृति का प्रत्येक प्राणी उस परम ब्रह्म रूपी प्रियतम के प्रेम में कितना निमग्न रहता है –

देखि मानसर रूप सुहावा। हिय हुलास पुरइन होई छावा॥
गा अंधियार रैन-मसि छूटी। भा मिनसार किरन मसि फूटी॥
कँवल विगसि तस बिहंसी देही। भँवर दसन होई के रस लाई॥

जायसी के लौकिक प्रेम पर अलौकिक प्रेम की छाप दिखाई देती है। उन्होंने अनेक दृश्यों और रूपकों के द्वारा आत्मा व परमात्मा के मिलन की उत्सुकता का भावगम्य चित्रण किया है।

4. विरहानुभूति – विरहानुभूति की तीव्रता जितनी जायसी के काव्य में मिलती है, उतनी अन्य काव्यों में नहीं। संसार में जितनी भी जीवात्माएँ हैं वे परमेश्वर की प्राप्ति के लिए सदैव व्यग्र रहती हैं।

किन्तु आत्मा का अपने परमात्मा का समागम एक लम्बे समय के बाद होता है। आध्यात्मिक और भावात्मक रहस्यवाद के अनुसार जहाँ सम्पूर्ण संसार परमात्मामय लगता है। वहाँ लौकिक परम्परा भिन्न है। प्रियतम विरह में प्रियतमा को महा विरह भोगना ही पड़ता है। कवि जायसी ने पद्मावत में नागमती व पद्मावती के इस महाविरह का संवेदनशील और मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।

"जेहि पंछी केनियर होई, कहै विरह कै बात।
सोई पंछी जारि जर, तरुवर होई निपात॥"

कवि ने विरहिणी आत्मा के साथ-साथ प्रकृति को भी विरह की सहभागिता कहा है –

"नहिं पावस ओहि देवरा, नहिं हेमंत बसंत।
न कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत॥"

विरह संतप्त नायिका का मनोवैज्ञानिक चित्रण और विरह जनित दशाओं का स्वाभाविक वर्णन जायसी के काव्यों में बहुत ही स्वाभाविक रूप में मिलता है। कवि ने प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन दोनों ही रूपों को अपनाया है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''चढा अषाढ गगन घन गाजा।
साजा विरह दुंद दल बाजा॥
धूम साम धौरे धन आये।
सेत धजा बग पाँति दिखाये॥
करहि बनसपति हिये हुलासू।
मो कह या जग दून उदासू॥
फाग करहिं सब चांचरि जोरी।
मोहि सन लाहि दीन्ह जस होरी॥''

5. समन्वयात्मक प्रवृत्ति – सूफी सिद्धान्त के अग्रगण्य प्रणेता जायसी एक ओर तो मुसलमानों की परम्परा से जुड़े थे और दूसरी ओर द्वैत तथा विशिष्टाद्वैतवाद से प्रभावित थे। नाथ पंथ और हठयोग उन पर छाया हुआ था। उन सबके होते हुए उन्होंने समन्वयात्मक दृष्टिकोण को अपना और परमात्मा को सम्पूर्ण सृष्टि का चरम लक्ष्य बताया। जायसी के अनुसार आत्मा और परमात्मा जीव व ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं था। उन्होंने प्रेम-जगत् में भी लौकिक व अलौकिक रूप में समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाकर चरम सफलता प्राप्त की। उनके काव्य में सांस्कृतिक समन्वय भी परिलक्षित होता है। उन्होंने हिन्दू राजा रत्नसेन को प्रेमकथा का नायक और मुसलमान शासक अलाउद्दीन को उत्तम कोटि के खलनायक के रूप में चित्रित किया है। कवि जायसी की समन्वयात्मक काव्यगत विशेषता सूफी संतों में अद्वितीय मानी गई है।

कलापक्षीय काव्यगत विशेषताएँ–

जहाँ काव्यगत विशेषताओं में भावपक्ष प्रभावशाली रहा है वहीं जायसी की कलापक्षीय काव्यगत विशेषताएँ कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। उनका कलापक्ष भी पुष्ट, परिमार्जित, परिपूर्ण माना गया है। अलंकार योजना, भाषाशैली, छन्द, रस, काव्यगुण आदि कलापक्ष में समाविष्ट हैं –

1. भाषाशैली – जायसी के प्रमुख काव्य 'पद्मावत' की लोकप्रियता का एक महत्त्वपूर्ण गुण उनकी भाषाशैली है। इनके काव्य में अवधी भाषा का सुन्दर और सफल प्रयोग हुआ है। इस भाषा में घुमावदार मुहावरों की व्यवस्थित योजना ने चार चाँद लगा दिये हैं या यों कहें कि मुहावरों के यथोचित प्रयोगों ने काव्यगत भाषाशैली में एक अनोखा चमत्कार उत्पन्न किया है। उन्होंने साधारण और सीधी-सादी भाषा का प्रयोग कर काव्य को सरस बना दिया है। बिना साहित्यिक शब्दावली के इनका भाषा सौन्दर्य प्रशंस्य है। उन्होंने वाचक लक्षक और व्यंजक सभी प्रकार के पदों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। संप्रेषण और अभिव्यक्ति की क्षमता तो मानो जायसी में कूट-कूट कर भरी थी। इनके काव्यों में कई स्थानों पर पुनरुक्ति दोष भी देखने को मिलता है। एक ही भाव, एक ही अलंकार, एक ही वाक्य को इन्होंने कई बार काम में लिया है। मसनवी शैली के प्रयोग की दृष्टि से इनका महाकाव्य 'पद्मावत' अपने आपमें बेजोड़ हैं। वर्णनात्मक और कथोपकथन शैली व उपदेशात्मक शैली इनके काव्य में मिल जाती है। इस प्रकार भाषाशैली के क्षेत्र में जायसी का काव्य काफी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

2. अलंकार योजना – अलंकार योजना के द्वारा काव्य में रोचकता, कर्णप्रियता और चमत्कार उत्पन्न किया जाता है। जायसी ने अपने काव्य में अलंकार योजना का बहुत ही अनुशासित उपयोग किया है। सादृश्य मूलक अलकारों का इसकी रचनाओं में सुन्दर प्रयोग हुआ है। उपमा अलंकार, उत्प्रेक्षा अलंकार, रूपक अलंकार, समासोक्ति तथा दीपक अलंकार का प्रयोग अधिक किया गया है –

रूपक अलंकार –

''जीवन जल जस दिन घटा।
भँवर छपान हँस परगटा॥''

उत्प्रेक्षा अलंकार –

''कंचन रेख कसौटी कसी।
जनु धन माँह दामिनी परगसी॥''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विभावना अलंकार –

''जीव नाहिं पै सब कछु बोला।
तन नाहीं सब ठाहर-बोला॥''

व्यतिरेक अलंकार –

''का सरवरि तेहि देहु मयंकू।
चाँद कलंकि वह निकलंकू॥''

यमक अलंकार –

''सात दीप बरनै सब लोगू।
एकौ दीप न ओहि सरि जोगू॥''

अनुप्रास अलंकार –

''धनि सो दीप जहँ दीपक-बारी।
औ पद्मिनी सो दई सवारी॥''

इस प्रकार जायसी ने अपने काव्य में अनेक अलंकारों का सफल प्रयोग कर चमत्कारपूर्ण रचनाएँ तैयार की।

3. छन्द विधान – जायसी के काव्य में मुख्य रूप से दोहा और चौपाई अलंकारों का प्रयोग किया है। कवि ने छन्द शास्त्र के नियमानुसार मात्रा, गति, यति, लय, तुक आदि का सावधानी पूर्वक ध्यान रखा है और तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' की भाँति इन छँदों का अवधी भाषा के साथ प्रयोग किया है जिससे काव्य में नाद सौन्दर्य उभर कर सामने आया है और रचना गेय बन गई है।

4. रस योजना – जायसी द्वारा रचित महाकाव्य 'पद्मावत' में मुख्य रूप से श्रृंगार-रस का वर्णन किया है जिसमें संयोग और वियोग दोनों ही पक्ष सामने आये हैं। मुख्य रूप से वियोग (विप्रलम्भ) रस की प्रधानता है। यह स्वाभाविक है कि प्रेम-जगत् के साधक के लिए श्रृंगार की अनुभूतियाँ व्यथित करती हैं। शायद इसीलिए जायसी ने श्रृंगार रस को छोड़कर अन्य रसों के प्रयोग में उपेक्षा दर्शायी है। वैसे इन्होंने करुण, रौद्र, अद्भुत, शान्त और वीर रस का भी प्रयोग सफलता पूर्वक स्वाभाविक रूप में किया है। वात्सल्य रस का प्रयोग काव्य के 'गोरा-बादल' प्रसंग में आता है। तात्पर्य यह है कि जायसी के काव्य में रस योजना का सुन्दर समावेश है किन्तु श्रृंगार-रस का राजत्व खूबसूरत ढंग से हुआ है।

5. अप्रस्तुत विधान – सुप्रसिद्ध सूफ़ी काव्यकार 'जायसी' ने लौकिक और अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना करने में अप्रस्तुत की सशक्त व्यंजना की है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस संदर्भ में कहा है कि, ''जायसी की अन्योक्ति और समासोक्तियों में प्रस्तुत-अप्रस्तुत का जैसा समन्वय देखा जाता है, वैसा हिन्दी के कम कवियों में पाया जाता है। अप्रस्तुत की व्यंजना के लिए जो प्रस्तुत वस्तुएँ परोसी गई हैं और प्रस्तुत की व्यंजना के लिये जो अप्रस्तुत सामग्री सामने रखी है, वे आवश्यकतानुसार कहीं बोधवृत्ति में सहायक होती हैं और कहीं भावों के उद्दीपन में।

''कँवल जो विगसा मानसर,
बिन जल गयेऊ सुखाय।''

प्रस्तुत पंक्ति में जल के बिना कमल का सूखना एक अप्रस्तुत दृश्य है, जिसमें जायसी की सौन्दर्य भावना के साथ-साथ दया और सहानुभूति का भाव भी स्पष्ट होता है।

जायसी के अनुसार जीव द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति के लिए सांसारिक बन्धन, माया, शैतान, गुरु, बुद्धि आदि को प्रस्तुत की भाँति सामने रखकर परमात्मा की प्राप्ति का सहज उपाय बताया है। इसमें अप्रस्तुत विधान रमणीय और अत्यन्त भावमय है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जायसी के काव्य का भावपक्ष रागतत्त्व, बुद्धितत्त्व और कल्पना तत्त्व से परिपूर्ण है। कलापक्ष भी अत्यंत प्रशंसनीय है। जायसी के काव्य में लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना, प्रबन्ध कल्पना, चित्रांकन और लोक पक्ष का विस्तृत वर्णन किया है। नारी को प्रेम की साधना का साध्य माना है। रसमण्डन, मण्डनात्मकता, भाषाशैली, अलंकार योजना, छन्दोबद्धता आदि की दृष्टि से जायसी का काव्य अति उत्तम है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न-2. जायसी द्वारा रचित ''पद्मावत'' में चित्रित अलौकिक एवं लौकिक प्रेम पद्धति की समीक्षा कीजिये।

अथवा

''जायसी का प्रेम-वर्णन लौकिक पक्ष से अलौकिक पक्ष की ओर संकेत करता है।'' 'पद्मावत' के आधार पर इस कथन की समीक्षा कीजिये।

उत्तर – निर्गुण काव्यधारा की जो दो धाराएँ हिन्दी साहित्य में प्रवाहित हुईं, उनमें संतों के अतिरिक्त सूफियों की एक महत्त्वपूर्ण धारा रही है। इसका हिन्दी साहित्य के बहुमुखी विकास में अहम् स्थान रहा है। इतिहास से यह पुष्ट होता है कि सूफ़ी धर्म इस्लाम धर्म का एक प्रधान अंग रहा है। यद्यपि अनेक सूफ़ी संतों ने अपने आपको मुहम्मदी मत से पृथक्करने की पुरजोर चेष्टा की, किन्तु उनके उपदेशों पर भी मुहम्मद साहब की विचारधारा का स्पष्ट प्रमाण दिखाई पड़ता है। विद्वानों की मान्यता है कि मुहम्मद साहब के जन्म से पूर्व ही सूफ़ी मत का उद्‌भव और विकास प्रारम्भ हो गया था। 12वीं शताब्दी के आस-पास सूफ़ी संत भारत में आये और सूफ़ी मत, वेदान्त, हठयोग, प्राणायाम जैसी योगियों की विचारधारा प्रवाहित की। महाकवि जायसी का झुकाव भी सूफ़ी मत की ओर था। सूफ़ी साधना में जीवात्मा और परमात्मा में भेद न मानते हुए समस्त सृष्टि और प्रकृति को परमात्मा की प्राप्ति का साधन माना जाता है। इसलिए सूफ़ी साधक परमात्मा को परम प्रियतम मानकर स्वयं को उसके प्रेम में व्यथित मानते हैं। जायसी ने भी अपने काव्य में परमात्मा रूपी प्रियतम की प्राप्ति के लिए उत्कण्ठा व्यक्त की है। इसके विरह में व्यथा-वेदना प्रकट करने के लिए प्रकृति को भी सहभागिता बनाकर विरह व्यथित चित्रित किया है। इस तरह उनके काव्य में आद्यन्त सूफ़ी प्रेम-पद्धति का निरूपण हुआ है।

जायसी द्वारा रचित प्रमुख प्रेम-काव्य ''पद्मावत''

(1) लौकिक प्रेम का चित्रण – 'पद्मावत' हिन्दी साहित्य का एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। इसकी मूल संवेदना प्रेमपरक है। अतः इसमें शृंगार भावना की प्रधानता है। जायसी ने इस काव्य में लौकिक प्रेम का चित्रण किया है। जब चित्तौड़ का राजा रत्नसेन हीरामन तोता से सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती के रूप सौन्दर्य का वर्णन सुनता है तो सुनते ही उसके हृदय में प्रेमांकुर प्रस्फुटित होने लग जाते हैं और वह विरह व्यथा से पीड़ित रहने लगता है। उधर पद्मावती की भी यही दशा रहती है। रत्नसेन अनेक कष्टों और बाधाओं के कठिन मार्ग को पार करके पद्मावती को प्राप्त कर लेता है परन्तु उसकी पहली पत्नी नागमती अगाध विरह सागर में डूब जाती है। ऐसा माना जाता है कि सिंहलगढ़ से लौटते समय रत्नसेन के जहाज को एक राक्षस नष्ट कर देता है। परिणामतः पद्मावती और रत्नसेन एक दूसरे से बिछड़ जाते हैं। काफी कठिनाइयों को सहन करने के बाद दोनों का पुनर्मिलन हो जाता है और वे चित्तौड़ आ जाते हैं। पद्मावती के रूप और यौवन-रस का लोभी अलाउद्दीन चित्तौड़ पर आक्रमण कर देता है। रत्नसेन को बन्दी बना लिया जाता है। पद्मावती विरहव्यथा से अत्यधिक दुःखी रहती है किन्तु गोरा और बादल की बौद्धिक कुशलता से रत्नसेन मुक्त हो जाता है। देवपाल से युद्ध करते समय रत्नसेन की मृत्यु हो जाती है और दोनों रानियाँ उसके शव के साथ सती हो जाती है। इस प्रकार जायसी ने पद्मावती और रत्नसेन की विरहव्यथा को केन्द्र बिन्दु बनाकर लौकिक-प्रेम का उदात्त चित्रण 'पद्मावत' काव्य में किया है। इस विशेषता के कारण ही 'पद्मावत' को हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ प्रेमाख्यान काव्य कहा है।

(2) अलौकिक प्रेम की व्यंजना – आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि जायसी का प्रेम वर्णन लौकिक पक्ष से अलौकिक पक्ष की ओर संकेत करता जान पड़ता है। इसी विशेषता के कारण कहीं-कहीं उनके प्रेम की गम्भीरता और व्यापकता अनन्तता की ओर अग्रसर प्रतीत होती है। 'रति भाव' का वर्णन हिन्दी के बहुत से कवियों ने किया है, किन्तु एक प्रबन्ध के अन्दर शुद्धभाव से उसके स्वरूप का ऐसा उत्कर्ष जो पार्थिव प्रतिबन्धों से परे होकर आध्यात्मिक क्षेत्र में जाता दिखाई पड़े, जायसी का मुख्य लक्ष्य है। ''क्या संयोग, क्या वियोग दोनों में कवि प्रेम के उस आध्यात्मिक स्वरूप का आभास देने लगता है, जगत् के समस्त व्यापार जिसकी छाया-से प्रतीत होते हैं।'' इस कथन से यह सिद्ध होता है कि जायसी ने अपने काव्य 'पद्मावत' में सूफ़ी साधनानुसार आध्यात्मिक प्रेम का वर्णन मुख्यतः किया है।

3. रूपक और अन्योक्ति योजना –

कवि जायसी ने अपने काव्य 'पद्मावत' में लौकिक पात्रों को आधार बनाकर जीवात्मा और परमात्मा के प्रेम की अभिव्यंजना की है। पद्मावती को परमात्मा और रत्नसेन को विरहिणी आत्मा के रूप में चित्रित किया है। आत्मा परमात्मा के बीच सम्बंधों को

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जोड़ने वाली कड़ी 'प्रेम' को माना है। एक मुख्य सूत्राधार अलाउद्दीन को बताया है। उन्होंने अपने इस महाग्रंथ में अन्योक्ति के द्वारा कथानक का रूपक अनेक प्रकार से व्यक्त किया है, यथा –

''मैं एहि अरथ पण्डितन्ह बूझा। कहा कि हम कछु और न सूझा॥
चौदह भुवन जो तर उपराहीं। ते सब मानुष के घर माहीं॥
तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल, बुधि पद्‌मिनी चीन्हा॥
गुरु सुआ जेहि पंथ दिखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बन्धा॥
राघव दूत सोइ सैतानू। माया अलादीन सुलतानू॥
प्रेम-कथा एहि भाँति विचारु। बूझ लेई जो बूझे पारहु॥''
तुरकी अरबी हिन्दुई, भाषा जेती आहिं।
जेहि में मारग प्रेम कर, सबै सराहें ताहि॥

प्रस्तुत अवतरण में निहित अन्योक्ति से यह स्पष्ट होता है कि राजा रत्नसेन और पद्मावती की प्रणय- कथा साधारण लौकिक मानवीय प्रेम-कथा न होकर अलौकिक आत्मा की प्रेम-गाथा है। ब्रह्म रूप पद्मावती को पाने के लिए रत्नसेन रूपी आत्मा को जिन-जिन बाधाओं को पार करना पड़ा वे सब सूफ़ी साधक मार्ग की कठिनाइयाँ हैं। जायसी ने इसी अभिप्राय से 'पद्मावत' में 'लौकिक प्रेम' के माध्यम से अलौकिक प्रेम का रहस्योद्‌घाटन किया है।

4. अपरिमित सौन्दर्य का जीवन्त चित्रण –

जायसी ने अपने प्रेमाख्यान ग्रंथ 'पद्मावत' में यों तो कई स्थलों पर सिंहलगढ़ की राजकुमारी पद्मावती के लौकिक सौन्दर्य को कलमबद्ध किया है किन्तु मुख्य रूप से दो स्थलों पर मर्मस्पर्शी वर्णन मिलता है। एक तो हीरामन तोते द्वारा रानी के लौकिक सौन्दर्य का चित्रण और दूसरे राघव चेतन द्वारा अलाउद्दीन के सम्मुख। वस्तुतः यह सौन्दर्य-वर्णन ही इस सम्पूर्ण प्रेम-कथा का मूल आधार है। कवि ने अपनी आध्यात्मिक चेतना के अनुसार पद्मावती के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते समय परमात्मा के अपरिमित सौन्दर्य का व्यापक, गम्भीर, मनोरम और चमत्कारी चित्रण किया है। यह सौन्दर्य-चित्रण वर्णनात्मक और भावात्मक दोनों ही प्रकार से मिलता है। जीवात्मा रूप में रत्नसेन और परमात्मा रूप में पद्मावती का सौन्दर्य उस अपरिमित सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होता है, उसके हृदय में प्रेमासक्ति उत्पन्न होती है और वह विरह-व्यथा से पीड़ित होने लगता है। साथ ही कवि ने सम्पूर्ण प्रकृति को भी विरहाग्नि से जनित बताया है –

''बरुनी का बरनौ इसि बनी। साधे बान जानु दुइ अनी॥
उन बानन्ह अस जो जो न मारा ? बेधि रहा सगरौ संसारा॥
गगन नखत जो जाहिं न गने। वे सब बान ओहि के हने॥
धरती बान बेधि सब राखीं। साखी ठाढ देहिं सब साखीं॥
रोंवँ-रोंवँ मानुष तन ठाढे। सूतहिं सूत बेध अस गाढें॥''
बरुनि-बान अस ओपह, बेधे रन बन-ढाँख।
सौजहिं तन सब रोवा, पंखिहिं तन सब पाँख॥

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी की इस सुन्दर भावना के सन्दर्भ में कहा है कि, ''लौकिक सौन्दर्य का वर्णन करते-करते कवि की दृष्टि किस प्रकार उस चरम-सौन्दर्य की ओर जा पड़ती है। यह रूप-सौन्दर्य वर्णन से पता चलता है। उस सौन्दर्य की कुछ झलक मानो सृष्टि के वृक्ष, पशु, पक्षी, पृथ्वी, आकाश व प्रकृति सबको मिलती है। सबकी भावना में मानो उसके प्रति दृष्टि गड़ी हुई है और सबके सब उसके विरह में लीन हैं।'' जायसी के अनुसार सृष्टि के सभी तत्त्व उस अनन्त सौन्दर्य के समागम की अभिलाषा से ही सौन्दर्य और माधुर्य धारण किये हुए हैं।

''पुहुप सुगन्ध करहिं एकहि आसा। मुक हिरकाई तेहिं हम पासा॥''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. आध्यात्मिक सत्य का चित्रण –

कवि जायसी ने लौकिक प्रेम और प्राकृतिक सौन्दर्य के माध्यम से आध्यात्मिक सत्य का चित्रण किया है। जब पद्मावती अपनी सखियों के साथ मानसरोवर में जल-क्रीड़ा करने लगती है तो सभी सखियाँ पद्मावती को नेहर (पीहर) सुख और प्रेम के महत्त्व को बताती हैं –

ऐ रानी मन देखि विचारी। एहि नेहर रहना दिन चारी॥
जो लहिं अहै पिता कर राजू। खेलि लेहुँ जो खेलहुँ आजू॥
पुनि सासुर हम गवनव काली। कित हम कित एह सरवर-पाली॥
कित आवन पुनि अपने हाथा। कित मिलि कै खेलन इक साथा॥
सास ननंद बोलिन्ह जिउँ लोई। दारुन ससुर न आवे देइ॥
पिउ पियार सब ऊपर, पुनि सौ करै दहुँकाइ।
दहुँ सुख राखै की दुःख, दहुँ कस जनम निवाह॥

कवि के अनुसार नैहर से तात्पर्य यह संसार है। प्राणी को इस संसार में कुछ समय के लिए ही रहना है, तत्पश्चात् परलोक गमन करना है। संसार रूपी मानसरोवर के आसपास अनेक आमोद-प्रमोद के साधन उपलब्ध हैं जिनका प्राणी केवल चार दिन अर्थात् कम समय ही आनन्द ले सकता है। सास, ननद के कटु शब्दों से कवि का तात्पर्य है कि वहाँ परलोक में सभी अच्छे-बुरे कर्मों की गणना होती है। इस्लाम धर्मानुसार पुनर्जन्म नहीं होता है। इसीलिए कवि ने लिखा है, ''दारुन ससुर न आवे देई''। इस प्रकार कवि लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक रूप में अभिव्यंजित किया है।

6. भगवान् प्रेम की अभिव्यक्ति –

जायसी ने अपने काव्य 'पद्मावत्' में पद्मावती और रत्नसेन के प्रेम की पुष्टि वाच्यार्थ रूप में की है। कहीं-कहीं व्यंग्यार्थ रूप में भी ईश्वर प्रेम की पुष्टि की है। जब रत्नसेन हीरामन तोते से पद्मावती के अद्भुत रूप सौन्दर्य की गाथा को सुनता है तो वह बेसुध हो जाता है। इस समय वह लौकिक दृष्टि से बेसुध था कि आध्यात्म दृष्टि से वह समाधीस्थ होकर परम ज्योति के सामीप्य की अनुभूति करने लगा था। ध्यानावस्था को खण्डित देखकर रत्नसेन पश्चाताप् करने लगा था।

''आवत जग बालक जस सेवा। उठा रोई हा ज्ञान सो खोवा॥
हौं तो अहा अमरपुर जहाँ। इहाँ परनपुर आएऊँ कहाँ॥''
''केई उपकार मरन बार कीन्हा। सकति हकरि जिउँ हर लीन्हा॥''

यह दशा सच्चे भावुक साधक की है, जो गुरु से ब्रह्म ज्योति का आभास कर उसी ओर आसक्त हो जाता है और संसार के सम्पूर्ण व्यापार इसे अज्ञान और अंधकारमय प्रतीत होते हैं।

''हिय के जोति दीप वह बूझा।
यह जो दीप अंधियारा बूझा॥
उलटि दीठि माया सौं रुठी।
पलटि न फिरी जानि कै झूँठी॥''

इस प्रकार आनन्दमयी ज्योति की आत्मा का आकृष्ट होना परम लक्ष्य है।

7. साधना चित्रण –

पद्मावत में कवि जायसी ने राजा रत्नसेन को प्रेम मार्ग पर विचरण करते हुए निरन्तर अग्रसर होने वाला राहगीर बताया है। आध्यात्म दृष्टि से वह पवित्र और जुझारु साधक है। काम, क्रोध, माया, मोह, शैतान आदि उसके मार्ग में बाधक हैं। राघव चेतन, उलाउद्दीन, राक्षस, तूफान आदि को बाधक तत्त्व बताया है।

नौ पौरी तँह गढ मँझियारा। औ तह फिरहि पाँच कोटवारा॥
दसव द्वार गुपुत एक ताका। अगम चढाव बाट सुठि बाँका॥

भेदे जाइ कोई वह घाटी। जो लँह भेद-बढे होई चाँटी॥
गढ तर कुण्ड सुरंग तह माँहा। तहै वह पंथ कहीं होहि पाहाँ॥
दसव द्वार ताल कै लेखा। उलटि दिष्टि जो लाव सो देखा॥

हठयोग साधनानुसार संकेत किया गया है कि शरीर में नाक, कान आदि नौ द्वार हैं। दशम द्वार ब्रह्मरन्ध्र है। काम, क्रोध आदि इसके पाँच कोतवाल हैं। एक बीचों बीच नाभि-कुण्ड है, जहाँ कुण्डलिनी है। इस कुण्ड से सुषुम्ना नाड़ी ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँचती है। साधक एकाग्रचित्त इसकी ओर ध्यान लगाये रहता है। 'पद्मावत' में सूफ़ी साधकों की चार अवस्था बताई है। मारफितपूर्ण-पूर्ण समाधि अवस्था इसमें ब्रह्म के स्वरूप की सत्यानुभूति होती है। अन्तिम अवस्था 'अक्रीक़त' में परम सत्ता का पूर्ण साक्षात्कार होता है। जायसी ने रत्नसेन को प्रेम पथिक बताकर योग मार्ग की साधना से आध्यात्मिक प्रेम का चित्रण किया है।

4.3 सारांश

जायसी ने 'पद्मावत' में जिस अलौकिक प्रेम का वर्णन किया है वह उनके आध्यात्म ज्ञान का प्रतीक है। सांसारिक नश्वरता, क्षण-भंगुरता, साधना की जटिलता, ईश्वर प्रेम की श्रेष्ठता की ओर संकेत दिया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, ''जायसी का रुझान सूफ़ी मत की ओर था जिसमें जीवात्मा और परमात्मा के पारमार्थिक भेद न माना जाने पर भी साधकों के व्यवहार में ईश्वर की भावना प्रियतम के रूप में की जाती है। उन्होंने ग्रंथान्त में सम्पूर्ण प्रेम-कहानी को अन्योक्ति के रूप में स्पष्ट कर दिया। अतः उसका प्रेम-वर्णन लौकिक पक्ष से अलौकिक की ओर संकेतकरता जान पड़ता है।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-5 : सूरदास

संरचना

5.0 कवि परिचय

5.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

5.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

5.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

5.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

5.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

5.3 सारांश

5.0 कवि परिचय

भक्तिकाल के कृष्ण भक्त कवियों में कवि सूरदास का सर्वप्रमुख स्थान है। यद्यपि सूरदास ने अपने स्वयं के संदर्भ में विशेष कुछ भी नहीं लिखा है, किंतु उनके पदों में अन्त:साक्ष्य के कुछ तथ्यों से पता चलता है कि इतिहासलेखकों ने इनका जन्म संवत् 1540 के लगभग माना है। सूरदास द्वारा रचित ''साहित्य-लहरी'' के अंत में दिये गये एक पद के अनुसार उन्हें चन्दरवरदाई के वंश का माना जाता है, किंतु नाभादास ओर गोकुलनाथ ने इन्हें सारस्वत ब्राह्मण माना है। इनके पिताश्री का नाम रामदास था। 'चौरासी बैष्णवन की वार्ता' के अनुसार इनका जन्म आगरा से मथुरा के बीच 'गऊघाट' के पास ''रूनकता'' में हुआ था। पुष्टिमार्गीय विद्वान् हरिरायजी दिल्ली से चार कोस दूर 'सीही' नामक ग्राम में इनका जन्म स्थल मानते हैं। आधुनिक इतिहासलेखकों की भी यही मान्यता है। ऐसा माना जाता है कि छ: वर्ष की आयु में ही ये घर से निकल गए थे और चार कोस दूर एक तालाब के किनारे रहने लगे। किसी जमींदार ने इनके रहने के लिए एक झौंपड़ी बनवा दी थी, किंतु वैराग्य-तप भंग होने के भय से वे वहाँ से भी भाग गये। ऐसा भी माना जाता है कि वे 'जन्मान्ध' थे और उनमें अलौकिक प्रतिभा प्रारम्भ से ही परिलक्षित होती थी। एक चमत्कारी निपुण गायक के रूप में भी उनकी ख्याति फैलने लगी थी। इनकी प्रसिद्धि सुनकर स्वयं वल्लभाचार्य उनसे मिलने के लिए गऊघाट पर आए थे। जब उन्होंने इनका एक पद मनमोहक और सुरीली आवाज में सुना तो मंत्रमुग्ध हो गए और प्रसन्न होकर उन्होंने सूरदास को अपना शिष्य बना लिया। सूरदास की सच्ची भक्तिभावना और अनूठी कवित्वशक्ति को देखकर वल्लभाचार्य ने इनको गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथजी के मन्दिर में भजन-कीर्तन सेवा का कार्य सौंप दिया। संवत् 1620 के लगभग इनका स्वर्गवास हो गया था।

वल्लाभाचार्य के देहावसान के पश्चात् उनके पुत्र विठ्ठलदास गद्दी पर बैठे। उनके समय में अनेक कृष्णभक्त कवियों का अविर्भाव हुआ। उन्होंने सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च आठ भक्तों को चुन कर 'अष्टछाप' की प्रतिष्ठा की। महात्मा सूरदास भी उनमें से एक थे। सूरदास के पदों का विशाल संग्रह 'सूरसागर' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त 'सूरसारावली', 'साहित्य-लहरी', 'नल दमयन्ती', 'व्याहलों' ओर 'नागलीला' आदि ग्रंथ भी सूरदास द्वारा विरचित माने जाते हैं। सूरदास का प्रमुख ग्रंथ 'सूरसागर' है, इसी पर इनकी 'साखी' आधारित है, इसमें लगभग सवा लाख पदों का संग्रह माना जाता है, किन्तु अभी तक कुल पाँच हजार ही प्राप्त हो पाये हैं।

सूरदास ने अपनी रचनाओं की प्रस्तुति 'श्रीमद्भागवत' से प्रेरणा लेकर दी है। श्रीकृष्ण चरित्र को मौलिक रूप में उपस्थित करने पर इनकी विशेष दृष्टि रही है। यही कारण है कि जहाँ भागवत् के कृष्ण शक्ति के प्रतीक हैं, वहीं सूरदास के कृष्ण चरित्र की दृष्टि में प्रेम और मधुरता के प्रमुख स्थान पर हैं। यद्यपि उन्होंने कृष्ण के उत्तरार्द्ध का वर्णन नहीं किया है, तथापि उनके जीवन के विभिन्न प्रसंगों को लेकर वात्सल्य रस, श्रृंगार रस और शान्त रस की सुन्दर योजना प्रस्तुत की है। उनके काव्य में गोचारण युगीन संस्कृति की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने नन्द, यशोदा, कृष्ण, राधा तथा गोपियों के चरित्र को उसी संस्कृति के अनुसार प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने काव्य की रचना गेयपदों के रूप में की है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पदों की रचना में सूरदास को अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई है। कृष्ण के लोकरंजन रूप को काव्य का आधार बनाकर मुक्तक काव्य की रचना भले ही सूरदास का अभीष्ट नहीं रहा हो, किन्तु कृष्ण की कथा कभी भी प्रबन्धोपयोगी हो ही नहीं सकती थी। सूर ने कृष्ण की बाल्यावस्था और युवावस्था की लीलाओं का विस्तार के साथ वर्णन किया है। 'सूरसागर' के विनय, बाल-वर्णन, 'भ्रमर-गीत' – इन तीनों विभागों में सूर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व वास्तविक रूप में प्रस्तुत है। बाल-लीला वर्णन में सूरदास की बेजोड़ प्रस्तुति रही है। बालक कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं का अति सजीव चित्रण हिन्दी साहित्य जगत् में केवल सूरदास ही कर सके हैं। सूर ने माता और पिता के वात्सल्य भाव का सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक वर्णन अद्वितीय ढंग से किया है।

सूरदास ने बालक कृष्ण की विविध चेष्टाओं एवं भावों का वर्णन करने में अनुपम एवं सजीव चित्र अंकित किये हैं, यथा –

कृष्ण जन्म –

''ब्रज भयो महर के पूत, जब ये बात सुनी,
सुनि आनन्दे सब लोग, गोकुल गनक गुनी।''

बालक कृष्ण का पालने में झुलाना –

''यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलरावै मल्हावै जोइ सोई कछु गावै॥''

कृष्ण का बाल चापल्य रूप –

''कबहुँ पलक हरि मूँद लेत है,
अधर कबहुँ फरकावै॥''

बाल सुलभ चेष्टाएँ –

''चरण गहे अँगुठा मुख मेलत।''

''किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नन्द के आँगन बिम्ब पकरिवे धावत॥''

कृष्ण का बाल सौन्दर्य –

''सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुनि चलत रेनु तन मण्डित, मुख दधि लेप किये॥
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक किये॥''

कृष्ण का बाल चातुर्य –

''मैया मैं नहीं माखन खायौ।
ख्याल परै ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लिपटायो।''

कृष्ण का भाव विकास –

''मैया कबहु बढ़ैगी चोटी।
काचो दूध पियावत पचि-पचि देत न माखन रोटी।''

कृष्ण की बाल हठ क्रीड़ा –

''मैया मैं तो चन्द खिलौना लैहों।
जैहों लोटि धरनि पर अबहीं तेरी गोद न ऐहौ।''

कृष्ण की प्रत्युत्पन्नमति –

''तेरी सौं मैं नेकु न खायौ
सखा गये सब खाय॥''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सूरदास द्वारा कृष्ण के अलौकिक और बाल स्वभाव के मोहक चित्रांकन का मुक़ाबला भला कौन अन्य कवि कर सकता है ।

सूरदास ने कृष्ण का मचलना, खीझना, रोना, हँसना और उनकी भीरु प्रकृति का चित्रण जीवन्त मस्तिष्क से किया है। मातृहृदय की व्यंजना में तो सूर को महारथ प्राप्त था। वात्सल्य चित्रण के समान ही शृंगार-वर्णन में भी कवि ने अपना अद्भुत् प्रतिभा का आश्चर्य चकित और लोमहर्षित परिचय दिया है। शृंगार के अन्तर्गत संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का चित्रण सफलता के साथ किया है। कृष्ण के रूप चित्रण में सूरदास ने जिन बारीकियों को अपनी कलम की पैनी नोंक से छुआ और वर्णित किया वे सभी कृष्ण भक्तों व पाठकों और श्रोताओं को आनन्द की अनुपमानुभूति कराती हैं। साथ ही प्राकृतिक दृश्यों के मनोरम चित्र भी सूरदास की रचनाओं में चार चाँद लगाते हैं। कृष्ण के साथ-साथ राधा के प्रथम मिलन की स्वाभाविक और अनुपम प्रस्तुति का तो आनन्द ही अनूठे ढंग से लिया है–

''बूझत स्याम कौन तू गोरी?

कहाँ रहति काकी तू बेटी, देखी नहीं कबहुँ ब्रज खोरी ॥''

कृष्ण भक्त शिरोमणी सूरदास द्वारा वर्णित संयोग पक्ष भक्तियुगीन इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण और प्रशंसनीय स्थान ग्रहण करता है किन्तु वियोग पक्ष को जिस अंदाज में और जिन अन्तःकरण की भावनाओं को समेट कर कलमबद्ध किया है उसकी प्रशंसा करना साधारण मस्तिष्क के ज्ञानकोष का सामर्थ्य नहीं है। गोपियों के विरह वर्णन में उनके विरहविदग्ध हृदय की विभिन्न परिस्थितियों की अभिव्यंजना अपना जीवन्त परिचय देरही हैं। 'भ्रमरगीत' के पदों में भावुकता, वाग्वैदग्ध्यता, वाग्वैचित्र्य आदि की मर्मस्पर्शी योजना खुद-ब-खुद योजित होती हुई प्रतीत होती हैं।

प्रभु कृष्ण के साख्य भावी भक्त नेअपने प्रभु को अपना इष्ट देव भी माना है। शायद इसी वजह से उन्होंने निर्गुण का खण्डन और सगुण का मण्डन अपनी कृतियों में स्पष्ट दर्शाया है।

''निरगुन कौन देस को बासी।

को है जनक, कौन है जननि, कौन नारी, को है दासी ॥''

सूरदास की रचनाओं के आनन्दमयी मार्ग में कदम-कदम पर ''ज्ञान पर भक्ति की विजय का परचम'' लहराता हुआ दिखाई देता है।

गोपियों के मन में उनके प्रिय नन्दनन्दन, गोपाल कृष्ण के प्रति सच्चा अनुराग और उसका नयनाभिराम दृश्य सूरदास की रचनाओं के अतिरिक्त अन्यत्र दिखाई नहीं देता है। विरह की सम्पूर्ण स्थितियों का व्यापक वर्णन 'भ्रमरगीत' में व्यक्त है। क्या विनय, क्या बाल-सौन्दर्य और बाल-चापल्य, क्या प्रेम-प्रसंग और क्या विरह वर्णन सभी प्रसंगों में सूरदास का हृदय उनके अन्तःचक्षुओं के माध्यम से झाँकना हुआ प्रतीत होता है।

सगुण भक्तिधारा के कृष्ण भक्त शिरोमणी कविराज सूरदास के काव्यों में शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया गया है। शब्दों के तोड़-मरोड़ की प्रवृत्ति इनमें नहीं रही है। इनके पदों में सरलता एवं लालित्य के साथ संगीतात्मक परियोजना भी विद्यमान है। इनके पदों में संगीत प्रेमियों का स्वर मुखरित होता है। अलंकारों की योजना भावाभिव्यंजना में सहायक है। दृश्यमूलक अलंकारों में – उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का ही प्रयोग अधिक मिलता है। इनके काव्य में लोकोक्तियों और मुहावरों ने भी कृष्ण भक्ति के जलापूरित काव्य सरोवर में गोते लगाये हैं। उनकी शैली सर्वत्र प्रवाहपूर्ण रही है। सूरदास को हिन्दी साहित्यकोश में दैदीप्य मान सूर्य के समान भासित बताया गया है, इसमें दो राय नहीं है।

5.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

विनय-पद

(1)

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ?
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पै आवै ॥
कमल नयन को छांड़ि महातम, और देव को धावै।
परम गंग को छांड़ि पियासौ, दुर्गति कूप खनावै ॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जिहिं मधुकर अंबुज रस चाख्यो, क्यों करील फल खावै।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै॥

शब्दार्थ – अनत=अन्यत्र। पंछी=पक्षी। कमल नयन=कमल जैसे नेत्रों वाले (श्री कृष्ण)। महातम=महात्म्य। धावै=आराधना करना, दौड़ना। दुर्मति=कुबुद्धि। कूप=कुआ। खनावै=खोदना। परम गंग=कृष्ण भक्ति रूपी पवित्र गंगा। मधुकर=भौंरा। अंबुज=कमल। करील=कड़वा फल। कामधेनु=दैवगैया जो मनवांछित फल प्रदान करने वाली है।

प्रसंग – 'अष्ट छाप शिरोमणि' तथा पुष्टि मार्ग के उद्गाता महाकवि सूरदास का सम्पूर्ण कृष्ण भक्ति साहित्य में शीर्ष स्थान हैं। महाकवि सूरदास कृत 'सूरसागर भक्ति का ऐसा महासागर है जिसमें श्रीकृष्ण की लीलाओं के मनोहारी स्वर्ण कमल खिले हुए हैं। जो ''विनय'' से सम्बंधित है। कवि ने प्रस्तुत पद में अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति सच्ची निष्ठा और अनन्य भक्ति-भावना को स्पष्ट किया है।

व्याख्या – कृष्ण भक्त शिरोमणि कवि सूरदास कहते हैं कि मेरे मन की स्थिति अपने आराध्य प्रभु कृष्ण की भक्ति में इस प्रकार सराबोर हो गई है कि वह अन्यत्र अर्थात् अन्य भक्तियों की ओर जाने की सोचती ही नहीं है। कृष्ण भक्ति से पगा यह मन अच्छी प्रकार से जानता है कि उसे अन्यत्र ऐसा अनुपम आनन्द प्राप्त नहीं हो सकेगा। जिस प्रकार सीमा-रहित विशाल सागर के बीचों-बीच विचरण करने वाले जहाज पर बैठा पक्षी दूर-दराज तक अपना अन्य सहारा न पाकर पुनः उसी जहाज पर आ कर बैठता है, ठीक उसी प्रकार मेरा मन रूपी पक्षी इस संसार सागर में विचरण करने वाले कृष्ण भक्ति और प्रभु कृष्ण चरणों रूपी जहाज को, जो एकमात्र सहारा है, छोड़ कर अन्यत्र नहीं जा सकता है। क्योंकि इसे अन्य आसरा कहीं दिखाई ही नहीं देता है। अब मैं कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाले भगवान् श्री हरि विष्णु के अवतार प्रभु कृष्ण को छोड़कर अन्य देवता की आराधना भला कैसे करूँ? अर्थात् मैं अन्य शक्तियों की भक्ति नहीं कर सकता हूँ।

सूरदास कहते हैं कि ऐसा कौन जड़बुद्धि होगा जो प्रभु कृष्ण रूपी गंगा के भक्ति रूपी निर्मल जल को छोड़कर कुँआ खोदने के बाद उसके गंदले जल से अपनी प्यास बुझायेगा। जिस भौंरे ने कमल का पराग रस चख लिया हो, वह करील के कड़ुवे फल का रसपान नहीं करेगा अर्थात् मेरे मन रूपी भौंरे ने कृष्ण भक्ति रूपी कमल का आनन्द रूपी रस चख लिया है। कवि कहता है कि मेरे आराध्य तो कामधेनु अर्थात् ऐसी देव गाय है जो सभी की हर प्रकार से मनोकामना पूर्णकरने वाली है। मैं इसके भक्तिरूपी अमृत दुग्ध को छोड़कर बकरी दुहने की कल्पना भी नहीं कर सकता हूँ अर्थात् मैं अपने कृपाकारक और कल्याण-कारी प्रभु श्री कृष्ण के चरणारविन्दों को छोड़कर अन्य देवाराधना नहीं कर सकता हूँ। इन चरणों जैसा सुख मुझे अन्यत्र नहीं मिल सकेगा।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में सूरदास ने अपनी अनन्य भक्ति भाव की व्यंजना करते हुए मन की एक निष्ठा को स्पष्ट किया है।

2. प्रस्तुत पद में अनुप्रास, दृष्टान्त, निदर्शना और काव्यलिंग अलंकार का सहज वर्णन किया है।

3. पद योजना की गेयता, रागात्मकता एवं लालित्य भाव व्यंजना के अनुकूल है।

(2)

अविगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूँगे मीठे फल कौ रस, अंतरगत ही भावै॥
परम स्वाद सबही जु निरंतर, अमित तोष उपजावै॥
मन बानी को अगम अगोचर सो जानै जो पावै॥
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति बिनु निरालम्ब कित चक्रत धावै॥
सब विधि अगम विचारहिं तातै, सूर सगुन पद गावै॥

शब्दार्थ – अविगत गति=अज्ञेय ईश्वर की लीला। अन्तरगत=मन ही मन। भावै=अच्छा लगता है। अमित=अपार। तोष=सुख। उपजावै=उत्पन्न करता है। अगम=अगम्य। अगोचर=अदृश्य। जुगति=युक्ति। निरालम्ब=बेसहारा। चक्रत=चक्रतुल्य। धावै=दौड़ता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से अवतरित है, जो 'विनय के पद' से लिया गया है। इस पद में कवि ने ''सगुण-भक्ति'' के पक्ष का समर्थन करते हुए इसकी सरलता को स्पष्ट किया है, और 'निर्गुण-भक्ति' को जटिल बताया है।

व्याख्या – कवि सूरदास कहते हैं कि उस अज्ञेय ईश्वर की महिमा का आज तक किसी ने पार नहीं पाया है। इसकी लीलाओं का वर्णन करते नहीं बनता है। वह तो वर्णनातीत, अगम और अगोचर है, अगम्य है। जिसप्रकार गूँगा व्यक्ति मीठे फल का आस्वादन कर आनन्दित तो होता रहता है, किन्तु उस मधुर आनन्द के संदर्भ में कुछ कह नहीं सकता है ठीक उसी प्रकार निर्गुण, निराकार ब्रह्म के विषय में कुछ भी कहना कठिन है। जिस प्रकार स्वादिष्ट व्यंजन सभी को भाँति-भाँति के स्वादों का सुख प्रदान करते हैं और मन में संतोष उत्पन्न करते हैं, ठीक उसी प्रकार से निराकार ब्रह्म सबके लिये सुख-दायक और आनन्दकारी है किन्तु वह मन और वाणी से अगम्य, अव्यक्त और अगोचर है। जो उसे प्राप्त कर लेता है वही उसे जान सकता है। निराकार या निर्गुण ब्रह्म का न तो कोई रूप होता है, न आकार, न उसकी जाति होती है, न उसे प्राप्त करने का कोई उपाय या युक्ति ही होती है। ऐसी स्थिति में भक्त का मन बिना किसी आधार या सहारे के चक्र की भाँति इधर-उधर भटकता रहता है अर्थात् चकित-भ्रमित बना रहता है, परन्तु मन उस निराकार को नहीं जान पाता है। सूरदास कहते हैं कि इस तरह स्पष्ट होता है कि निर्गुण-ब्रह्म सभी प्रकार से अगम, अगोचर, अव्यक्त, निराकार, निराधार और अज्ञात है, उसकी भक्ति अत्यंत जटिल है। इसलिये मैं सब तरह से गम्य-ज्ञात, प्राप्य एवं सुपरिचित सगुण-साकार ईश्वर श्रीकृष्ण की लीला के पदों का गुणगान करता रहता हूँ।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कवि ने सगुण-भक्ति की सहजता, उपादेयता और सरसता का वर्णन किया है।

2. निर्गुण-भक्ति की जटिलता व नीरसता की अभिव्यक्ति है।

3. अनुप्रास, निदर्शन, काव्यलिंग और उपमा अलंकार का वर्णन किया गया है।

4. भाषा ब्रजभाषा सरल, सरस और गेय है।

5. रस - भक्ति रस

6. शैली - गेयपद

7. भावसाम्य - ज्यूं गूंगे कबीरदासजी ने भी ऐसा ही लिखा है - 'गूंगे केरी सर्करा, खाय और मुस्काय।'

(3)

छाँड़ि मन हरि विमुखन को संग।
जिनके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग॥
कहा होत पय-पान कराये, विष नहिं तजत भुजंग॥
कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग॥
खर को कहा अरगजा-लेपन, मर्कट भूषण अंग॥
गज को कहा न्हवाये सरिता, बहुरि धरे खहि छंग॥
पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतौं करत निषंग॥
सूरदास खल कारी कामरी, चढ़ै न दूजौ रंग॥

शब्दार्थ – छाँडि=छोड़ना। विमुख=विरोधियों। संग=साथ। कुबुधि=दुराचारी मन। उपजत=उत्पन्न। भंग=व्यवधान। पय-पान=दूध पिलाना। भुजंग=नाग। कागहि=कौवे को। स्वान=कुत्ता। खर=गधा। अरगजा=चन्दन। मरकट=बंदर। भूषण=आभूषण। सरिता=नदी। गज=हाथी। छंग=रेत या मिट्टी। पाहन=पत्थर। पतित=दुष्ट, पापी। रीतो=खाली। निषंग=तरकश। खल=दुष्ट।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से अवतरित है, जिसे 'विनय के पद' से लिया गया है। प्रस्तुत पद में कवि सूरदास ने अपने मन को भक्ति-भाव से प्रेरित कर सत्संगति अपनाने व कुसंगति का परित्याग करने की प्रेरणा दी है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – प्रस्तुत पद में कवि सूरदास अपने मन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे मन ! तुम प्रभु कृष्ण भक्ति से विमुख अर्थात् दूर रहने वालों का साथ छोड़ दो। अर्थात् जो कृष्ण विरोधी हैं, उन दुर्जनों की संगति को छोड़दो, क्योंकि ऐसे लोगों की कुसंगति से दुर्बुद्धि विकसित होती है और ईश्वर की भक्ति में विघ्न उत्पन्न होता है।

दुर्जनों की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कवि अनेक उदाहरण देते हैं और कहते हैं कि हे मन ! नाग को दूध पिलाने से किसी प्रकार का लाभ नहीं है। क्योंकि दूध पीने पर भी नाग अपना विष नहीं त्यागता है बल्कि उसमें दूध के स्थान पर विष की वृद्धि होती है। कौवे को कपूर चुगाने और कुत्ते को पावन गंगा में स्नान कराने से कोई लाभ नहीं। कौआ गुणी तत्व कपूर को चुगने के बाद अपनी प्रवृतिनुसार मांस भक्षण ही करेगा और कुत्ता पावन जल में स्नान करने के बाद या तो कीचड़ में बैठेगा और या मिट्टी खोद कर उसमें बैठेगा। गधे के शरीर पर सुगंधित चन्दन का लेप करने से और बन्दर को कीमती, सुन्दर आभूषण पहनाने से भी किसी प्रकार का लाभ नहीं है, क्योंकि गधा पुनः मिट्टी में लौटेगा और बन्दर अपनी प्रवृत्तिनुसार आभूषणों को तोड़ कर खाने का असफल प्रयास करेगा। हाथी को यदि शुद्ध जल से पूरित नदी में स्नान कराया जाये तो भी वह अपनी सूँड में मिट्टी लपेट कर अपने शरीर पर डालेगा ही। पत्थर की चट्टान को बेंधने के लिए चाहे कितने ही बाण चलाये जायें किन्तु वह बे-असर होंगे, चाहे हम अपनी तरकश के सभी बाणों का प्रहार भी उस पर क्यों न कर लें। कवि इन उदाहरणों से स्पष्ट करते हैं कि दुष्टों या कृष्ण (ईश्वर) भक्ति से विमुख दुर्जनों की प्रवृत्तियाँ अपरिवर्तनीय होती हैं। जिस प्रकार काले कम्बल पर अन्य किसी प्रकार का रंग नहीं चढ़ता है, उसी प्रकार दुर्जनों के साथ किया गया मानवीय अच्छा व्यवहार या ज्ञान के उपदेश असरहीन ही रहते हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कवि ने अपने मन और आचरण की पवित्रता पर बल दिया है।

2. कुसंगति के कुप्रभाव को स्पष्ट कर सत्संगति की प्रेरणा दी है।

3. भगवद् भक्ति के प्रति आस्थावादी होने पर जोर दिया है।

4. अनुप्रास, उपमा और उदाहरण दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग हुआ है।

5. भाषा - ब्रज, 6. रस - शांत, 7. शैली - गेयपद

(4)

अबकै राखि लेहु भगवान।
अब अनाथ बैठ्यो द्रुम डरिया, पारिधि साँधे बान॥
ताकै डर भाया चाहत हौं, ऊपर ढुक्यो सचान।
दुँहु भाँति दुःख भयो आनि यह, कौन उबारै प्रान॥
सुमिरत ही अहि डस्यो पारधी, सर छूटै संधान।
'सूरदास' सर लग्यो सचानहिं, जय-जय कृपा निधान॥

शब्दार्थ – अबकै=इस बार। राखि लेहु=रक्षा कीजिये। हौं=मैं। द्रुम-डरिया=पेड़ की डाली। पारधी =शिकारी। साधे=ताने हुए। ताके=जिसके। ढुक्यो=मँडरा रहा। सचान=बाज। अहि=सर्प। संधान=निशाना।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' पाठ से अवतरित है, जिसे 'विनय के पद' से लिया गया है। प्रस्तुत पद में कवि ने संकट में फंसे हुए भक्त की संकट मुक्ति और उद्धार की विनय-पूर्वक कामना की है।

व्याख्या – कवि सूरदास अपने भक्त वत्सल प्रभु कृष्ण से जीवन रक्षा और उद्धार की विनय करते हुए कहते हैं, कि हे भक्तवत्सल भगवान् ! आप इस बार मेरी रक्षा कीजिये। मैं पेड़ की डाली पर बैठा हुआ एक पक्षी हूँ और मेरा शिकार करने के लिए एक क्रूर शिकारी ने अपने धनुष पर बाण साध रखा है। मैं उससे भयभीत होकर ऊपर की ओर आकाश में उड़कर अपने प्राण बचाना चाहता हूँ किन्तु हे स्वामी ! वहाँ पर मुझे झपट कर मारने के लिए बाज मँडरा रहा है। मैं दोनों ओर से घोर संकट में फँस गया हूँ और प्राण बचने की

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कोई आशा नहीं हैं, मैं पूर्णत: असहाय हो गया हूँ। हे प्रभु ! अब कौन मेरे प्राणों की रक्षा करेगा ? सूरदास कहते हैं कि ईश्वर की लीला अपरंपार है। जैसे ही मैंने आत्मा से अपने प्रभु का स्मरण किया वैसे ही नीचे शिकारी को एक विषैले सर्प ने डस लिया और उसका बाण निशाने से चूक गया तथा उस शिकारी का बाण ऊपर मँडरा रहे बाज पक्षी के जाकर लगा। अन्तत: शिकारी और बाज दोनों की तत्काल मृत्यु हो गई और मेरे प्राण बच गये। हे प्रभु ! मैं आपके इस दयालु रूप पर बलिहारी जाता हूँ। आप दया के सागर हैं, भक्त वत्सल हैं, सबकी रक्षा करने वाले हैं, आप की जय हो।

विशेष – 1. सूरदास ने रूपक के माध्यम से अपने आप को संसार रूपी पेड़ की डाल पर बैठा असहाय पक्षी बताया है, काम, क्रोध, लोभ और मोह को शिकारी तथा माया को बाज बताकर उनसे रक्षा की गुहार की है और सर्प को भक्त-वत्सल भगवान के रूप में वर्णित किया है।

2. प्रस्तुत पद में शब्द-चित्र का सुन्दर प्रतिस्थापन है।

3. अनुप्रास, रूपक, समासोक्ति और निदर्शना अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(5)

अब मैं जानी देह बुढानी।
सीस पाँव कर कह्यो न मानै, तन की दसा सिरानी॥
आन कहत आने कहि आवत, नैन नाक बहै पानी॥
मिट गई चमक-वमक अंग-अंग की, गई जु सुमति हिरानी॥
नाहिं रही कछु सुधि तन-मन की, है गई बात बिरानी॥
'सूरदास' प्रभु अवहिं चेत लो, भज ले सारंग प्राणी॥

शब्दार्थ – जानी=समझना। देह=शरीर। बुढानी=बुढापा। सिरानी=पूरा होना। बिरानी=पराई। अबहि=अभी भी। सारंग पानी=हाथ में धनुष धारण करने वाले भगवान्।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से अवतरित है, जिसे 'विनय के पदों' से लिया गया है। प्रस्तुत पद में कवि ने अपने पार्थिव शरीर की तृतीय अवस्था अर्थात् वृद्धावस्था का सुन्दर और जीवन्त चित्रण किया है।

व्याख्या – सूरदास ने अपने मर्त्य शरीर की निरन्तर क्षीण हो रही शक्ति और वृद्धावस्था का चित्रण करते हुए कहा कि अब मैं इस बात को भली प्रकार से जान गया हूँ कि मेरा शरीर वृद्धावस्था में आ गया है।

अब मेरा सिर (विवेक) मेरे हाथ-पैर जवानी की तरह मेरा कहना नहीं मानते हैं, अर्थात् मेरे मस्तिष्क और हाथ-पैरों में कार्य करने की शक्ति नहीं रही है, यहाँ तक कि सारा शरीर ही अब पुरानी दशा में अर्थात् बुढापे में आ गया है। मैं कहना कुछ चाहता हूँ और मुँह से और ही शब्द निकल जाते हैं। आँख और नाक से पानी आने लगा है। किशोरावस्था की शारीरिक कान्ति (चमक) भी अब समाप्त हो गई है, मेरा विवेक (सुबुद्धि) भी शून्य हो गया है। जीवन की स्थिति इतनी दयनीय हो गई है कि तन-मन की सुधि भी खो बैठा हूँ। ऐसा लगता है कि ये सभी बातें अब पुरानी-सी हो गई हैं। सूरदास मानव जगत् को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे प्राणी ! अब तुम भी सचेत हो जाओ। यह तृतीय अवस्था भी शास्वत् सत्य है अर्थात् प्रत्येक प्राणी की वृद्धावस्था अवश्यंभावी है, अत: धनुर्धारी श्रीहरि विष्णु का स्मरण करो, उनकी भक्ति करो, तभी सांसारिक, दैहिक कष्टों से हमारी रक्षा हो सकेगी। भगवान् ही हमें सद्गति प्रदान करने वाले हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में मर्त्य शरीर की शास्वत् सत्यताओं का सुन्दर चित्रण किया है।

2. भक्ति भावना और अपने आराध्य के प्रति आस्था की सशक्त व्यंजना की गई है।

3. अनुप्रास, वीप्सा, काव्यलिंग, स्वाभावोक्ति अलंकारों की सुन्दर प्रस्तुति दी गई है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(6)

अब कै माधव मोहि उधारि।
मगन हौ भव अंबु निधि में, कृपा सिंधु मुरारि॥
नीर अति गम्भीर माया, लोभ लहरि तरंग।
लिये जात अगाधजल में, गहे ग्राह अनंग॥
मीन इन्द्रिय अतिहि काटत, मोट अध सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सेवार॥
काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत तिय-सुत नाम नौका ओर॥
थक्यो बीच बेहाल बिह्वल, सुनहुँ करुना मूल।
स्याम ! भुज गहिं काढि डारहु, सूर ब्रज के कूल॥

शब्दार्थ – उधारि=उद्धार कीजिए। हौं=मैं। अंबु निधि=सागर। भव=संसार। मुरारि=मुर नामक राक्षस का मर्दन करने वाले श्री कृष्ण। ग्राह=मगरमच्छ। अनंग=कामदेव। मोट=गठरी। अध=पाप। भार=वजन। सेवार=काई। तियसुत=स्त्री और पुत्र। नौका=नाव। विह्वल=व्याकुल। गहि=पकड़ना या थामना। कूल=किनारा।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से लिया गया है जो सूरदास की सुप्रसिद्ध रचना 'सूरसागर' से संकलित है। प्रस्तुत पद में कवि संसार की यातनाओं से पीड़ित असहाय स्थिति में अपने आराध्य से रक्षा की अनुनय-विनय कर रहा है। साथ ही सांसारिक आवागमन से मुक्ति अर्थात् मोक्ष की प्रार्थना भी की है।

व्याख्या – कवि सूरदास अपने आराध्य से जीवन के उद्धार की कामना करते हुए विनती करते हैं कि हे भगवान् ! आप इस बार मेरा इस भव-सागर से उद्धार अवश्य कीजिए। कवि ने सांसारिक जीवन की दयनीय और कष्टदायी स्थिति का चित्रण करते हुए कहा कि हे प्रभु ! मैं इस संसार रूपी अथाह सागर में निरन्तर डूबता जा रहा हूँ। संसार रूपी सागर का माया रूपी जल अथाह गहरा है। विषय वासना रूपी तीव्र लहरें निरंतर उठती जा रही हैं। कामदेव (कामवासना) रूपी भयानक मगरमच्छ मुझे पकड़ कर सागर की गहराई में लिये जा रहा है। इन्द्रियाँ रूपी मछलियाँ मेरे शरीर को काट रही हैं। उधर मेरे सिर पर स्वयं के द्वारा किये गये पापों और दुष्कर्मों की गठरी का बोझ है। मोह रूपी काई में उलझ जाने के कारण मेरे पैरों का संतुलन बिगड़ गया है अर्थात् मैं पग रखने में भी असमर्थ हूँ। काम, क्रोध, अहंकार और तृष्णा रूपी तीव्र वायु का वेग मुझे झकझोर रहा है। हे भक्तवत्सल भगवान् ! ऐसी विषम परिस्थितियों में आपका पावन नाम ही एक ऐसी नाव है जो मुझे इस भवसागर से पार करा सकती है किन्तु मेरे जीवन की विडम्बना तो देखिये प्रभु ! पत्नी और पुत्र का मोह मुझे आपके नाम रूपी नाव की ओर जाने का अवसर भी नहीं लेने दे रहे हैं अर्थात् इस मोह के कारण चाहते हुए भी आपके नाम रूपी नाव का सहारालेने में असमर्थ हूँ। अत: हे स्वामी ! अब मैं थक गया हूँ, बेहाल तथा विह्वल हो गया हूँ। हे मुरारी ! आप तो करुणा मूल हैं, दया निधान हैं, मेरी करुण पुकार सुनिये और अपने इस बेबस और बेसहारा भक्त सूरदास को अपने करुणाहस्त बढाकर संसार सागर से बाहर निकालिये और ब्रज के किनारे आपके श्रीचरणों में स्थान दीजिये।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कवि ने सांसारिक माया, मोह, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, तृष्णा आदि को प्रभुभक्ति में बाधक बताया है।

2. प्रभु का नाम ही वह पतित पावनी, मुक्ति दायिनी नाव है जिसके सहारे संसारसागर से पार उतरा जा सकता है।

3. सम्पूर्ण पद में सांग रूपक अलंकार का सहज वर्णन किया गया है।

4. ब्रज भाषा का लालित्य और पद की गेयता प्रशंसनीय है।

5. गुण-प्रसाद, 6. रस - भक्ति, 7. शैली - गेयपद।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

वियोग वर्णन

(1)

पद

मधुकर ! स्याम हमारे चोर।
मन हरि लियो साँवरी सूरत, चितै नयन की कोर॥
पकर्‌यो तेहि हिर दय उर-अन्तर, प्रेम-प्रीत के जोर॥
गये छुड़ाय छोड़ सब बन्धन, दे गये हँसनि अकोर॥
सोवत ते हम उचकि परी हैं, दूत मिल्यो मोहि भोर।
'सूर' स्याम मुसकाहि मेरो, सर्वस ले गए नन्द किसोर॥

शब्दार्थ – मधुकर=भौरा, उद्धव। चितै=देखकर। नयन की कोर=तिरछी नजर या कटाक्ष। अंकोर=भेंट। उचकि परी=जागना।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के सूरदास नामक पाठ से लिया गया है, जो 'सूर' द्वारा विरचित ''भ्रमरगीत'' से अवतरित है। प्रस्तुत पद में कवि सूरदास ने गोपियों की विरह व्यथा का वर्णन किया है। उद्धव गोपियों को ज्ञानयोग का उपदेश देने के लिए ब्रज में आते हैं, परन्तु वे मधुर उपालम्भ के साथ अपनी प्रेम निष्ठा प्रकट कर विरह स्थिति को प्रकट करती हैं।

व्याख्या – जब उद्धव गोपियों से ज्ञानयोग की साधना के लिये कहते हैं तो उनमें से एक गोपी अपने मधुरतम उपालम्भ के साथ कहती हैं कि हे मधुप ! हमारे प्रियतम कृष्ण तो पक्के चोर हैं। उनके लावण्यमयी सौन्दर्य और उनकी तिरछी नजरों ने तो हमारे चित्त को ही चुरा लिया है अर्थात् उनके बंकिम कटाक्ष ने हमारा मन हर लिया है। हमने तो उन्हें प्रेम की डोर से कसकर बाँधकर ह्रदय में अन्दर रखा था, किन्तु वे तो सारे प्रेम-बन्धनों को तोड़कर चले गये और बदले में हमें लोक हँसी दे गये हैं। शायद यही उनके द्वारा प्रेम के बदले में दी जाने वाली भेंट है।

वह गोपी अपनी विरह स्थिति को प्रकट करती हुई कहती है कि रात को मैं उनके आगमन का अहसास कर चौंक पड़ती हूं किन्तु प्रात:काल जब उन्हें सर्वत्र देखती हूँ तो मुझे नहीं मिलते हैं अर्थात् वह मेरा स्वप्नभ्रम होता है। उनके स्थान पर उनके द्वारा भेजे गये दूत अर्थात् आपके दर्शन होते हैं। सूरदास वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह गोपी अपना उपालम्भ और विरह व्यथा को व्यक्त करती हुई कहती है कि नन्दकिशोर अपनी मन्द और मधुर मुस्कान के साथ मेरा समस्त सुख चुराकर ले गये हैं।

विशेष – 1. कवि ने प्रस्तुत पद में विरहिणी गोपियों की स्थिति को और सहज उपालम्भ की अभिव्यक्ति को स्पष्ट किया है।

2. प्रस्तुत पद में अनुप्रास और परिवृत्ति अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है।

3. 'प्रेम-प्रीति' में पुनरुक्ति दोष दिखाई देता है।

(2)

बिन गोपाल बैरिन भई कुंजै।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुंजै॥
वृथा बहति जमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूले, अलि गुंजै।
पवन, पानि, धनसार, संजीवनि, दधिसुत, किरनभानु भई भुंजै॥
ये ऊधौ कहियो माधव सों, विरह करद करि मारत लुंजै।
'सूरदास' प्रभु को मग जोवत, अखियाँ भई बरन ज्यों गुंजै॥

शब्दार्थ – बैरिन=दुश्मन। कुंजै=बाग-बगीचे। लता=बेल। सीतल=शांति प्रदान करने वाली शीतल। वृथा=व्यर्थ। खग=पक्षी। अलि=भौंरा। माधव=श्रीकृष्ण। घनसार=कपूर। दधिसुत=चन्द्रमा। भानु=सूर्य। बरन=रंग। गुंजै=घुंघुची। करद=कटार।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से अवतरित है जिसे सूर द्वारा विरचित ''भ्रमरगीत'' से लिया गया है। प्रस्तुत पद में कवि ने विरह व्यथा से पीड़ित गोपियों की मन:स्थिति का वर्णन किया है और स्पष्ट किया है कि प्रिय कृष्ण के बिना सभी सुखदायक साधन भी असहनीय कष्टदायक लगते हैं।

व्याख्या – कवि सूरदास विरहिणी गोपियों की मनोदशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि प्रियतम कृष्ण के वियोग में गोपियों की जीवन चर्या ही विपरीत और निराशावादी हो गई है। श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए एक गोपी कहती है कि गोपाल कृष्ण के अभाव में आनन्ददायक क्रीड़ाओं के स्थल ये कुंज भी आज हमारे लिये शत्रु बन गये हैं। कृष्ण की उपस्थिति में ये लताएँ हमें अत्यन्त सुखदायक लगी थी, किन्तु अब ये ही विरहाग्नि की प्रचंड लहरों के समूह के समान लगने लगीं हैं। कृष्ण के अभाव में यमुना का प्रवाह भी व्यर्थ लगने लगता है। पक्षियों का बोलना, कमल के फूलों का खिलना और भौंरों का गुंजना भी व्यर्थ एवं वेदनादायक लगता है। गोपियाँ कहती हैं कि शीतल मंद और सुगंधित पवन, कपूर तथा अमृतमयी चन्द्रमा की मधुर किरणें जो शीतलता प्रदान करने वाले तत्त्व हैं सभी अब प्रचंड सूर्य के तेज से युक्त किरणों के समान लगते हैं। हे ऊधव ! आप कृष्ण से कहना कि विरह रूपी तेजधार वाली कटारी हमारे हृदय के टुकड़े-टुकड़े कर रही है, जिसकी वेदना हमसे सहन नहीं हो पा रही है। सूरदास के अनुसार विरहिणी गोपियों की आँख प्राण वल्लभ कृष्ण की प्रतिक्षा में गुंजा के समान लाल वर्ण की हो गयी हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कवि ने विरहिणी गोपियों की मनोदशा का अति सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण किया है।

2. अनुप्रास, उपमा और काव्यलिंग अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है।

3. यहाँ प्रकृति का उद्दीपन स्वरूप प्रस्तुत हुआ हैं।

4. वियोग काल में प्रकृति के उपादान पीड़क बन जाते हैं।

5. भाषा - ब्रज भाषा, 6. शैली - गेयपद, 7. रस - विप्रलय शृंगार

(3)

प्रीति करी काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सौं, आपै प्राण दह्यौ ।।
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सौं, संपति हाथ हयो।
सारंग प्राति करी जो नाद सौं, सनमुख बान सह्यो ।।
हम जो प्रीति करी माधव सौं, चलत न कछू कह्यौ।
'सूरदास' प्रभु बिन दुख दूनो, नैननि नीर कह्यौ ।।

शब्दार्थ – प्रीति=प्रेम। काहू=किसी ने। लह्यौ=मिला। पतंग=कीट। पावक=अग्नि। दह्यौ=जला दिया। अलिसुत =भौंरा। जलसुत=कमल। सारंग=मृग। नाद=संगीत के स्वर।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से लिया गया है जो सूर द्वारा रचित 'भ्रमरगीत' से अवतरित है। प्रस्तुत पद में स्पष्ट किया है कि प्रेम करना तो तलवार की धार पर चलने के समान है। प्रेम का पथ अग्नि-पथ है, जिसमें अतिशय दुःख सहना पड़ता है। असह्य विरहाग्नि में जलना भी पड़ता है। प्रस्तुत पद में गोपियों और ब्रजवासियों की विरह-व्यथा को स्पष्ट किया है।

व्याख्या – सूरदास कहते हैं कि गोपियों की मन:स्थिति कृष्ण के वियोग में अति कारुणिक हो गयी है किन्तु प्रेम की प्रकृति भी कुछ अजीब है। प्रेम में कष्टों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता है। कवि ने अनेक उदाहरण देते हुए इस सत्य की पुष्टि की है कि – पतंगा दीपक की लौ से प्रेम करता है परिणामत: उसे उसी लौ की तीव्र अग्नि में जलकर अपने प्राण त्यागने पड़ते हैं। भौंरे ने कमल से प्रेम किया तो उसके परिणाम स्वरूप संध्याकाल में उसी कमल-कोश में बन्दी बनना पड़ा। मृग संगीत की धुन से प्रेम करता है तो वह शिकारी के द्वारा पैने बाणों का शिकार हो जाता है। गोपियाँ कहती हैं कि हमने भी कृष्ण से सच्चा प्रेम किया है तो हमें क्या मिला ? वह कृष्ण तो इतना निर्मोही निकला कि हमें विरहाग्नि में छोड़कर मथुरा चला गया और जाते समय हमसे कुछ भी नहीं कहा। गोपियाँ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

और ब्रजवासी आपस में बातचीत करते हैं और कहते हैं कि प्रभु कृष्ण के बिना हमारा कष्ट दुगुना हो गया है। हमारे नेत्रों से सदैव अश्रुधारा प्रवाहित रहती है। सूरदास कहते हैं कि अब यह विरह-व्यथा असहनीय है।

विशेष – 1. प्रेम का परिणाम कष्ट होता है। प्रेमी या प्रेमिका का निर्मोही स्वभाव कष्टदायक होता है।

2. प्रस्तुत पद में अनुप्रास, यमक और दृष्टान्त अलंकार का प्रयोग किया गया है।

3. प्रस्तुत पद में लाक्षणिक पदों का प्रयोग भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से प्रशंसनीय है।

(4)

संदेसनि मधुबन कूप भरे।
अपने तो पठवत नहीं मोहन, हमरे फिरि न फिरे॥
जितै पथिक पठए मधुवन कौ, बहुरि न सौधि करै।
कै वै स्याम सिखाय प्रबोधे, कै कहुँ बीच मरे॥
कागद गरे मेघ, मसि खूटी, सर दव लागि जरे॥
सेवक 'सूर' लिखन को आँधौ, पलक कपाट अरे॥

शब्दार्थ – संदेसनि=संदेशों से। मधुवन=मथुरा। कूप=कुआ। पठवत=भेजना। जिते=जितने भी। पथिक=राहगीर। सौध करे=सुधि लेना। बहुरि=दुबारा। प्रबोधे=समझा कर। मेघ=बादल। मसि=स्याही। सर=सरकण्डे। दब=आग। कपाट=द्वार। अडे=अड़ गये।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से अवतरित है, जिसे 'भ्रमर-गीत' काव्य से लिया गया है।

श्रीकृष्ण के मथुरा गमन के पश्चात् गोपियों द्वारा उनके पास अनेक 'प्रेम-पत्र' और संदेश भेजे गये, किन्तु वहाँ से किसी प्रकार का प्रत्युत्तर नहीं मिला जिससे गोपियों का मन बहुत खिन्न रहने लगा और उनकी विरहाग्नि अधिक उद्दीप्त हो गई। प्रस्तुत पद में सूरदास ने गोपियों की इस कारुणिक स्थिति का सुन्दर चित्रण किया है।

व्याख्या – कवि सूरदास गोपियों द्वारा भेजे गये संदेशों के प्रत्युत्तर न पाकर गोपियों की उपालम्भ युक्त मनःव्यथा का वर्णन करते हुए गोपियों के शब्दों में कहते हैं कि हमने अपने कृष्ण के पास इतने प्रेम-पत्र लिख-लिख कर भेजे हैं कि मथुरा के कुए भी उन पातियों से भरकर अटाअट हो गये होंगे। जो भी राहगीर यहाँ से मथुरा जाता हुआ मिला था, हमने उन सबके साथ अपने संदेश मौखिक रूप में भी भेजे, किन्तु वे राहगीर पुनः मथुरा से लौटे हीनहीं। संभवतः इसीलिये कोई अन्य पथिक इस राह से गुजरते ही नहीं हैं। यह भी हो सकता है कि श्रीकृष्ण के पास वे राहगीर पहुँचे ही नहीं हो और रास्ते में ही मर गये हों। इन कारणों से ही इस मार्ग से राहगीरों का गुजरना बन्द हो गया है।

गोपियाँ कहती हैं कि प्रिय कृष्ण स्वयं तो अपने कुशल संदेश भेजते नहीं हैं, उल्टे हमारे प्रेम-पत्रों को भी पचा जाते हैं और संदेश वाहकों को भी रोक लेते हैं। पत्र न लिखने का कारण शायद यह भी हो सकता हे कि मथुरा में स्याही ही समाप्त हो गई है, पत्र लिखने के लिये जो कागज उनके पास थे वे भी वर्षा में भीग गयेहैं और लेखनी के रूप में काम आने वाले सरकण्डे भी देवाग्नि में जलकर भस्म हो गये हैं। अतः ऐसी स्थिति में कृष्ण पत्र कैसे लिख सकते हैं? वैसे भी वे हमें पत्र क्यों लिखते? वे तो सदैव हमारे नेत्रों में ही बसे हुए हैं और हमने उन्हें अपने नेत्रों में पलकों के कपाटों को कसकर बन्द कर रोक रखा है। ऐसे में कृष्ण के द्वारा पत्र लिखना संभव भी नहीं है।

विशेष – 1. प्रेमासक्त प्रेमी और प्रेमिका के पत्र-व्यवहार की स्वाभाविक क्रिया का सुन्दर वर्णन है।

2. प्रत्योत्तर न मिलने के बाद प्रेमिकाओं की उपालम्भयुक्त मानसिकता की अच्छी व्यंजना है।

3. अन्तिम दो पंक्तियों का अर्थ प्रेमिका पक्ष से हो सकता है कि हमारे विरह युक्त अश्रुजल से सारे कागज गीले हो गये हैं। इतने पत्र लिखे गये कि स्याही भी समाप्त हो गई और लेखनी के लिए प्रयुक्त सरकंडे भी विरहागिन में भस्मसात् हो गये हैं। इन सब परिस्थितियों में हम अब अपने प्रियतम को पत्र कैसे लिखें।

4. प्रस्तुत पद में अनुप्रास, अतिशयोक्ति और रूपक अलंकारों का खूबसूरत प्रयोग हुआ है।

5. भाषा - ब्रज, 6. शैली - गेयपद, 7. रस - विप्रंभ शृंगार

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(5)

हमारे हरि हारिल की लकरी।
मन, क्रम, वच नन्द-नन्दन उर यह दृढ करि पकरी॥
जागत सोवत स्वप्न दिवस-निसि, कान्ह कान्ह जकरी।
सुनत जोग लागत है ऐसो, ज्यों करुई ककरी॥
सु तौ व्याधि, हमको लै आये, देखी सुनी न करी॥
यह तौ 'सूर' तिन्हहिं ले सौंपो, जिनके मन चकरी॥

शब्दार्थ – हरि=कृष्ण। हारिल=एक ऐसा पक्षी जो सदैव अपने पंजों में लकड़ी जकड़े हुए रहता है। दृढ=मजबूती से। दिवस-निसि=रात-दिन। जकरी=रटना। करुई=कड़वी। व्याधि=परेशानी। तिन्हहिं=उनको ही। सौपो=प्रदान करो। चकरी=चंचल या चलायमान या भ्रमित।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से अवतरित है जो 'सूर' द्वारा विरचित 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। इस पद में कवि ने गोपियों की अनन्य भक्ति और प्रेम निष्ठा को व्यक्त किया है और गोपियों द्वारा ज्ञानयोग साधना के विरोध को स्वाभाविक अभिव्यक्ति दी है।

व्याख्या – सूरदास कहते हैं कि जब 'उद्धव जी' ब्रज में आकर गोपियों को ज्ञान-योग साधना के महत्त्व को बात कर उसे अपनाने का प्रस्ताव रखते हैं तो गोपियाँ सामुहिक रूप से इस योग-साधना का विरोध प्रकट करती हैं और कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति निष्ठा का स्पष्टीकरण देती हैं। गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव ! हमारे प्रिय कृष्ण तो हारिल पक्षी की उस लकड़ी के समान है जो उसके पंजों की पकड़ से कभी नहीं छूटती है। (हारिल पक्षी जब उड़ता है तो वह अपने पंजों में किसी भी प्रकार की लकड़ी को जकड़ लेता है और इसी को अपना सहारा समझ लेता है, वह सोचता है कि यह सहारा जब तक उसके पास है तब तक उसका कुछ भी अहित नहीं होसकता है। इसी भ्रामक सहारे से वह विशाल गगन की ऊँचाइयों को तय करता हुआ चला जाता है और जब किसी कारण से यह लकड़ी छूट जाती है तो अपने आपको निराधार और बेसहारा समझकर प्राण त्याग देता है।) हमने अपने हृदय को मन, वचन व कर्म से दृढ़ करके यह सोच लिया है कि हर स्थितियों और परिस्थितियों में हम अपने प्रभु कृष्ण के प्रेम में ही अनुरक्त रहेंगी क्योंकि उनके प्रति सच्चा प्रेम ही हमारे लिये एकमात्र जीने का आधार या सहारा है।

हमें सोते-जागते, स्वप्न या प्रत्यक्ष में निरंतर प्रभु कृष्ण केनाम की ही रट लगी रहती है। अत: हे उद्धव ! हमें तुम्हारा योगोपदेश सुननेमें ऐसा लगता है, जैसे अत्यंत कड़वी ककड़ी मुँह में आ गई हो। आजसे पहले हमने कभी भी इस निर्गुण ब्रह्म से विषय में नहीं सुना है। इस बारे में हमें कोई जानकारी नहीं है। न इसे देखा है और न इसके अनुसार आचरण किया है। उसी निर्गुण रूपी व्याधि को आप हमारे साथ जोड़ना चाहते हैं। गोपियाँ निर्गुण की खंडना करते हुए कहती हैं कि यह तो उन्हें सिखाइये जिनका मन सदैव चंचल और भ्रमित रहता है। हम तो एकाग्र चित्त से प्रभु कृष्ण के पावन प्रेम में आसक्त है।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कवि ने गोपियों की निष्ठा और दृढ़ संकल्प को व्यक्त किया है।

2. कृष्ण को हारिल की लकड़ी के समान बताकर अपनी प्रेमास्था को स्पष्ट किया है।

3. पद में कवि ने अनुप्रास और उपमा अलंकार को सुन्दर रूप प्रदान किया है।

4. यहाँ निर्गुण के उपदेश को व्याधि कहकर उसकी अवहेलना की गयी है।

5. भाषा - ब्रज, 6. रस - विप्रलंभ शृंगार

(6)

बिलगि जनि मानहुँ ऊधो प्यारे।
वह मथुरा काजल को कोठरी, जे आवै ते कारे॥
तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे कुटिल भँवारे।
कमल नयन की कौन चलावै, सवहिन तै मनिहारे॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मानौ नील माट के काढे, जमुना आइ पखारे।
तातैं स्याम भई कालिन्दी, सूर स्याम गुन न्यारे॥

शब्दार्थ – विलगि=बुरा या अन्यथा। सुफलक सुत=अक्रूर जी। कुटिल=निर्दयी। भँवारे=भँवरे। कमल नयन=कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाले (श्री कृष्ण)। माट=मटकी। पखारे=धो दिया ग्या। तातै=इसीलिये। कालिन्दी=यमुना।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से लिया गया है। यह पद सूर द्वारा विरचित ''भ्रमरगीत'' से अवतरित है। इस पद में कवि ने गोपियों की विरह स्थिति एवं उनके उपालम्भ का सुन्दर चित्रण किया है।

व्याख्या – गोपियाँ उद्धव के सम्मुख अपने आन्तरिक उपालम्भ को उद्घाटित करती हुई कहती हैं कि हे उद्धव! आप हमारे कहे का बुरा न मानो या अन्यथा न लें तो हम एक बात तो यह स्पष्ट कर दें कि आपकी मथुरा नगरी किसी काजल की कोठरी से कम नहीं है और यह तथ्य पूर्णत: सत्य प्रतीत होता है, क्योंकि वहाँ से जो भी कोई आता है वह काला ही होता है। यह दोष तुम्हारा नहीं है, यह तो उस मथुरा नगरी का ही दोष है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए गोपियाँ कुछ सटीक उदाहरण देती हुई कहती हैं कि आप स्वयं काले हो। (जबकि उद्धव गौर वर्ण थे किन्तु उन्हें मन का काला अर्थात् कपटी बताया है) वहाँ से पधारे अक्रूर जी काले हैं जो हमारे प्रिय कृष्ण को धोखे से मथुरा ले गये। वहाँ से आने वाले भौंरे भी काले हैं जो फूलों की सुन्दरता के बहाने उनका रस चूस जाते हैं। ऐसे में श्रीकृष्ण की तो बात ही क्या कहें। वे तो सभी कालों के सिर ताज निकले जो तन और मन दोनों ही ओर से काले हैं। गोपियाँ मथुरा नगरी और वहाँ के निवासियों को उलाहना देती हुई कहती हैं कि ऐसा लगता है कि मथुरा के सभी काले प्राणियों के साथ कृष्ण को भी यहाँ यमुना नदी के जल में लाकर धो दिया है, इसीलिये यह जल स्याम वर्ण का अर्थात् काला हो गया है। क्योंकि मथुरावासी तो नीले रंग से भरी हुई मटकी से निकले हुए प्रतीत होते हैं। जिसमें हमारे श्रीकृष्ण के गुण तो विलक्षित हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कवि ने काले रंग के माध्यम से तन और मन के कालेपन की सुन्दर अभिव्यक्तिकी है।
2. मथुरा को काजल की कोठरी बताकर अच्छा उपालम्भ प्रस्तुत किया है।
3. पद में अनुप्रास, उत्प्रेक्षा और तद्गुण अलंकारों का प्रयोग किया गया है।
4. रचना रागत्मकता लिये हुए गेय है।
5. गोपियों का वाग्वैदग्र्य वाक्‌चातुरी और उपालम्म दर्शनीय है।
6. भाषा - ब्रजभाषा, 7. रस - वियोग शृंगार

(7)

निरगुन कौन देस को वासी?
मधुकर कहिं समुझाइ सौंह दे, बूझति साँच न हाँसी॥
को है जनक, कौन है जननि, कौन नारी, को दासी॥
कैसो बरन, भेस है कैसो, केहि रस में अभिलाषी।
पावैगो पुनि कियो आपनो, जो रे करैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो बावरो, सूर सबै मति नाँसी॥

शब्दार्थ – सौहं दे=सौगन्ध देकर। बूझत=पूछना। जनक=पिता। जननि=माँ। नारी=पत्नी। दासी=सेविका। बरन=रंग। भेस=वेश-भूषा। अभिलाषी=इच्छा रखने वाला। गाँसी=झूँठ।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से लिया गया है, जो प्रसिद्ध ग्रंथ 'भ्रमरगीत' से उद्धृत है। कवि ने गोपियों की वाकचातुर्य और निर्गुण के परिहास को सुन्दर अभिव्यक्ति दी है।

व्याख्या – जब उद्धव गोपियों से निर्गुण ब्रह्म की उपासना और योग-साधना का उपदेश देते हैं तो गोपियाँ अपने वाक्‌चातुर्य से उसका परिहास करने लगती हैं तथा उद्धव से निर्गुण के संदर्भ में अनेक प्रकार के प्रश्न पूछती हैं। गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव! आपका निर्गुण ब्रह्म किस देश का रहने वाला है ? हम यह बात सत्य भाव से पूछ रही हैं। इसे झूठ मत समझना। हम आपको शपथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

दिलाकर पूछती हैं कृपया सच-सच बताना। तुम्हारे द्वारा बताये गये निर्गुण के माता-पिता कौन हैं, इनकी पत्नी कौन है , इनकी दासी (सेविका) का क्या नाम है उनका रंग कैसा है? तथा ये कौन-से रस की इच्छा रखने वाले हैं ? यदि तुम इन प्रश्नों के उत्तर बताने में थोड़ी-सी भी झूठ बोलोगे तो तुम्हें अपने किये का परिणाम भुगतना पड़ेगा। सूरदास कहते हैं कि गोपियों द्वारा निर्गुण के संदर्भ में एक साथ पूछे गये इन प्रश्नों को सुनकर उद्धव निरुत्तर हो जाते हैं और हतप्रभ तथा ठगे से रह जाते हैं, क्योंकि इन सभी प्रश्नों में से एक का भी उत्तर देने में उद्धव असमर्थ थे। कारण यह था कि निर्गुण तो निराकार, अगम, अगोचर और अप्रमाणिक है। उस समय उद्धव की स्थिति ऐसी हो गई थी मानो वे विवेक शून्य हो गए हों।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कवि ने गोपियों के माध्यम से निर्गुण-ब्रह्म का खण्डन किया है और सगुण भक्ति का समर्थन किया है।

2. अनुप्रास और सापेक्ष अलंकार का सुन्दर चित्रण किया है।

3. गोपियों का वाग्वैग्ध्य यहाँ दर्शनीय है।

4. ऊद्धव के हतप्रभ रह जाने का चित्र यहां बड़ा मार्मिक बन पड़ा है।

5. भाषा - ब्रज, 6. रस - वियोग श्रृंगार

(8)

उर में माखन चोर गड़े।
अब कैसहुं निकसत नहिं ऊधो ! तिरछे ह्वैं जु अड़े॥
यद्यपि अहीर यशोदा-नन्दन, तदपि न जात छड़े।
वहाँ बने जदुवंस महाकुल, हमहिं न लगत बड़े॥
को वसुदेव, देवकी है को, ना जानै औ बूझैं।
'सूर, स्याम सुन्दर बिनु देखे, और न कोउ सूझै॥

शब्दार्थ – उर=हृदय। माखन चोर=मक्खन चुरा कर खाने वाले (कृष्ण)। तदपि=तथापि। छड़े=छोड़ना। बूझै=समझना।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से लिया गया है, जो 'भ्रमरगीत' का एक अंश है। पद में कवि ने गोपियों के ज्ञानयोग को स्पष्ट किया है और उनके मन में स्थित कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम की भी अभिव्यंजना की है।

व्याख्या – गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव ! हम कृष्ण के प्रेम को भुलाने में असमर्थ हैं। हम यदि उन्हें भुलाना भी चाहें तो नहीं भुला सकती हैं क्योंकि माखन चोरी जैसी लीला करने वाले प्रभु कृष्ण तो अब हमारे हृदय में इस तरह बस गये हैं कि निकाले नहीं निकल सकते हैं। मानो वे हमारे हृदय में अन्दर जाकर तिरछे हो गये हैं। ऐसा लगता है जैसे वे अन्दर ही अन्दर त्रिभंगी लाल हो गये हैं। हे उद्धव ! तुम बार-बार कृष्ण को निकृष्ट अहीर जाति का बता रहे हो तो सुनो। हमें उनकी जाति-पाति से कोई सरोकार नहीं है। यद्यपि हम जानती हैं कि हमारे नटवर नागर कृष्ण अहीर हैं तथापि हम उनसे प्रेम करना नहीं छोड़ सकती हैं। गोपियाँ ऊँच-नीच के भेद की परवाह न करते हुए कहती हैं कि कृष्ण मथुरा में जाकर भले ही यदुवंशियों के राजा बन गये हों किन्तु हमें तो आज भी वे हमारे साथ अनेक प्रकार की लीलाएँ करने वाले हमारे प्रियतम ही हैं। हम उनकी स्मृतियों को कभी भी नहीं भुला सकती हैं। यदि आप यह कहते हैं कि कृष्ण तो वसुदेव और देवकी के राजघराने के पुत्र हैं और वे हमसे प्रेम नहीं करते हैं तो हे उद्धव ! सुनो, देवकी और वसुदेव कौन हैं, हम यह सब नहीं जानती हैं। हम तो केवल यह जानती हैं कि कृष्ण हमारे प्रियतम थे, हैं और रहेंगे। हम उनकी छवि को देखे बिना या उनके दर्शन किये बिना एक पल भी नहीं रह सकती हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कवि ने कृष्ण के त्रिभंगी स्वरूप को व्यक्त किया है।

2. गोपियों की दृढ़-प्रेम प्रतिज्ञा की अभिव्यंजना की है।

3. पद में विशेषोक्ति, विनोक्ति, पर्यायोक्ति जैसे सुन्दर अलंकारों का प्रयोग किया है।

4. निर्गुण ब्रह्म को अपना सकने में असमर्थता को गोपियों ने अन्यत्र भी व्यक्त किया है, यथा - ''उधौ मन नाही दस बीस।''

5. भाषा - ब्रज, 6. रस - वियोग श्रृंगार।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(9)

उधौ। मन नाहीं दस बीस।
एक हुतौ से गयौ स्याम संग, कौ आराधै ईस॥
भई अति सिथिल सबै माधव बिनु, जथा देह बिनु सीस।
स्वासा अटकि रही आसा लगि, जीवहिं कोटि-बरीस॥
तुम तौ सखा स्याम सुन्दर के, सकल जोग के ईस।
'सूरदास' रसिकन की बतियाँ, पुरबौं मन जगदीस॥

शब्दार्थ – हुतौ=था। आराधै=आराधना। ईस=ईश्वर। सिथिल=कमजोर। जथा=जिस प्रकार। बरीस=वर्ष। सखा=मित्र। सकल=सम्पूर्ण। पुरबौं=भर दो।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से अवतरित है जो 'भ्रमरगीत' से उद्घृत है। कवि ने गोपियों में निहित कृष्ण भक्ति की सच्ची निष्ठा, एक-चित्तवृत्ति तथा दृढ़ संकल्प की अटूट भावना की भूरी-भूरी अभिव्यक्ति की है। यह भी स्पष्ट किया है कि कृष्ण के विरह में गोपियों की कैसी कारुणिक स्थिति है।

व्याख्या – जब उद्धव अपने ज्ञान-योग की बात करते हैं तो गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव ! किसी भी शक्ति की आराधना के लिए स्वस्थ मन की आवश्यकता होती है और मानव केपास एक ही पवित्र मन होता है। हमारे पास भी कोई दस-बीस मन तो हैं नहीं, एक मन था वह भी हमारे कृष्ण के साथ मथुरा चला गया है। हम तो मन रहित हैं। बिना मन के हम आपके निर्गुण-ब्रह्म की आराधना भला कैसे कर सकती हैं ? गोपियाँ अपनी स्थिति का वर्णन करती हुई कहती हैं कि हे उद्धव ! बिना कृष्ण के हम सब प्रकार से कमजोर हो चुकी हैं। बिना सिर के शरीर निष्प्राण और निष्क्रिय हो जाता है, वही हमारी हालत है। इस मृत प्राय: शरीर में हमारे प्राण केवल कृष्ण के आगमन की प्रतिक्षा में अटके हुए हैं। हमारी आशायें करोड़ों वर्षों तक भी कृष्ण के आगमन पर टिकी रहेंगी। हे उद्धव ! तुम तो श्याम सुन्दर के परम मित्र और सम्पूर्ण योग विद्या के स्वामी हो अर्थात् प्रकाण्ड पण्डित हो। अत: तुम हमारा मन हमारे प्रभु कृष्ण जो कि रसिक शिरोमणी हैं, के संदर्भ की बातों के आनन्द से परिपूर्ण कर दीजिये अर्थात् कृष्ण की बातें छेड़कर हम विरहणियों को सुख प्रदान कीजिये और योग साधना की बातें छोड़िये।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में व्यंग्यात्मक भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है, यथा – मन का दस-बीस न होना। सम्पूर्ण योग-साधना के प्रकाण्ड विद्वान। कृष्ण के परम् मित्र आदि।

2. अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

3. रस - वियोग शृंगार, 4. भाषा - ब्रज, 5. शैली - गेयपद

(10)

हमको सपनेहु में सोच।
जा दिन तै, बिछुरे नन्द-नन्दन, यह ता दिन तै पोच॥
मनु गोपाल आये मेरे गृह, हँस कर भुजा गही।
कहा करौ बैरिन भइ निन्द्रा, निमिष न और रही॥
ज्यौं चकई प्रतिबिम्ब देखि कै, आनन्दे पिय जानि।
'सूर' पवन मिस निठुर विधाता, चपल कियो जल आनि॥

शब्दार्थ – सोच=ख्याल। पोच=दु:खी। मनु=मानो। गही=पकड़ना। निमिष=एक पल भी। आनन्दे=प्रसन्न। मिस=बहाने।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से अवतरित है, जिसे 'भ्रमरगीत' से लिया गया है। प्रस्तुत पद में कवि ने गोपियों की विरह व्यथा का मार्मिक चित्रण-प्रस्तुत किया है।

व्याख्या – कवि सूरदास विरह व्यथित गोपियों के शब्दों में कहते हैं कि हमें तो स्वप्न में भी अपने प्रिय कृष्ण की कमी का व्यथापूर्ण अहसास होता है। जब से कृष्ण हमें छोड़कर हमसे दूर गये हैं उसी दिन से हम चिंता के कारण दु:खी हैं। एक गोपी कहती

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

है कि एक दिन स्वप्न में प्रभु कृष्ण मेरे घर पर आये और हँस कर मेरी बाँह पकड़ ली किन्तु मेरे सुखों की शत्रु बैरिन नींद एक पल के लिये नहीं रुकी अर्थात् आँखें खुल गई और स्वप्न में भी प्रियतम का संयोग सुख प्राप्त नहीं कर सकी। इस बात की मुझे बहुत पीडा है। सूरदास कहते हैं कि जिस प्रकार चकवी चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब देखकर प्रिय दर्शन की आशा से आनन्दित हो जाती है किन्तु हवा का तेज झौंका उस शान्त प्रतिबिम्ब को पानी की लहरों के साथ बिखरा देता है जिसके फलस्वरूप चकवी का क्षणिक काल्पनिक आनन्द भी समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार हमारा मन कृष्ण मिलन का सुख स्वप्न में प्राप्त नहीं कर पा रहा है।

विशेष – 1. गोपियों की विरहदशा का वास्तविक और सुन्दर चित्रण किया है।

2. अनुप्रास, उपमा और दृष्टान्त अलंकारों का सुन्दर वर्णन किया है।

(11)

ऊधौ मन माने की बात।
दाख-छुहारा छाँड़ि अमृत-फल-विष कीरा विष खात॥
जो चकोर को देइ कपूर कोउ, तजि अंगार अघात॥
मधुप करत घर कोरि काठ मैं बँधत कमल के पात॥
ज्यौं पतंग हित जानि आपनौ, दीपक सौं लपटात॥
'सूरदास' जाको जासौं हित, सोई ताहि सुहात॥

शब्दार्थ – छाँड़ि=छोड़ कर। कीरा=कीड़ा। तज=त्याग कर। अघात=तृप्त होना। मधुप=भौंरा। कोरि=छेद। काठ=लकड़ी। सुहात=अच्छा लगना।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से लिया गया है, यह पद ''भ्रमरगीत'' से अवतरित है। प्रस्तुत पद में कवि ने गोपियों द्वारा निर्गुण की योग साधना का तर्कपूर्वक खण्डन किया है और मन में निहित कृष्ण प्रेम के प्रति समर्पित भावना की सुन्दर प्रस्तुति की है।

व्याख्या – कवि सूरदास गोपियों के शब्दों में कहते हैं कि हे उद्धव ! किसी भी वस्तु को स्वीकार करना या अस्वीकार करना तो मन पर निर्भर करता है। यदि किसी गलत वस्तु से मन को तृप्ति होती है तो वह उसी को प्रेम-पूर्वक ग्रहण करता है, चाहे वह कितनी ही बुरी या नुकसानदायक ही क्यों न हो। गोपियाँ अपने तर्क में कहती हैं कि तुम्हारा उपास्य निर्गुण व निराकार है फिर भी अपना निर्गुण और उसकी योग-साधना तुम्हें रुचिकर लगती हैं और हमारे आराध्य प्रेम की साक्षात मूर्त्ति कृष्ण हैं, हमें वे प्राणों से प्यारे लगते हैं। इस तरह जिसे जो प्रिय लगता है, वह उसे कभी भी नहीं त्याग सकता है। जैसे – विष का कीड़ा (गन्दगी में रहने वाला कीड़ा) किशमिश, बादाम, छुहारे जैसे अमृत-तुल्य फलों को कभी भी स्वीकार नहीं करेगा और उसे गन्दगी ही प्रिय लगेगी। इसी प्रकार चकोर पक्षी को शीतल कपूर खिलाना चाहें तो वह उसे त्यागकर प्राण-घातक अंगारों का भक्षण स्वीकार करेगा। भौंरा कठोर लकड़ी में छेद करके उसमें अपना आवास बनाता है, किन्तु वह सूर्यास्त पर्यन्त भी कमल पत्रों पर प्रेमासक्त रहता है और उसी कमल के प्रेम पत्र कोष में रात भर अपने आपको बन्दी बनाये रखना पसन्द करता है। इसी प्रकार पतंगा भी दीपक की लौ से बेपनाह मुहब्बत (प्रेम) कर उसी में अपने प्राणोत्सर्ग कर देता है, अत: हे उद्धव ! जिस मन को जो भाये वह उसी का हो जाता है। हमें हमारे कृष्ण प्रिय हैं तो हम अपने कृष्णानुराग में ही समर्पित हैं। अत: हम अपनी रुचि के अनुसार सगुण से ही प्रेम करती रहेंगी।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कवि ने गोपियों की प्रेमासक्ति और एक निष्ठा की सुन्दर अभिव्यक्ति की है।

2. पद में अनुप्रास, दृष्टान्त और उपमा अलंकारों के साथ निदर्शना का प्रभावशाली प्रयोग किया है।

3. भाषा सरल, सरस और गेय है।, 4. रस - विप्रलंभ शृंगार

(12)

संदेसों देवकी सों कहियो।
हौं तो धाय तिहारे सुत की, कृपा करत ही रहियो॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उबटन तेल और तातो जल, देखति ही भजि जाते।
जोई जोई माँगत सोई सोई देती, धरम कर्म के नाते।।
तुम तौ टेव जानत हैं हौ, तऊ मोई कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लडैतेहिं, माखन रोटी भावै।।
अब वह 'सूर' मोहि निसि बासर, बडौ रहत जिय सोचि।
अब मेरे अलक लडैते लालन, ह्वै करत है संकोचि।।

शब्दार्थ – संदेशों=संदेश। हौं तो=मैं तो। धाय=धाय माँ। तातो जल=गर्म पानी। टेव=आदत। तऊ=तथापि। भावै=पसन्द। निसि-वासर=रात-दिन।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से लिया गया है, यह पद 'भ्रमरगीत' से अवतरित है। इस पद में माता यशोदा की अविलक्षित ममता को अभिव्यंजित किया है जिसमें मातृहृदय की पावन वत्सलता स्पष्ट होती है।

व्याख्या – सूरदास के प्रभु तो स्वयं सृष्टिकर्त्ता ''श्री हरि विष्णु'' के प्रमुख अवतार थे देवकी-वसुदेव, यशोदा-नन्द आदि तो उनकी परम अलौकिक लीलाओं के महत्त्वपूर्ण किरदार या पात्र थे। उन्हीं लीलाओं में श्रीकृष्ण वृंदावन से मथुरा को प्रस्थान करते हैं। किन्तु माता यशोदा तो कृष्ण के ममत्वपूर्ण प्रेम में सरोबोर हो चुकी थी। यद्यपि कृष्ण के वात्सल्य पर इनका कितना हक था, यह यशोदा माता भली-प्रकार से जानती थी, तथापि कृष्ण की अनूठी चुलबुली बाल लीलाओं और चिरकालीन आनन्ददायी सामीप्य ने माँ यशोदा के मातृहृदय और कृष्ण के पुत्रत्व को एकीकार कर दिया था। मातृ स्पंदन की इसी अभिव्यक्ति को कृष्ण भक्त सूरदास ने यशोदा द्वारा भेजे गये देवकी को संदेश के रूप में प्रकट किया है।

माता यशोदा कहती हैं कि हे उद्धव ! तुम देवकी से मेरा यह संदेश कहना कि यद्यपि मैं तुम्हारे पुत्र कृष्ण की धाय माँ (पालन करने वाली) हूँ तथापि मुझ पर सदैव अपनी कृपा बनाए रखना। अब मेरा प्यारा कान्हा तुम्हारे पास है, इसलिये तुम इसकी देखभाल अच्छी प्रकार से करना। बालक कृष्ण उबटन, तेल और गर्म पानी को देखकर भाग जाता है और नहाने में आनाकानी करता है। मैं उसे स्नान के लिये प्रतिदिन बड़ी मुश्किल से तैयार करती थी। नहाने के लिये यह जो भी वस्तु की जिद करता था मैं उसे पूरी करती थी और सभी इच्छाएँ पूरी करके क्रम से इसे स्नान कराती थी। अब तुम भी कन्हैया के स्वभाव से परिचित हो गई होंगी फिर भी मेरा मन इसकी आदतों को बताये बिना नहीं मानता है। प्रातःकाल उठते ही कान्हा को मक्खन रोटी बहुत अच्छी लगती है। माँ यशोदा संदेश में कहती हैं कि हे उद्धव ! मुझे रात-दिन यही चिन्ता लगी रहती है कि मेरे लाड़ले कान्हा को ये सभी इच्छित वस्तुओं को माँगने में संकोच होता होगा अर्थात् वह चाहकर भी देवकी से अपनी मनचाही वस्तु नहीं माँग पाता होगा। इसलिये तुम देवकी से कहना कि कृष्ण को लाड-प्यार से रखें और उसकी हर इच्छा पूरी करें।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में सूरदास ने मातृ हृदय का बहुत ही प्राकृतिक और स्वाभाविक वर्णन किया है।
2. कृष्ण की आदतों को प्रकट करते हुए यशोदा ने अपने मातृहृदय की विवशता भी दर्शाई है।
3. प्रस्तुत पद में अनुप्रास, यमक, वीप्सा और काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
4. भाषा में सरसता, सादगी और गेयता के गुण हैं।

(13)

दिन दस घोष चलहुँ गोपाल।
गायन की अवसेरी मिटावहुँ, मिलहुँ आपने ग्वाल।।
नाचत नहीं मोर ता दिन तै, रटत न बरखा काल।
मृग दुबरे तुम्हरे दरस बिनु, सुनत न बेनु रसाल।।
वृन्दावन हर्‌यो होत न भावत, देख्यो स्याम तमाल।
'सूरदास' मैया अनाथ हैं, घर चलिये गोपाल।।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – घोष=ग्वालों की बस्ती। अवसेरी=आकुलता। मृग=हिरण। दुबरे=दुबले। बेनु=बांसुरी। भावत=प्रिय।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से लिया गया है, जो ''वियोग-वर्णन'' शीर्षक से सम्बंधित है। प्रस्तुत पद में कवि ने स्पष्ट किया है कि जब उद्धव वृन्दावन से मथुरा लौटते हैं तो वे स्वयं श्रीकृष्ण को ब्रजवासियों की विरह व्याकुलता बताए बिना नहीं रह पाते हैं, इसी संदर्भ में –

व्याख्या – सूरदास के अनुसार उद्धव कृष्ण से विनती करते हुए कहते हैं के हे ब्रजनाथ! आप कुछ समय के लिये ग्वालों की बस्ती वृन्दावन चलिये और वहाँ पहुँचकर गायों की आकुलता को दूर कीजिये। वे सभी गायें आपके दर्शनों के बिना इतनी व्याकुल और अधीर हैं कि मैं वर्णन नहीं कर सकता हूँ। हे गोपाल! जब से आपने ब्रजभूमि को छोड़ा है, उसी दिन से वहाँ पर अश्रुधाराओं की वर्षा सी आ गई है, फिर भी मोरों ने नृत्य करना बन्द कर रखा है। वे सदैव ब्रजविहारी के दर्शनों के बिना उदास रहते हैं। हे ब्रज नन्दन! आपके बिना वहाँ के स्वच्छन्द भ्रमण करने वाले मृग भी उदास रहते हैं और दुर्बल हो गये हैं। हे गोपीनाथ! उनको आपकी मुरली के स्वर सुनाई नहीं दे रहे हैं। हे तमाल के समान श्याम शरीर धारण करने वाले श्यामसुन्दर! सम्पूर्ण ब्रज आपकी प्रतिक्षा कर रहा है, आप वृन्दावन को अपने प्रिय दर्शन देकर अनुगृहीत कीजिये। सूरदास कहते हैं कि उद्धव ने श्रीकृष्ण से कहा कि हे यशोदा नन्दन, कुञ्जविहारी। आप माता यशोदा के घर को पुन: सुशोभित कीजिये, वे आपके बिना अनाथ की भाँति हो गई हैं। अर्थात् एक बार आप ब्रज में पुन: चले जाइये।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में ब्रजभूमि और ब्रजवासियों की विरहव्यथा की मार्मिकता को स्पष्ट करते हुए किया है। इन सबका पुष्टिमार्ग में अच्छा महत्त्व है।

2. अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(14)

ऊधौ! मोहि ब्रज बिसरति नाहीं।
हंस-सुता की सुन्दर कगरी, अरु कुञ्जन की छाहीं॥
वे सुरभी, वे बच्छ दोहिनी, खरिक दुहावनि जाहीं।
ग्वाल-बाल मिलि करत कुलाहल, नाचत गहि-गहि बाहिं॥
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुक्ताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उगमत तनु नाहीं॥
अनगन भाँति करी बहु लीला, यशुदा-नन्द निबाही।
'सूरदास' प्रभु रहे मौन हैं, यह कहि कहि पछताही॥

शब्दार्थ – बिसरत=भुलाया। हंससुता=यमुना। कगरी=किनारा। नगरी=नगर। सुरभी=गैया। बच्छ=बछिया। खरिक=बाड़ा। कुलाहल=शोर। सुरति=याद। निबाही=निर्वाह किया।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से लिया गया है, जिसका सम्बंध ''वियोग-श्रृंगार'' वर्णन से है। कवि ने त्रिलोकेश्वर कृष्ण के मन में ब्रज भूमि के प्रति अनन्य प्रेम भावना का सुन्दर वर्णन किया है। उद्धव के द्वारा ब्रजवासियों का हाल सुनकर तो उनके हृदय के प्रेनोद्गार और अधिक उद्दीप्त हो जाते हैं। इसी संदर्भ में कवि ने सुन्दर अभिव्यक्ति करते हुए –

व्याख्या – उद्धव जैसे प्रेम के कट्टर विरोधी के मुख से जब गोपियों के अनन्य प्रेम और विरह विकलता तथा ब्रज वासियों की स्थिति के समाचार सुने तो कृष्ण भी अपने हृदय में छुपे हुए ब्रज के प्रति प्रेमोद्गारों के वेग को नहीं रोक पाये और उन्होंने कहा – हे उद्धव! मैं भी आज तक ब्रज भूमि को नहीं भुला पाया हूँ। स्वयं कृष्ण ब्रजभूमि और वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हैं कि ब्रज में रम्य यमुना का सुन्दर किनारा और उन किनारों पर अनेक सघन कुञ्जों की सुहानी छाँव का सुख भुलाया नहीं जाता है। वहाँ की सुन्दर गैया, उनके सुन्दर और पुष्ट बछड़े – जब हम दुहनि लेकर गौशाला में गायों को दुहने जाते थे तो वह अत्यंत रमणीक कृत्य था। ग्वाल सखाओं के साथ विविध ध्वनियों के साथ गलबाहें डालकर नाचने गाने के मनमोहक प्रसंग आज भी अपनी मधुर यादों से बेचैन किये हुए हैं। कृष्ण कहते हैं कि यह मथुरा नगर स्वर्णमय महलों और मणिमुक्ताओं से युक्त वैभवपूर्ण है, किन्तु उस सुख का स्मरण आते ही मेरा मन वहाँ पर दौड़कर चले जाने के लिये उतावला हो जाता है किन्तु राजकीय कर्त्तव्य पालन की व्यस्तता हमें वहाँ जाने से रोकती हैं और हम विवश हो जाते हैं। हमने वहाँ पर अनेक प्रेम-क्रीड़ाएँ की थीं, जिन्हें माता यशोदा ने और नन्दबाबा ने प्रेमपूर्वक निभाया था।

सूरदास कहते हैं कि इतना कहकर श्रीकृष्ण अपने पूर्वानुभूत सुखों के लिये पश्चाताप् करते हुए पुरानी स्मृतियों में खो गये और चुप हो गये।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कवि ने स्पष्ट किया है कि ब्रजवासियों में कृष्ण के प्रति जितना अनुराग था, कृष्ण के मन में भी वहाँ के प्रति प्रेम कम नहीं था। कृष्ण की विवशता थी, वे राजकार्य में व्यस्त हो गये थे।

2. कवि रत्नाकर ने भी कृष्ण की प्रेम व्यथा का कुछ इसी प्रकार वर्णन किया है –

''उद्धव ! बृज-वास के विलासनि को जब ध्यान धर्यौ,
निसि-दिन काँटे लौ करेजै कसक हैं।''

3. पद में लुप्तोपमा, काव्यलिंग, अनुप्रास और स्मरण अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है।

4. भाषा सरस और कर्णप्रिय है।

(15)

रुकमिनि राधा ऐसे भेंटी।
जैसे बहुत दिननि की बिछुरी, एक बाप की बेटी॥
एक सुभाय एक वय दोऊ, दोऊ हरि कौ प्यारी।
एक प्राण मन एक दुहनि कौ, तन करि दीसति न्यारी॥
निज मन्दिर ले गई रुकमनि, पहु नाई विधि ठानी।
'सुरदास' प्रभु तँह पग धारे, जहें दोऊठकुरानी॥

शब्दार्थ – भेंटी=मिलीं। बाप=पिता। वय=अवस्था। दुहुनि को=दोनों का। दीसति=दिखाई देती हैं। न्यारी=पृथक्। निज=अपने। मन्दिर=भवन। पहुनाई=आतिथ्य सत्कार। ठकुरानी=स्वामिनी।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'सूरदास' नामक पाठ से अवतरित है, जिसमें राधा-रुकमणी के मधुर मिलन को वर्णित किया है।

व्याख्या – कवि सूरदास राधा और रुकमणी के मधुर मिलन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जब वे पहली बार एक-दूसरे से मिलीं तो उनका मिलन इतना स्वाभाविक और प्रियदर्शी था कि मानों वे दोनों एक ही पिता की संतान हों, अर्थात् सगी बहनें हों। रुकमणी ने राधा की प्रथम भेंट पर उन्हें आलिंगनबद्ध कर स्वागत्-सत्कार किया। उनमें अनेक समानताएँ दिखाई दे रही थीं, यथा एक जैसा स्वभाव, एक जैसी उम्र आदि। वे दोनों ही कृष्ण को अति प्रिय थीं। यद्यपि दोनों के शरीर पृथक् थे किन्तु आत्मा से वे दोनों एक ही थीं। रुकमणी उस समय राधा को प्रेम-पूर्वक अपने महल में ले गई और राजशाही ढंग से उनका आतिथ्य किया। सूरदास कहते हैं कि, जहाँ पर वे दोनों रानियाँ अर्थात् राधा और रुकमणी थीं वहाँ पर श्रीकृष्ण भी दोनों से मिलने के लिये पहुँच गये।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में दोनों रानियों के सच्चरित्र और उनकी समानता का सुन्दर वर्णन है।

2. उत्प्रेक्षा, अनुप्रास और उदाहरण अलंकार का सुन्दर प्रयोग पद में किया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

5.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

5.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. ''हमारे हरि हारिल की लकड़ी'' गोपियों ने कृष्ण को ''हारिल की लकड़ी'' क्यों कहा है ?

उत्तर – हारिल पक्षी के लिये उसके पंजों में जकड़ी हुई लकड़ी ही एकमात्र सहारा होती है, उसी प्रकार गोपियों ने मनरुपी पंजों में कृष्ण प्रेम रूपी लकड़ी को जकड़कर उसे ही अपने जीवन का सहारा मान लिया था।

प्रश्न-2. सूरदास ने अपने मन की तुलना जहाज के पक्षी से किस प्रकार और क्यों की है ?

उत्तर – जिस प्रकार असीम सागर के बीचों-बीच चलने वाले जहाज पर बैठे पक्षी को दूरदराज तक कहीं भी अन्य सहारा दिखाई नहीं देता है और लौटकर उसी जहाज पर आकर बैठ जाता है, उसी प्रकार सूरदास का मन रूपी पक्षी भी कृष्ण भक्ति रूपी जहाज पर ही अपना आसरा मानता है, उसे संसार रूपी विशाल समुद्र में कहीं भी अन्य सहारा दिखाई नहीं देता है।

प्रश्न-3. ''अबकै राखि लेहुँ भगवान्'' इस पद में सूरदास ने भक्त और भगवान् की कौन-सी विशेषता को दर्शाया है ?

उत्तर – प्रस्तुत पद में भक्त की विवशता और आराध्य पर विश्वास तथा भगवान् का भक्त वत्सल रूप प्रकट किया है।

प्रश्न-4. सूरदास कौन-से सम्प्रदाय में दीक्षित थे ?

उत्तर – सूरदास वल्लभ सम्प्रदाय ''पुष्टिमार्ग'' से दीक्षित थे।

प्रश्न-5. ''प्रीति करि काहू सुख न लह्यो'' गोपियों ने प्रेम को कष्टजनित क्यों बताया है ?

उत्तर – गोपियों के अनुसार प्रेम सदैव पीड़ादायी रहा है। इसमें अनेक कष्टों को सहन करना पड़ता है और प्रेमी की निष्ठुरता सदैव कष्टजनित होती है।

प्रश्न-6. ''भ्रमरगीत'' क्या है ?

उत्तर – भ्रमर के उपालम्भ से उद्धव-गोपियों के संवाद् को 'भ्रमरगीत' का नाम दिया गया है।

(ऐसा मानते हैं कि स्त्रियाँ सदैव अपनी मान-मर्यादाओं के दायरे में रहकर अपनी जीवनचर्या का निर्वाह करती रही हैं। अपने से ज्येष्ठ पुरुष से सीधे या आँखें मिलाकर वार्तालाप नहीं करती हैं, वे किसी को भी माध्यम बनाकर, उस पर ढाल कर ही बात करना अधिक मर्यादित मानती हैं। उद्धव प्रसंग में गोपियों ने भँवरे को अपनी वार्तालाप का माध्यम माना है। सूरदास के पदों में कई स्थलों पर उद्धव को गोपियों ने 'मधुप' या 'मधुकर' शब्द से सम्बोधित किया है।)

प्रश्न-7. सूरदास की भक्ति-भावना किस प्रकार की रही है ?

उत्तर – सूरदास ने सगुण भक्तिधारा को अपनाया है, इनके आराध्य श्रीकृष्ण रहे हैं और इनकी भक्ति 'सखा भाव' की है।

प्रश्न-8. सूरदास ने 'भ्रमरगीत' का कथानक कहाँ से लिया है ?

उत्तर – सूरदास के 'भ्रमरगीत' का कथानक 'भागवत्पुराण' से लिया गया है।

प्रश्न-9. सूरदास के काव्य की महानतम विशेषता कौन-सी है ?

उत्तर – सूरदास के काव्य में वात्सल्य रस की प्रधानता है और पुष्टिमार्गीय सगुण भक्ति का निरुपण विशेषता के रूप में है।

प्रश्न-10. ''तातै सूर सगुण-पद गावै'' सूरदास ने सगुणभक्ति के पदों का गान क्यों स्वीकार किया है ?

उत्तर – निर्गुण ब्रह्म निराकार, अगम, अगोचर और अवर्णनीय है। उसकी भक्ति का मार्ग ज्ञान व योग-साधना है जो बहुत ही कठिन है। सूरदास की भक्ति सगुण और प्रेम से पगी हुई है। इसे स्थिर मन से साधा जा सकता है, इसी कारण सूरदास ने सगुण पदों को स्वीकार किया है।

प्रश्न-11. ''जितै पथिक पठये मधुवन को, बहुरि न सोध करै।'' गोपियों के अनुसार उनके संदेशवाहक मथुरा से क्यों नहीं लौटते हैं ?

उत्तर – गोपियों के मतानुसार सभी संदेशवाहकों को कृष्ण द्वारा समझा-बुझाकर अथवा सिखाकर वहीं पर रोक लिया जाता है। अथवा संदेश वाहक रास्ते में ही मर जाते हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रश्न-12. ''उद्धव ! जोग जोग हम नाहीं'' गोपियों ने स्वयं को योग के अयोग्य क्यों बताया है ?

उत्तर – गोपियाँ कहती हैं कि हम अबलाएँ हैं, हममें योग-साधना की क्षमता नहीं है। वे ज्ञान के गूढ़ रहस्य को नहीं समझती हैं। वे अपने आपको अज्ञान कहकर अयोग्यता दर्शाती हैं।

प्रश्न-13. ''संदेसों देवकी सौ कहियों'' पंक्ति में यशोदा का कौन-सा भाव दर्शाया है ?

उत्तर – यशोदा के सहज वात्सल्य और स्नेह-भाव की अभिव्यक्ति इस पद में की गई है।

प्रश्न-14. कृष्ण के मथुरा गमन पर ब्रज के पशु-पक्षियों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

उत्तर – कृष्ण के जाने के बाद ब्रज की गायों ने उदास रहना प्रारम्भ कर दिया, मृग दुर्बल हो गये, मोरों ने नाचना बन्द कर दिया और सभी ब्रजवासी कृष्ण दर्शन के लिये अकुलाने लग गये।

प्रश्न-15. गोपियों के द्वारा निर्गुण के संदर्भ में पूछे गये प्रश्नों के बाद उद्धव निरुत्तर क्यों हो गये थे ?

उत्तर – गोपियों ने जितने भी प्रश्न उद्धव से पूछे थे उनका निर्गुण से कोई सम्बन्ध नहीं था इसीलिये उद्धव उन प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ थे।

5.2.2 लघुत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. कृष्ण भक्ति के ''सगुण-रूप'' में सूरदास के महत्त्व का प्रतिपादन कीजिये।

उत्तर – सूरदास को सगुण भक्तिधारा का महत्त्वपूर्ण कवि माना गया है। भक्तियुग के कवियों में 'सूरदास' अग्रगण्य रहे हैं। कृष्ण भक्ति क्षेत्र के तो ये शिरोमणी माने गये हैं। यद्यपि भारत में भागवत धर्म का प्रचार अति प्राचीन है तथापि निम्बार्क, बल्लभ और चैतन्य सम्प्रदाय से इस धर्म को पर्याप्त प्रोत्साहन और बल मिला है और कृष्णभक्ति आन्दोलन को प्रेरणा भी मिली है। 'अष्टछाप' के सभी कवियों ने कृष्णभक्ति काव्य-धारा का पर्याप्त प्रचार-प्रसार किया। सूरदास इन सभी कवियों में प्रतिनिधि कवि माने गये है। इस शाखा के कवियों ने कृष्ण को अपना आराध्य मानकर इनके रूप सौन्दर्य और लीलाओं का गुणगान किया है। कृष्ण भक्त कवियों में प्रायः कृष्ण के लोकरंजक रूप का ही चित्रण किया है। शृंगार रस और वात्सल्य का प्रयोग इस काव्य में बेजोड़ रहा है। अनुराग और रूपासक्ति की प्रधानता होते हुए भी नवधा भक्ति का सुन्दर समावेश है। इस शाखा के सभी कवियों में सूरदास का विशेष महत्त्व माना गया है, क्योंकि उन्होने शृंगाररस, वात्सल्य रस के साथ भक्तिभावना और सगुण उपासना का सुन्दर वर्णन अपने काव्यों में किया है। सूरदास ने योगसाधना की अपेक्षा प्रेमासक्ति को अधिक श्रेष्ठ बताया है।

प्रश्न-2. सूरदास द्वारा रचित 'विनय के पद' अपने आपमें बहुत-सी विशेषताओं के पुञ्ज माने गये हैं। स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – भक्तिभावना और विनम्रता जितनी सूरदास द्वारा विरचित 'विनय केपद' में विद्यमान है उतनी भक्तियुग के किसी भी कवि के काव्य में नहीं मिलेगी। भक्तियुगीन इतिहास के विशाल अंतरिक्ष में सूरदास को देदीप्यमान सूर्य की संज्ञा दी है। इन्होंने अपने आराध्य कृष्ण में ही अपना मन रमाने की बात कहकर अनन्य भक्तिभावना और समर्पण, निष्ठा की भावना का वर्णन अपनी रचनाओं में कर दिया है। स्वयं को सांसारिक आसक्तियों एवं दोषों से युक्त बताकर अपने आराध्य से उद्धार की प्रबल कामना व्यक्तकी है।सूरदास ने संसार की असारता, माया का प्रभुत्व, भक्ति की दीनता, कुसंगति के कुप्रभाव आदि को स्पष्ट करते हुए सगुण भक्तिभावना का समर्थन किया है। इनकी भक्तिभावना ''सखा भाव'' की रही है इसीलिये उनकी रचनाओं में कई स्थलों पर मुँह लगे सेवक की जैसी अक्खड़ता दिखाई दे जाती है।

5.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. सूरदास की काव्यगत विशेषताओं को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – भक्तिकालीन सगुण धारा की कृष्ण भक्ति शाखा के अग्रगण्य कवि सूरदास का हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अत्यंत सम्माननीय और महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। वल्लभ सम्प्रदाय के पुष्टिमार्गीय दीक्षित गायक कवि का अग्रणी स्थान माना गया है। भले ही सूरदास को जन्मांध माना गया है किन्तु इस बात में भी संदेह नहीं है कि ये प्रज्ञाचक्षु और प्रतिभाशाली व्यक्तित्व के धनी भी थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य बनने से पूर्व इन्होंने विनय तथा दास्य भाव पर आधारित रचनाएँ की थीं किन्तु तत्पश्चात् सखा-भाव

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

की भक्ति-भावना अपनाकर अपने आराध्य की लीलाओं का मधुर गुणगान किया। इनके द्वारा रचित ग्रंथों की संख्या पच्चीस मानी जाती है किन्तु 'सूरसागर', 'सूर सारावली' और 'साहित्य लहरी' आदि ही प्रमुख हैं।

प्रत्यक्ष के प्रति अनासक्ति और परोक्ष के प्रति अनुराग ही सूरदास का विवेच्य रहा है। यद्यपि इन्होंने स्वयं के संदर्भ में कुछ भी नहीं लिखा है किन्तु इनके पदों में अन्त:साक्ष्य की कुछ बातों से पता चलता है कि ये चन्दबरदाई के वंश से सम्बन्ध रखते थे। नाभादास और गोकुलदास ने सूरदास को सारस्वत ब्राह्मण बताया। इनके पिता का नाम रामदास था। कुछ तथ्य इनकी रचना 'साहित्य-लहरी' के अन्त में दिये गये पदों से प्राप्त हुए हैं। इतिहास लेखक इनका जन्म 1540 के लगभग मानते हैं। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार इनका जन्म मथुरा-आगरा मार्ग पर 'गऊघाट' के पास 'रुनकता' में हुआ है। आधुनिक इतिहास लेखक और पुष्टिमार्गीय विद्वान् 'हरिराय' दिल्ली से चार कोस दूर 'सीही' नामक गाँव में इनका जन्मस्थल मानते हैं।

वल्लभाचार्य के सुपुत्र स्वामी विठ्ठलनाथ द्वारा गठित ''अष्टछाप'' के प्रमुख कवि सूरदास के पदों का विशाल संग्रह 'सूरसागर' के नाम से प्रकाशित हुआ। ''सूर सारावली'', ''साहित्य लहरी'', ''नल दमयन्ती'', ''ब्याहलो'' और ''नागलीला'' आदि ग्रंथ भी सूरदास के माने जाते हैं। ''सूरसागर'' की रचना भागवत पुराण के आधार पर हुई है और ''साहित्य-लहरी'' दृष्टकूट पदों का संग्रह है।

काव्यगत विशेषताएँ –

पदों की रचना में सूरदास को अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई है। कृष्ण के लोकरंजन रूप को काव्य का आधार बनाकर मुक्तक काव्य की रचना करना सूरदास का अभीष्ट नहीं था किन्तु इन्होंने कृष्ण के अनेक रूपों, अनेक लीलाओं का वर्णन किया है और कृष्ण की कथा कभी भी प्रबन्धोपयोगी नहीं हो सकती है। 'सूरसागर' में भागवत के लगभग सभी स्कंधों का वर्णन है, किन्तु दशम स्कंध में वर्णित कृष्ण की बाल लीलाओं और यौवन क्रीड़ाओं को सूर ने अपने काव्य का विवेच्य माना है। विनय, बाल-वर्णन एवं भ्रमरगीत – तीनों विभागों में सूर का कृतित्व और व्यक्तित्व उभर कर सामने आया है। जन्मान्ध होते हुए भी इन्होंने कृष्ण के रूप सौन्दर्य के साथ प्रकृति चित्रण की जो बारीकियाँ अपनी कलम की पैनी नोंक में समेटी हैं, उन बारीकियों को सहस्त्र चक्षुओं द्वारा भी देखकर वर्णित नहीं किया जा सकता है।

सूरदास के काव्य की प्रमुख विशेषताओं का मूल्यांकन वर्ण्य विषयों के आधार पर कुछ सहजता के साथ किया जा सकता है –

1. विनय, दास्य एवं आत्म समर्पण के पद।
2. कृष्ण की माधुर्य भक्ति भावना।
3. कृष्ण की बाल लीला और प्रेम प्रसंग।
4. राधा-कृष्ण का प्रेम-प्रसंग।
5. कूट-पद, रस-निरूपण, नायिका भेद।
6. भ्रमर गीत के मार्मिक और जटिल प्रसंग।

वस्तुत: सूरदास का काव्य अनेक विशेषताओं से युक्त है जिसे कई विद्वानों ने अपने-अपने प्रकार से वर्णित किया है। यहाँ उनकी काव्यगत विशेषताओं को संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है –

1. वात्सल्य रस का निरुपण – वात्सल्य रस के कवियों में सूरदास का स्थान महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इनके काव्य में श्रीकृष्ण के प्रारम्भिक रूप की सम्पूर्ण स्थितियों का मन-मोहक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। बाल स्वभाव में बाल चापल्य, बाल-मनोवृत्ति, बालहठ, बालचेष्टा आदि के वर्णन पर्याप्त प्रभावशाली रहे हैं। इनके बाल वर्णन में बालोचित क्रिया-कलाप, वेशभूषा, वार्तालाप, चातुर्य, मातृहृदय की व्यंजना आदि प्रमुख हैं।

यथा –

''चरण गहे अँगूठा मुख मेलत।
नन्द धरनि गावति हलरावति, पलना पर किलकति हरि खेलत।
''जो चरणारविन्द श्रीभूषण उरते नेकु न टारति।
देखौं धौं का रस चरनन मुख मेलत करि आरति।।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलरावै मल्हावै, जोइ सोई कछु गावै॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहै न आनि सुलावै॥
तू काहे नहिं बेगि सी आवे, तोको कान्ह बुलावै॥

प्रस्तुत पदों में सूरदास ने बालक कृष्ण की क्रीड़ाओं का मनोरम दृश्य प्रस्तुत किया है।

''मैया मैं तो चन्द खिलौना लेहौं।
जैहौं लोटि धरनि पर अबहिं, तेरी गोद न अइहौं॥
सुरभि को पय पान न करिहौं, बैनी सिर न गुथैहौं।
हैं हो पूत नन्द बाबा को, तेरो सुत न कहै हौं॥''

बाल हठ के सौन्दर्य को कवि सूरदास ने उपर्युक्त पंक्तियों में मनोरम रूप प्रदान किया है।

''चोरी करत कान्ह धरि पाये।
दोउ भुज पकरि कह्यौ कहँ जैहों, माखत लेउ मँगाई।
तेरी सौ मैं नेकु न खायौ, सखा गये सब खाई।''

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने कृष्ण की बाललीला का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है।

''मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायौ।
मोसौं कहत मोल को लीन्हों, तोहि जसुमति कब जायौ।''

''मैया बहुत बुरौ बलदाऊ।
कहन लग्यो बन बड़ौ तमासौ, सब मौड़ा मिलिआऊ॥
मोहू को पुचकारि गयो लै, जहाँ सघन बन झाऊ।
भाग चलौ कहि गयौ उहाँ तैं, काटि खाउ रे हाऊ॥''

''मैया मैं न चरैहों गाई।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौ, मेरे पाईं पिराई।''
''खेलन अब मेरी जात बलैया।
जबहिं मोहि देखत लरिकन संग, तबहिं खिझत बल भैया।''

आदि पदों में जिस ढंग से कवि सूरदास से कृष्ण की बाल क्रीड़ाओं का जीवन्त प्रस्तुतीकरण दिया है, यह उनके वात्सल्य रस का एक विशिष्ट गुण है जो सूर के काव्य-सौन्दर्य का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

इस प्रकार बाल स्वभाव की जिज्ञासा, चंचलपन, नटखटपन, स्पर्धा, ईर्ष्या आदि मनोवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण कवि ने सहज भाव से किया है। उन्होंने कृष्ण की कौतुहलपूर्ण गतिविधियाँ, जिज्ञासा, उच्छृंखलता, चतुराई जैसी मनोवृत्तियों के क्रमिक विकास को बहुत ही अच्छे तरीके से वर्णित किया है।

वात्सल्य रस में भी संयोग और वियोग दोनों ही पक्ष होते हैं। वियोग वात्सल्य के भी तीन भेद माने गये हैं –प्रवास गमन, प्रवास स्थिति, प्रवास आगमन। सूरदास के काव्य में वात्सल्य रस के ये तीनों ही भेद मिल जाते हैं। प्रवास में स्थित वियोग वात्सल्य के अन्तर्गत –

''संदेशों देवकी सौं कहयो।
हौ तो धाय तिहारे सुत की, कृपा करत ही रहियौं॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उबटन तेल और तातौ जल, देखति ही भजि जाते।
जोई-जोइ मांगत सोइ सोइ देती, धरम करम के नाते॥''

2. संयोग शृंगार का चित्रण – शृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का जितना अनुभूतिपूर्ण उद्घाटन सूरदास ने अपनी रचनाओं में किया है, उतना किसी अन्य कवि की रचनाओं में नहीं मिलता है। वात्सल्य के समान ही शृंगार रस के चित्रण में सूरदास का काव्य पर्याप्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। सूरदास के प्रेम की उत्पत्ति में रूप लिप्सा एवं साहचर्य दोनों का ही योग है। बाल-क्रीड़ा के सखा और सखी, यौवन का आविर्भाव होने पर प्रेमी-प्रेमिका बन जाते हैं। राधा तथा अन्य गोपियों का कृष्ण के प्रति ऐसा ही प्रेम प्रदर्शित हुआ है। सूरदास के संयोग शृंगार का वर्णन क्षणिक नहीं है अपितु वह तो जीवन की निरन्तर प्रवाहित होने वाली धारा के समान है। जब किशोर-वय कृष्ण अपने घर से खेलने के लिये निकले ही थे कि उन्होंने राधा को देख लिया। दोनों के नयन मिले और वह मिलन प्रेमोद्गम में बदल गया –

''खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी।
औचक ही देखी तहँ राधा, नैन विसाल भाल दिये रोरी।
सूर स्याम देखति ही रीझे, नैन-नैन मिलि परी ठगौरी॥''

तत्पश्चात् राधा को कृष्ण ने अपनी प्रेम भरी बातों में उलझा लिया –

''बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति काकी तू बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी॥
काहे कौ हम ब्रज तन आवति, खेलत रहत आपनी पौरी।
सुनत रहति सवननि नन्द ढोटा, करत फिरत माखन-दधि चोरी।
तेरो कहा चोरि हम लैहैं, खेलन चलौ संग मिलि जोरी॥
'सूरदास' प्रभु रसिक सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी॥

सूरदास ने राधा और गोपियो के प्रसंग में संयोग-शृंगार के अनेक मनोरम चित्रों की अवतारणा की है। ब्रज में रहते हुए कृष्ण की आपसी छेड़-छाड़ करना। माता-यशोदा से राधा का परिचय कराना। पनघट पर गोपियों की मटकियाँ फोड़ना, यमुना घाट पर स्नान कर रहीं गोपियों के वस्त्रों की चोरी, गोचारन के समय चुहल करना, ग्वाल साथियों के साथ गोपियों के घर में घुसकर माखन चोरी करना आदि चित्रांकन अत्यन्त हृदयग्राही एवं स्वाभाविक हैं –

कृष्ण संध्या के समय किसी भी गोपी के घर में उस समय घुस जाते जब वह गैया का दूध दुह रही होती या दुहने की तैयारी कर रही होती थी। उससे दूध दुहने के लिए स्वयं का प्रस्ताव रखते हैं –

''तुम पै कौन दुहावै गैया।
इत चितवत, उत धार चलावत, यही सिखायो है भैया।''
''करिल्यौ न्यारी आपनी गैया।
नाहिं बसात लाल कछु तुमसों, सबै ग्याल इक ठैया।''

3. वियोग शृंगार – वियोग शृंगार की व्यापकता सूरदास के काव्य की एक विशेषता मानी गई है। श्रीकृष्ण का स्मरण, उनका गुणगान उद्वेग, उन्माद आदि सभी स्थितियों का मार्मिक चित्रण सूर के काव्यों में देखने को मिलता है। इनके वियोग वर्णन का प्रारम्भ वात्सल्य से होता है। नवजात शिशु का वसुदेव और देवकी से बिछुड़ना, मथुरा जाते समय यशोदा और नन्द बाबा से बिछुड़ना आदि का वर्णन बहुत सुन्दर ढ़ंग से किया है।

मथुरा गमन के समय गोपियों पर तो एक प्रकार से वज्रपात ही हो जाता है किन्तु समय की प्रतिक्षा में अपने आपको समझाती हैं और धैर्य रखती हैं। काफी लम्बी प्रतिक्षा के बाद भी जब कृष्ण नहीं आते हैं तो उनके धैर्य की सीमा टूट जाती है और विरहाग्नि में जलने लगती हैं। सूरदास ने गोपियों की विरह व्यथा को मार्मिक प्रस्तुति देकर काव्य के महत्त्व को अद्वितीय महत्त्व प्रदान किया है। गोपियों के मानस में कृष्ण के साथ बिताये सभी क्षण पूर्ववत स्मृति रूप में सजग हो उठते हैं –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''एहिं बेरियाँ बन ते ब्रज आवते।
दूरहिंते वह बेनु अधर धर, बारम्बार बजावते॥''

कृष्ण के साथ रहकर जो-जो वस्तुएँ सुखदायी लगती रहीं वे सभी अब उनके बिना दुःख की प्रतीति देने लगती हैं।

''बिनु गोपाल बैरिन भइ कुँजैं।
तब ये लता लगति अति सीतल, अब भइ विषम ज्वाल की पुञ्जै॥
वृथा बहति यमुना, खग बोलत, वृथा कमल फूलैं अलि गुंजै।
पवन, पानि, घनसार, संजीवनि, दधिसुत किरन भानु भई भुंजै॥''

कृष्ण के विरह में गोपियाँ जब दुःखी रहती हैं तो उन्हें प्रकृति का रूप भी परेशान करने लगता है और वे उनसे भी ईर्ष्या भाव रखने लगती हैं। हरा-भरा मधुवन उन्हें नहीं सुहाता है। गोपियाँ कहती हैं कि –

''मधुवन ! तुम कत रहत हरे ?
बिरह बियोग स्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे॥''

चाँदनी रात उन्हें नागिन जैसी लगने लगती हैं –

''पिया बिन साँपिन कारी रात।
कबहु जामिनी होत जुन्हैया इस उलटी है जाति।''

उनके नेत्रों से दिन-रात अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती है –

''निसि दिन बरसत नयन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु हम पर जब से स्याम सिधारे॥''

कृष्ण के विरह में बादल भी उन्हें भयानक लगते हैं –

''देखियत चहुँ दिसि घन घोरे।
मानो मत्त मदन के हथियन बाल करि बन्धन तोरे॥''

चातकों की पीड़ा सुनकर दूर देश से बादल भी आ गये किन्तु गोपियों की विरहाग्नि को शान्त करने वाले घनश्याम अभी तकनहीं आये –

''बरु ये बादराऊ बरसन आये।
सुनियत हैं सुरलोक बसत सखि, सेवक दास पराये।
चातक कुल की पीर जानि कै, तऊ तहाँ से आये॥''

पपीहा की 'पिऊ-पिऊ' गोपियों को बहुत ही अधिक कष्टदायक लगती है –

''हौ तो मोहन के विरह जरी, रे तू कत जारत ?
रे पापी तू पंखि पपीहा ! ''पिऊ-पिऊ'' आधी रात पुकारत।''

गोपियाँ सदैव अपने प्रियतम कृष्ण के प्रिय दर्शनों के लिये आकुल रहती हैं –

''अखियाँ हरि दरसन की प्यासी।
देख्यों चहति कमल नैननि को, निसि दिन रहति उदासी।''

गोपियाँ एक पल के लिये भी कृष्ण की मनमोहक छवि और उनके साथ बिताए हुए पलों के सुखानुभव को नहीं भुला पाती हैं –

''ऊधो ! हम हरि कत बिसराये।
एक द्योस वृन्दावन भीतर, कर करि पत्र डसाये॥''

कृष्ण विरह में गोपियों की आँखों से निरन्तर जल वर्षा होती है और आषाढ़ मास के बादल भी उनके आगे अपनी पराजय स्वीकार कर लेते हैं –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''सखी ! इन नैननि से घन हारे।
बिन ही ऋतु बरसत निसि-बासर, सदा सजल दोउ तारे॥''

स्वप्न में भी गोपियों को उनके कृष्ण के आगमन का आभास होने लगता है –

''हमकौ सपनेहुँ में सोच।
जा दिन ते बिछुरे नन्द-नन्दन यह ता दिन से पोच॥
मनु गोपाल आये मेरे घर, हँस कर भुजा गही।
कहा कहौं बैरिन भई निंदिया, निमिष न और रही॥''

सूरदास ने इस विरहाग्नि में गोपियों और ब्रजवासियों को ही जलते हुए अपने काव्य में नहीं दर्शाया बल्कि कृष्ण के मन में भी इस विरह संताप को उद्दीप्त होते हुए वर्णित किया है –

''ऊधौ ! मोहि ब्रज विसरत नाहीं।
हंस सुता की सुन्दर कगरी, अरु कुंजन की छाहीं॥''

कृष्ण को मथुरा नगरी का शाही वैभव और वहाँ का ऐश्वर्य कतई नहीं सुहाता है वे हर समय वृन्दावन का मधुर स्मरण करते हैं –

''ब्रज-सुधि नैकहुँ नहिं जाई।
जदपि मथुरापुरि मनोहर, बिरद यादव राई॥
जो कोऊ कहि 'कान्ह' 'टेरत' चौंकि चितबन धाई।
ग्वालिनी अवलोकि पाछै, रहत सीस नवाई॥''

यहाँ तक कि प्रेम मार्ग का खण्डन करने वाले निर्गुण ब्रह्म के उपासक, ज्ञान योग की साधना का उपदेश देने वाले उद्धव भी ब्रजवासियों तथा गोपियों की विरहास्थिति को देख तिलमिला जाते हैं और वे स्वयं कृष्ण को वृन्दावन जाकर वहाँ की विरह व्यथा का शमन करने का सुझाव निवेदन करते हैं –

''दिन दस घोष चलहुँ गोपाल।
गायन की अवसेरी मिटाबहुँ, मिलहुँ आपने ग्वाल॥''

इस प्रकार सूरदास का विरह वर्णन अपने आप में अवर्णनीय है और सशक्तता के स्वरों में जयघोष करने वाला है।

4. सगुण भक्ति का निरूपण –

जिस प्रकार रामानुजाचार्य से प्रभावित होकर स्वामी रामानन्द ने राम भक्ति-धारा का प्रचार किया उसी प्रकार निम्बार्का, मध्वाचार्य और विष्णु स्वामी के आदर्शों को सम्मुख रखकर चैतन्य महाप्रभु तथा वल्लभाचार्य ने जनता को कृष्ण भक्ति का संदेश दिया। 'अष्टछाप' की स्थापना बल्लभाचार्य के सुपुत्र स्वामी विठ्ठल नाथ ने की थी उस 'अष्टछाप' कवियों में सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छवि स्वामी और गोविन्द स्वामी थे। सगुण भक्तिधारा में कृष्ण भक्ति शाखा के अग्रणी कवि सूरदास माने गये हैं। सूर ने अपने काव्यों में निर्गुण पर सगुण की विजय दर्शाई है। इसलिये उन्होंने 'सूरसागर' की रचना की और उसका प्रमुख स्तोत्र भागवत पुराण है। विरहिणी गोपियों को सान्त्वना प्रदान करने के लिये कृष्ण अपने सखा उद्धव को वृन्दावन भेजते हैं। इसी अवसर पर एक भ्रमर उनके पास आकर गुनगुनाने लगता है। रूप-साम्य एवं गुण-साम्य के कारण गोपियों को वह भ्रमर श्रीकृष्ण के संदेशवाहक के समान लगता है। गोपियों ने उसी भ्रमर को उद्धव और स्वयं के बीच की वार्ता का माध्यम बना लिया था यही 'भ्रमरगीत' है। 'भ्रमरगीत' के माध्यम से कवि सूरदास ने निर्गुण ब्रह्म और उसकी योग साधना को सगुण भक्ति की अपेक्षा अधिक क्लिष्ट बताकर उसका खण्डन किया है और सगुण भक्ति का सुन्दर समर्थन किया है।

उद्धव को अपने ज्ञान-योग पर अहंकार था, वे निर्गुण ब्रह्म के उपदेशक और उपासक थे अत: कृष्ण ने गोपियों की मन:स्थिति को बदलने हेतु उद्धव को बृज में भेजा था –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''यह मत दे गोपिन कहै आवहुँ विरह नदी में भासति।
सूर तुरत जय जाय कहौ, ब्रह्म बिना नहिं आसति॥''

ऊधव तुरन्त मथुरा से वृन्दावन के लिये प्रस्थान कर गये। उन्हें अपने आप पर और अपने योग ज्ञान पर पूर्ण भरोसा था। ब्रज में पहुँचकर उन्होंने गोपियों को योग साधना का उपदेश देना प्रारम्भ किया तो यह सब कृत्य गोपियों को पसन्द ही नहीं आया अपितु उन्हें वह प्रेम की गरिमा के विरुद्ध भी लगा। इसलिये गोपियों ने निर्गुण का विरोध करते हुए अनेक प्रकार से उसका परिहास भी किया –

''निर्गुण कौन देस कौ वासी ?
मधुकर कहिं समुझाइ सौंह दे बूझति साँच न हाँसिं॥''

अन्त में सगुण भक्ति और प्रेम के कट्टर विरोधी उद्धव भी गोपियों की एक-निष्ठा तथा अनन्य भक्तिभाव को देखकर ज्ञानयोग का परित्याग कर देते हैं और स्वयं प्रेमासक्ति के रंग में अपने आप को सराबोर कर लेते हैं। इस प्रकार सूरदास का सगुण भक्ति मार्ग निर्गुण को परस्त करता हुआ सशक्त रूप से उनके काव्यों में निरुपित होता है।

5. पुष्टिमार्ग की व्याख्या – जैसा कि पूर्व वर्णित है, सूरदास पुष्टिमार्गीय वल्लभ सम्प्रदाय के दीक्षित हैं। अतः उनके काव्य में इस मार्ग के दार्शनिक सिद्धान्तों को काव्यमय अनुराग के साथ अभिव्यक्त किया गया है। उन्होंने इसीलिये श्रीकृष्ण की साख्य भाव से भक्ति कर अपने काव्य में प्रेमाभक्ति का चरम उत्कर्ष दिखाया है।

''चितवन रोके हूँ न रही।
स्याम सुन्दर-सिन्धु-सनमुख, सरित उमंग बही॥
प्रेम सलिल-प्रवाह भँवरनि, मिति न कबहुँ लही॥
लोभ-लहर-कटाक्ष, घूँघट-पट-करार ढही॥''

इस प्रकार सूरदास के काव्य में भाव-पक्ष काफी प्रभावशाली और अति प्रशंसनीय रहा है।

कलापक्ष –

सूरदास के काव्य का भावपक्ष जितना प्रभावशाली और सशक्त रहा है, उतना ही कलापक्ष भी प्रशंस्य है –

1. पद शैली की गेयता – सूरदास ने अपने पदों की रचना गेय शैली में की है, इसीलिये इनके सभी पद गीतिकाव्य की अमर कृतियों में मानी जाती हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि – ''जयदेव की देववाणी की स्निग्ध पीयूषधारा जो काल की कठोर धारा में दब गई थी, अवकाश पाते ही लोकभाषा की सरलता में परिणत होकर मिथिला की अमराइयों में, विद्यापति के कोकिल कण्ठ से प्रकट हुई और आगे चल कर ब्रज के करील कुंजो के बीच फैले, मुरझाये मनों को सींचने लगी। आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वाणियाँ श्री कृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं, जिसमें सबसे ऊँची सुरीली और मधुर झनकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी।''

2. मुक्तक काव्य – काव्य रूप की दृष्टि से सूरदास का काव्य प्रबन्ध मुक्तक कोटि का माना गया है, क्योंकि इनके अधिकतर पद अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं, फिर भी कुछ अपवादों के साथ सूर का काव्य प्रबन्धात्मक भी माना गया है। परन्तु 'साहित्य लहरी' के सभी दृष्ट कूट पद मुक्तक हैं। अतः हम कह सकते हैं कि सूरदास की वर्ण्यशैली काव्यानुरूप ही है।

3. भाषागत दृष्टिकोण – भ्रमरगीत की भाषा शुद्ध ब्रज भाषा है। जहाँ उनकी भाषा में शब्द विधान, लोकोक्ति प्रयोग, मुहावरा व शब्द शक्ति प्रयोग अपने आप में विशिष्ट हैं वहीं भाषा की चित्रात्मकता, व्यंजकता, भावुकता, नाटकीयता और संगीतात्मक रूप भी चरम सीमा तक दिखाई देता है। भ्रमरगीत में कवि ने ध्वन्यात्मक और संगीतात्मकता का विधान कुशलता पूर्वक किया है। इनके काव्य में माधुर्य गुण की प्रधानता है। शब्द विधान ब्रज भाषा का होते हुए भी अनेक भाषाओं के शब्दों से आबद्ध है। अतः कह सकते हैं कि सूरदास का भाषा कौशल प्रशंस्य है।

4. भावपक्ष और कलापक्ष का समन्वय – सूरदास के काव्य में दोनों ही पक्षों का अच्छा समन्वय हुआ है। कवि ने वात्सल्य और श्रृंगार रस का प्रभावी प्रयोग किया है, उधर 'सूरसागर' में भयानक, वीर एवं शान्तरस का चित्रण है। सूर ने प्राकृतिक दृश्यों को भी मनमोहक रूप में चित्रित किया है, उनका प्रकृति चित्रण आलम्बन रूप में, उद्दीपन रूप में, अलंकार रूप में, भावनाओं के रूप में तथा परिगणित रूप में अनेक स्थानों पर मिलता है। शब्दालंकारों, अर्थालंकारों का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में हुआ है। कवि ने इन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने मात्र के लिये नहीं किया है बल्कि रसोद्रेग और भावोद्रेग के लिये भी किया है। इनके काव्य में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना – तीनों शब्द शक्तियों का सौष्ठव विद्यमान है। पदशैली और बिम्ब प्रतीकविधान भी पूर्ण रूपेण मनोरम है।

निष्कर्ष – उक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि सूरदास भक्तिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। इनके काव्य में अपने आराध्य श्रीकृष्ण की भक्ति-भावना एवं लीलाओं से सम्बंधित विषय-वस्तु है। वात्सल्य, शृंगार एवं सगुण भक्ति के क्षेत्र में सूरदास का काव्य अनुपम है। इनके काव्य का भावपक्ष और कलापक्ष अनेक विशेषताओं से युक्त है।

प्रश्न- 2. ''सूरदास शृंगार और वात्सल्य का कोना-कोना झाँक आये हैं।'' इस कथन की पुष्टि कीजिये।

उत्तर – ''शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्रों का जितना अधिक उद्‌घाटन सूरदास में अपनी बन्द आँखों से किया है, उतना किसी और कवि ने नहीं। वात्सल्य और शृंगार का कोना-कोना झाँक आये हैं।'' इन शब्दों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सूरदास की रचनाओं में निहित जीवन्त भावाभिव्यक्तियों की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। डॉ. मुंशीराम शर्मा ने सूरदास कृत काव्य के वात्सल्य भाव को शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों को साहित्य जगत् का अमर निधित्यात्मक गुण मानते हुए कहा कि ''हमारी सम्मति में मातृ-हृदय का कोई भी कोना उनकी दृष्टि से ओझल नहीं रहा है।''

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसी भाव को निर्दिष्ट करके कहा है कि ''सूर ने ही सर्वप्रथम वात्सल्य रस की प्रतिष्ठा की है।''

भक्त कवि सूरदास का 'सूरसागर' विशाल मुक्तक काव्य है। इसके पूर्वार्द्ध में कृष्ण की बाल लीला से लेकर भ्रमरगीत तक का अंश समाहित है, जिसमें वात्सल्य और शृंगार का सुन्दर, भावपूर्ण और अनुभूतिमय चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

'सूरसागर' में वात्सल्य रस के वियोग वात्सल्य और संयोग वात्सल्य दोनों ही पक्षों का परिपोष विभिन्न बाल लीला के विभिन्न प्रसंगों में किया गया है और वर्ण्य विषय के क्रम में सूर ने इसे सर्वप्रथम प्रस्तुत किया है इसके बाद शृंगार के उभय पक्षों का चित्रण कर रस-राजत्व स्थापित किया है।

काव्यगत वात्सल्य और शृंगार चित्रण

विशेष – प्रस्तुत प्रश्न के उत्तर की शृंखला में उपर्युक्त मुख्य बिन्दु की समीक्षा की जानी है जिसे प्रश्न सं. 1 के बिन्दु 1. वात्सल्य रस का निरुपण, 2. संयोग शृंगार का चित्रण, 3. वियोग शृंगार को भलीभाँति पढ़कर सोदाहरण स्वयं लिखें और अंत में निष्कर्ष वर्णित करें।

प्रश्न- 3. ''सूर के काव्य में जितनी सहृदयता है, उतनी ही वाक्‌विदग्धता भी।'' इस कथन की समीक्षा कीजिये।

उत्तर – ''सूरदास के व्यक्तित्व की प्रथम विशेषता उनकी रागात्मक वृत्ति से समन्वित भक्ति-भावना है। वे श्रीनाथ के मन्दिर में रहते थे। उस समय कृष्ण-सखा के रूप में सख्य-भावाश्रित समाधि में लीन रहते थे। उनकी सख्य भावना इतनी धनी और अनन्य थी कि अपने बीच श्रीनाथ जी की उपस्थिति का अनुभव करते थे। शेष समय में वे भावात्मक रहते थे।

डॉ. लक्ष्मय्या शेट्टी के प्रस्तुत विचारों से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने श्रीनाथ की कृपा से अपने अन्तरचक्षुओं की दिव्य दृष्टि से हजारों नेत्रों की दूरदृष्टि को भी मात दे दी। डॉ. शेट्टी ने यह भी कहा कि सूरदास ने अपनी भावनाओं का विस्तार करने के लिए अपनी अन्तःकरण शक्ति को सजीव कर लिया था।

निःसंदेह सूरदास प्रज्ञाचक्षु थे और अत्यंत प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। अष्टछाप के कवियों में अग्रणी गायक कवि थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य का शिष्य बनने से पहले इन्होंने विनय तथा दास्य भाव पर आधारित पदों की रचना की, किन्तु बाद में इन्होंने सख्य भाव को अपनाकर अपने आराध्य की लीलाओं का सुमधुर गायन किया।

जहाँ एक ओर तो सूरदास पर उनके पूर्ववर्ती कवि जयदेव और विद्यापति का प्रभाव दिखाई देता है और दूसरी ओर पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय का। अतः सूरदास का व्यक्तित्व कृष्णभक्त सभी कवियों में विशिष्ट माना जाता है।

सहृदय एवं भावुक व्यक्तित्व में सूरदास

डॉ. सावित्री शुक्ल ने कवि सूरदास की भावुकता और सहृदयता के सम्बंध में विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''सूर'' मधुर एवं कोमल भावनाओं के चतुर चितेरे, रस के अक्षय स्रोत, आध्यात्मिक प्रेम के प्रवीण पारखी व्यक्ति थे। वे भारतीय संस्कृति का सहज रूप से कलात्मक उद्घाटन करते हुए आज भी सरसता, अभिनवता, सुचारुता तथा मनोवैज्ञानिकता को रसज्ञों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।''

सूरदास के काव्य में भक्ति-भावना का भावपूर्ण स्वर जितना मधुर एवं रसपूर्ण है, उतना ही उसमें भावपक्ष और कलापक्ष का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है।

सूरदास की सहृदयता प्राय: बेजोड़ है, उनके काव्य में समस्त रसों के दर्शन हो जाते हैं, फिर भी काव्य में प्रधानता शृंगार और वात्सल्य की ही है। इन दोनों रसों के चित्रण में सूरदास बेजोड़ माने जाते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस संदर्भ में लिखा है कि –

''शृंगार व वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक उनकी दृष्टि पहुँची वहाँ तक अन्य किसी भी कवि की नहीं। .....वात्सल्य और शृंगार रस – इन दोनों क्षेत्रों का कोना-कोना सूरदास झाँक आये हैं।''

सूरदास की इस विलक्षित विशेषता को देखकर कई अन्य समालोचकों ने भी इनकी भूरी-भूरी प्रशंसा की है। इस संदर्भ में डॉ. विजयेन्द्र स्नातक के विचार भी उल्लेखनीय हैं – ''सूर का मुख्य विषय कृष्ण भक्ति है........उन्होंने कृष्ण चरित्र के उन भावात्मक स्थलों को चुना है, जिनमें उनकी अन्तरात्मा की गहरी अनुभूति बैठ सकी है। उन्होंने श्रीकृष्ण के शैशव और किशोर-वय की विविध लीलाओं का चयन किया है, संभवत: यह साम्प्रदायिक दृष्टि से ही किया हो। सूर की दृष्टि कृष्ण के लोकरंजन रूप पर ही अधिक रही तथा उनके द्वारा दुष्ट दलन आदि का वर्णन सामान्य रूप से ही किया है। लीला वर्णन में कवि का ध्यान मुख्यत: भाव चित्रण पर रहा है, विनय और दैन्य-प्रदर्शन के प्रसंग में जो पद सूरदास ने लिखे हैं, उनमें भी उनके उच्चकोटि के भावों का समावेश है।''

सूरदास की विद्ग्धता और चतुरता का रूप

सूरदास ने श्रीनाथ के मन्दिर में अपने आराध्य की परम ज्योति को पहचाना और अपनी दास्य भावना को सख्य भाव में बदलने की सफल योजना तैयार कर ली। कुछ समय पश्चात् मुँह लगे व्यक्ति की भाँति स्पष्टता और विद्ग्धता का परिचय देना प्रारम्भ कर दिया। बड़ी अक्खड़ता से अपने आराध्य सखा कृष्ण से उपालम्भों की अभिव्यक्तियाँ प्रस्तुत की।

''आज हौं एक एक कारि हारि हौं।
कै हम हीं कै तुम ही माधव, अपुनि भरोसै लरिहौं।''

इसी प्रकार से – **''तब प्रताप बल बदल न काहूँ, निडर भये घर चेरे॥''**

सूरदास ने अपने काव्य 'भ्रमरगीत' में निर्गुण भक्ति धारा को योग-साधना का खण्डन करने में और सगुण भक्ति का समर्थन करने में बड़ी चतुरता और विदग्धता का परिचय दिया है। ऊधव गोपियों को ज्ञानयोग का उपदेश देने में किसी प्रकार की कमी नहीं रखता है और गोपियाँ की मन:स्थिति को बदलने की पुरजोर कोशिश भी करता है किन्तु गोपियाँ भी अपनी चातुर्यशैली में निर्गुण का विरोध तब तक करती रहती हैं जब तक कि उद्धव स्वयं प्रेम के पुजारी नहीं बन जाते हैं।

सूर के आराध्य श्रीकृष्ण की लीलाएँ प्रकृति के स्वच्छन्द आँगन में हुई हैं। सम्पूर्ण ब्रजभूमि कृष्ण की क्रीड़ा-स्थली मानी गई है। सूरदास ने अपनी रचनाओं में प्रकृति की अनेक झलकियाँ प्रस्तुत की हैं। कालिन्दी कूल, कदम्ब की डालें, करील की छाँव, पक्षी विहार, गोवर्धन पर्वत, मधुवन, पेड़-पौधे और गोचारण के विशाल हरे-भरे मैदानों को अपनी सुन्दर कल्पनाओं के रंगीन चित्रों में मनमोहक प्रस्तुति दी है। गोपियों का रूप सौन्दर्य – उनकी प्रसन्न मुद्राओं का सुन्दर वर्णन, गोपियों की क्रोध भरी कुटिल व तीखी नजरें, प्रेम की आँखों में गहराइयाँ, ब्रजधेनु वर्णन, घनमाला, यमुना कुंज और कुञ्ज गलियों का सौन्दर्य चित्रण भी पाठकों का मन हरने वाला है।

5.3 सारांश

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि सूर के काव्य में अनेक विशेषताएँ समाहित हैं जिनका वर्णन सामान्य विवेक द्वारा प्रस्तुत करना एक दुष्कर कार्य है। वात्सल्य और शृंगार रस का अनुठा मेल रचनाओं को आनन्द और सुखानुभूति से सरोबोर बनाने वाला है। प्राकृतिक सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण उनकी भावुकता तथा सहृदयता को स्पष्ट करने वाला है। गोपियों की विरह-वेदना, पवित्रता, निश्छलता, उदारता और चतुरता आदि को वर्णित करने में भी सूरदास की चतुराई परिलक्षित होती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 6 : तुलसीदास

संरचना

6.0 कवि परिचय

6.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

6.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

6.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

6.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

6.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

6.3 सारांश

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

6.0 कवि परिचय

गोस्वामी तुलसीदास के जन्म के सम्बन्ध में विद्वान एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वान् इनकी जन्मतिथि भाद्रपद शुक्ला एकादशी मंगलवार सं. 1598 मानते हैं और कुछ इनका जन्म सवंत् 1554 स्वीकार करते हैं। ''मूल गोसाई-चरित'' एवं ''मानस-मंगल'' के अनुसार भी इनका जन्म संवत् 1554 ही माना गया है। 'घाटरामायण' के रचयिता एवं रामगुलाब द्विवेदी ने तुलसीदास की जन्मतिथि 1598 ही स्वीकार की है। इनके जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी भिन्न-भिन्न मत सामने आते हैं। एक मतानुसार इनका जन्म स्थान 'सौरों' जिला एटा माना गया है और दूसरा मत, इनका जन्म यमुनातट पर स्थित राजापुर जिला बाँदा स्वीकार करता है। कुछ विद्वान् अयोध्या में इनकी जन्मस्थली मानते हैं और कुछ विद्वानों का कहना है कि हाजीपुर में कवि तुलसीदास का जन्म हुआ था। जहाँ तक इनकी मृत्युतिथि का प्रश्न है, वह प्राय: सभी विद्वान् मानते हैं कि सं. 1680 में इनकी मृत्यु हो गई थी।

हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकवि तुलसीदास के बचपन का नाम 'रामबोला' था। ऐसा माना जाता है कि जैसे ही बालक तुलसी संसार में आये, वैसे ही इनके मुख से ''राम'' शब्द निकला था, तत्पश्चात् बालक ने रोना प्रारम्भ किया था। यह आश्चर्य कि ''वह राम बोला'' सर्वत्र फैल गया और सभी लोग इन्हें रामबोला कहने लगे थे। इनका पिता का नाम ''आत्माराम'' और माता का नाम ''हुलसी'' था। बचपन में ही माता-पिता का देहान्त हो जाने के कारण गुरु नरहरिदास ने इनका पालन किया था। युवावय की देहलीज पर कदम रखने के साथ ही इनका विवाह एक रूपवती कन्या के साथ सम्पन्न हो गया। इनकी पत्नी अत्यन्त सुन्दर थी और ये उसकी सुन्दरता के दीवाने हो गये तथा प्रेमासक्ति की भावना सभी मर्यादाओं को पार कर गई थी। एक बार जब इनकी पत्नी मायके चली गई तो ये पीछे-पीछे देर रात्री में उसके घर पर पहुँच गये, वहाँ द्वार बन्द मिला तो ये घर के पिछवाड़े से चढ़कर भवन में पहुँच गये। वैसे भी इनकी पत्नी उनकी प्रेमासक्ति से कुछ अधिक ही परेशान हो चुकी थी। जब उसने देर रात्री में अपने पति को अचानक अपने पास देखा तो उसके क्रोध की सीमा न रही। उसने तुलसीदास को ऐसे मार्मिक वाक्यों से प्रताड़ित किया कि इनके मन में व्यास पत्नीप्रेम ईश्वरप्रेम में बदल गया।

तुलसीदास ने अनेक ग्रंथ लिखे जिनमें 'रामचरितमानस', 'कवितावली', 'गीतावली', 'विनय-पत्रिका', 'कृष्णगीतावली', 'दोहावली', 'पार्वतीमंगल', 'जानकी-मंगल', 'रामाज्ञाप्रश्न', 'हनुमानबाहुक', 'रामललानहछू', 'वैराग्य संदीपनि' आदि प्रमुख थे। रामचरितमानस हिन्दी साहित्य का सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य माना जाता है। सर्वसाधारण में यह रामायण के नाम से प्रसिद्ध है। इसका कथानक रामकथा पर आधारित है। सम्पूर्ण काव्य सात सोपानों में विभाजित है जिसमें रामजन्म से लेकर रावणवध तक की कथा है। तुलसी ने इस प्रबन्ध काव्य के माध्यम से राम के अनेक आदर्श प्रस्तुत किये हैं। शील, शक्ति और सौन्दर्य के आगार मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की विभिन्न कल्पनाएँ की गई हैं। साहित्य में प्रचलित वीररस, शृंगाररस, हास्यरस, करुणरस, वात्सल्यरस आदि सभी रस इनके काव्य में देखने को मिल जाते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास लोकनायक के रूप में विख्यात हैं। उन्होंने सम्पूर्ण लोक के विविध पक्षों को अपने सामने रखकर उनमें समन्वय करने का प्रयास किया है। तुलसी की रचनाओं में 'रामचरितमानस' के अतिरिक्त विनय-पत्रिका, 'कवितावली', 'गीतावली' और 'दोहावली' आदि के नाम भी चर्चित रहे हैं। जिनमें विनय-पत्रिका का रचनाकाल संवत् 1678 बताया गया है। संस्कृत गर्भित ब्रजभाषा में रचित इस कृति में 300 पद हैं। यह राम के दरबार में कलियुग के विरुद्ध तुलसी की प्रार्थना है जिसे 'विनय पत्रिका' कहा गया है। गीतावली का रचनाकाल संवत् 1626-1627 वि. माना गया है। यह एक गीतिकाव्य है, जिसने सात काण्ड और 330 छन्द हैं, जिनमें राम के चरित्र का मुख्य-मुख्य प्रसंगों में वर्णन है। कवितावली का रचनाकाल संवत् 1665 वि. के बाद माना जाता है। इसमें कवित्त, सवैया, धनाक्षरी, छप्पय, झूलना आदि छंदों का प्रयोग हुआ है इसमें राम के चरित्र के मुख्य-मुख्य प्रसंगों का वर्णन है। दोहावली का रचनाकाल संवत् 1640 वि. माना गया है। इसमें उपदेश और भक्ति सम्बंधि 573 दोहे हैं। डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने क्रीड़ा विषयक दोहों के आधार पर इसे उत्तरकालीन (संवत् 1665 से 1680 वि.) के बीच की रचना स्वीकार किया है। बरवै रामायण का रचनाकाल सं. 1669 माना गया है और यही वैराग्य संदीपनि का काल मान्य है। पार्वती मंगल और जानकी मंगल दोनों का रचना काल सं. 1643 वि. स्वीकार किया गया है। सं. 1664 वि. के लगभग "हनुमान बाहुक" लिखा गया था जिसमें 44 पद्य हैं। जब तुलसीदास जी की बाहुओं में वातव्याधि की गहरी पीड़ा उत्पन्न हो गई तो उनका सम्पूर्ण शरीर वेदना का स्थान बन गया था। कहीं भी जब ईलाज नहीं हुआ तो उन्होंने रामभक्त हनुमानजी से इस कष्ट के निवारण की मार्मिक विनती की। यही 'हनुमानबाहुक' है।

तुलसीदास के पूर्व कई प्रकार के पंथ प्रचलित थे जिनमें से कुछ भारतीय एवं इस्लामी संस्कृतियों के समन्वय से उत्पन्न हुए थे। कुछ नयथी परम्पराओं को बल देकर आगे बढे थे, कुछ ने भक्ति को स्वीकार किया था किन्तु आत्मिकोन्नयन और समन्वयवादी भावना पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके उपासना पक्ष को दृढ़ नहीं माना। तुलसीदास समन्वयवादी कवि थे, इन्होंने सभी मतों का बारीकी से अनुसंधान किया है। इन्होंने पूर्वजों के सम्पूर्ण ज्ञान को समेट लेने की चेष्टा की है। तुलसी युग में सबसे बड़ा द्रन्द्र, शैव और वैष्णवों का था। इन्होंने मानस के द्वारा इन मतों के द्रन्द्रों में समन्वय करने का सफल प्रयास किया था। यद्यपि तुलसी ने सबकी वन्दना की, किन्तु राम के चरणारविंदों को महत्त्व अधिक दिया था। "मोर मन अस कल्पना, करिहौ शिव मूरति थापना।" की भावना के द्वारा शैव और वैष्णवों के द्वन्द्व को मिटाया है।

तुलसीदास ने राम के औपनिषदिक ब्रह्म रूप को ही स्वीकार किया है और प्रभु राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य को आधार बनाकर हमारे अभावों की पूर्ति तुलसी ने की है। राम के शील गुण को अधिक महत्त्व दिया है। शील केवल नियम और सदाचार ही नहीं है, अपितु जगत् के बाह्य नियमों का समाविष्ट रूप भी है। तुलसी के राम तो अपराधों को देखकर भी अनदेखा कर देते हैं। वे सम्पूर्ण जगत् के पालनहार, सृष्टिकर्त्ता 'विष्णु' के अवतार हैं। सृष्टि के कण-कण में प्रभु राम का व्यापक रूप है।

"सियाराम मय सब जग जानी।
करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥"

तुलसी के काव्य में दर्शन और भक्ति का समन्वित रूप मुखरित हुआ है। भावपक्ष और कलापक्ष दोनों का समन्वित रूप इनके काव्य में मिलता है। रामचरितमानस के प्रारम्भ में ही उन्होंने काव्य के लिये रसमंगल तत्त्वों की अपेक्षाएँ स्वीकार की हैं –

"वर्णनामर्थसंधानां रसानां छंदासामपि।
मंगलामां च कर्तारौ वन्देवाणी विनायकौ॥"

तुलसी ने शब्द और अर्थ के पारस्परिक सम्बन्ध की व्यंजना पर जोर दिया है। इनके माध्यम से ही रामकथा मंगलकारिणी हो सकती है। रामकथा को कलियुग में सम्पूर्ण पापों का शमनकारी और सम्पूर्ण संदेहों का निवारणकारी बताया गया है –

"राम कथा सुन्दर करतारी।
संशय विहग उड़ावन हारी॥
कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

तुलसीदास मूलतः भक्ति रस के कवि हैं। उनके द्वारा विरचित 'रामचरितमानस' को उन्होंने 'मानसरोवर' की संज्ञा दी है। काव्यरूपी मानसरोवर में नवरस एक प्रकार से 'जलचर' है, 'संतसभा' अमराई है, 'शम, यम और नियम' सुन्दर फूल हैं, 'ज्ञान' फल है और 'भक्ति' रस है।

नवरस जप तप जोग विरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥
सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते विचित्र जल विहग समाना॥
संत सभा चहुँदिसि अँबराई। श्रद्धा ऋतु बसंतसम गाई॥
भगति निरुपम बिबिध बिधाना। हरिपद रति रस बेद बखाना॥

तुलसीदास ने अपने समय की प्रचलित समस्त रचना शैलियों को अपनाकर ग्रंथों का प्रणयन किया है, उन्होंने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही काव्यों की रचना की है। 'रामचरितमानस' उच्च कोटि का प्रबन्ध काव्य ही नहीं बल्कि एक उच्च कोटि का महाकाव्य है।

'गीतावली', 'दोहावली', 'विनय पत्रिका' आदि रचनाएँ मुक्तक काव्यशैली में रचित हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तुलसीदास के दस काव्य-रूपों, दोहा-चौपाई वाले चरितकाव्य कवित्त-सवैया, दोहा में आध्यात्म और धर्म नीति के उपदेश बरबै छन्द, सोरह छन्द, विनय के पद, लीला के पद वीर काव्य के लिये उपयोगी छप्पय, तोमर, नारच आदिकी पद्धति दोहों में सुगम विचार और मंगल काव्य का उल्लेख किया है।

तुलसीदास ने ब्रज और अवधी भाषा में काव्यों की रचना की है। किन्तु प्रधानता स्वरूप अवधी भाषा को अपनाया है। भोजपुरी, बुन्देलखण्डी, राजस्थानी, संस्कृत, फारसी के शब्दों का भी प्रयोग उनकी भाषा में मिलता है। इनकी भाषा अलंकृत न होकर स्वाभाविक, सरस और भाव व्यंजक है तथा शब्दों का चयन पूर्ण पाण्डित्य से युक्त है।

तुलसीकृत महाकाव्य 'रामचरितमानस' की रचना चैत्र मास के शुक्ल पक्ष में नवमी मंगलवार संवत् 1631 में प्रारम्भ हुई। बेणीमाधवदास के अनुसार यह महाग्रंथ संवत् 1633 में पूर्ण रूप से तैयार हो गया था। इस महाकाव्य में सुनियोजित कथानक, उदात्त चित्रांकन, रसव्यंजना, महान् उद्देश्य और गरिमामय उदात्त शैली का सौन्दर्य समाविष्ट है। 'रामचरितमानस' का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – चारों ही पुरुषार्थों की प्राप्ति है –

''कामहिं नारि पिआरि जिमि, लोभहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमिरघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहि मोहि राम॥''

6.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(बाल लीला वर्णन)

(1)

अवधेस के द्वारे सकारे गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोक हों सोच विमोचन को ठगिसी रही जे न ठगे धिकसे॥
तुलसी मन-रंजन रंजित-अंजन नैन सुखंजन-जातक-से।
सजनी ससि में समशसि उभै नबनील सरोरुह से बिकसे॥

शब्दार्थ – अवधेस=अवध के राजा दशरथ। सकारे=सवेरे। भूपति=राजा। विमोचन=मुक्ति। अवलोकि=देखकर। धिकसे=धिक्कार। मनरंजन=मन को प्रसन्न करने वाले। अंजन=काजल। जातक=खंजन पक्षी। सजनी=सखी। नबनील सरोरुह=नवीन नीला कमल।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के ''तुलसीदास'' नामक पाठ से लिया गया है, जो तुलसीकृत ''कवितावली'' से अवतरित है। प्रस्तुत पद में तुलसी ने प्रभु राम के नवजात रूप सौन्दर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या – अयोध्या में एक स्त्री अपनी दूसरी सखी से कहती हैं कि जब मैं आज सवेरे महाराज दशरथ के महल में मुख्य द्वार तक गई तो क्या देखती हूँ कि राजा दशरथ अपने पुत्र को अपनी गोद में लेकर बाहर निकले थे। मैंने जब उस बालक को देखा तो स्तब्ध

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रह गई। मुझे लगा कि वे समस्त संसार के कष्टों से मुक्ति दिलाने वाले श्रीराम हैं। उनके रूप सौन्दर्य ने तो जैसे मुझे ठग लिया हो। हे सखी! उनको देखकर जो ठगे से नहीं रहते, उनका जीवन धिक्कार है। तुलसीदास कहते हैं कि वह स्त्री प्रभुराम के बाल सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहती है कि राम के अंजन युक्त नेत्र मन को प्रसन्न करने वाले हैं, सुन्दर खंजन पक्षी के बच्चे के नेत्रों के समान वे सुन्दर हैं। हे सखी! श्रीराम तो अपने रूप और स्वभाव में चन्द्रमा और कमल दोनों की ही बराबरी करने वाले हैं क्योंकि उनका मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर और शांति देने वाला है और उनका शरीर नवीन नीले कमल की भाँति विकसित और कान्तिमान है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में राम के बाल सौन्दर्य रूप का अलंकृत वर्णन किया है।

2. श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति हुई है।

3. अनुप्रास, उपमा और व्यतिरेक अलंकार का प्रयोग किया गया है।

4. सवैया छंद की सुनियोजित गति यति एवं पद योजना है।

(2)

पग नुपुर औ पहुंची कर कंजनि मंजु बनी मनिमाल हिएं।
नवनील कलेवर पीत झंगा झलकै पुलकै नृप गोद लिएं ॥
अरविन्द सो आननु रूप मरंद अनंदित लोचन भृंग पिएं।
मनमो न बस्यो अब वालकु जौं तुलसी जग में फल कौन जिएं ॥

शब्दार्थ – पगनुपुर–पैरों में पायल। पहुँची कर–हाथों में पहुँची। मंजु–सुन्दर। हिये–हृदय पर। कलेवर–सौन्दर्य। पीत झगा=पीला बला। आननु=मुख। अरविन्द=कमल। मरन्द=मकरंद।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'तुलसीदास' पाठ से अवतरित है, जिसे तुलसीकृत ''कवितावली'' से लिया गया है। अवतरण में कवि ने बालक श्रीराम के मनमोहक रूप सौन्दर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या – अयोध्या के महाराज दशरथ नन्दन श्रीराम का रूप सौन्दर्य अनुपम है। तुलसीदास जी कहते हैं कि उनके पैरों में सुन्दर पायल, करकमलों में सुन्दर पहुँची और हृदय पर सुन्दर वन माला शोभायमान हो रही है, उनका स्याम वर्ण शरीर बहुत ही सुन्दर है जिस पर पीले रंग का झबला बहुत ही सुन्दर लग रहा है। ऐसे सुन्दर बालक को महाराज दशरथ अपनी गोद में लेकर बहुत पुलकित हो रहे हैं। बालक राम का मुख कमल के समान है और उनका रूप मकरंद है, जिसे सुन्दर नेत्र रूपी भौंरे प्रसन्न होकर पान कर रहे हैं।

तुलसीदास कहते हैं कि यदि इस सौन्दर्य को धारण करने वाला बालक राम हमारे हृदय में निवास नहीं करता है तो इस संसार में जीना ही व्यर्थ है।

विशेष – 1. कवि ने राम के बाल रूप का वर्णन करते समय अपनी भक्ति भावना को भी समाविष्ट किया है।

2. रुपक व उपमा अलंकारों का प्रयोग कुशलता के साथ किया गया है।

3. सवैया छन्द की गेयता और पद योजना भावानुकूल है।

(3)

कबहुं ससि माँगत आरि करै, कबहुं प्रतिबिम्ब निहारि डरै।
कबहुँ करताल बजाइक नाचत, मातु सबै मन मोद भरै॥
कबहुं रिसिआइ कहै हठि कै पुनि केत सोइ जेहि लागि अरै।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में बिहरै॥

शब्दार्थ – कबहुक=कभी तो। ससि=चन्द्रमा। आरि करै=जिद करता है। प्रतिबिम्ब=परछाई। निहारि=देखकर। करताल=तालियाँ। मोद=आनन्द। रिसिआइ=क्रोध कर।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के ''तुलसीदास'' पाठ से अवतरित है जिसे तुलसीकृत ''कवितावली'' से लिया गया है। प्रस्तुत पद में श्रीराम के बाल चापल्य रूप का मनोहारी वर्णन किया है।

व्याख्या – तुलसीदास श्रीराम के बाल चापल्य रूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि बालक राम कभी तो चन्द्रमा को माँगते हैं और उसे लेने की जिद करते हैं और कभी उसकी परछाई को देखकर भी डर जाते हैं। कभी तालियाँ बजा-बजा कर नाचने लगते हैं और तीनों माताओं को आनन्दित कर देते हैं और कभी क्रोध करके किसी वस्तु को लेने की मांग करते हैं तथा जिद करके प्राप्त करते हैं। तुलसीदास कहते हैं कि अवध नरेश महाराज दशरथ के ये चारों पुत्र सदैव मेरे मन रूपी मन्दिर में निवास करते रहें, मेरी बस यही कामना है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में राम के बाल-स्वभाव का सुन्दर चित्रण है।

2. तुलसी की भक्ति भावना का उद्घाटन हुआ है।

3. अनुप्रास, रूपक और स्वाभावोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

धनुष यज्ञ

(4)

मदन दहुन परदहनु गहनु जनि,
अनिकै सबैकौ सांस धनुष गढायौ है।
जनक सदांसि जेते भले भले भूमिपाल,
किये बलहीन बलु आपनो बढायौ है।
कुलिस कठोर कूर्म पीठ तै कठिन अति,
हठि न पिनाकु काहूं चपरि चढायौ है।
तुलसी सो राम के सरोज-पानि परसत ही,
टूटगो मानो बारे ते पुरारि ही पढागो है।

शब्दार्थ – मदन=कामदेव। आनिकै=आकर के। सीस=सिर। कुलिस=बज्र। पिनाकु=धनुष। पुरारि=शिव।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के तुलसीदास नामक पाठ से अवतरित है जिसे तुलसीकृत ''बालकाण्ड के धनुर्यज्ञ'' से लिया गया है जिसमें सीता स्वयंवर के दौरान श्रीराम के द्वारा धनुष तोड़े जाने का वर्णन किया गया है।

व्याख्या – तुलसीदास धनुर्यज्ञ का वर्णन करते हुए कहते हैं कि स्वयंवर सभा में राजा जनक द्वारा जो धनुष रखा गया था, उससे कामदेव का दहन हुआ था और वह शिवधनुष था। शिवजी ने उसी धनुष के अग्निमय बाणों से त्रिपुर के तीनों नगरों को एक साथ जला दिया था। उस स्वयंवर सभा में आये हुए सभी महारथी राजाओं ने उस धनुष को उठाने के अनेक प्रयास किये किन्तु वे उसे तिलभर भी नहीं हिला सके। जिससे सभी शक्ति का दम भरने वाले राजाओं के सिर मारे शर्म के जमीन में गड गये। उस समय उस सभा में विराजमान सभी राजाओं, जिनमें स्वयं राजा जनक भी थे, सभी को इस धनुष ने बलहीन बना दिया था और अपना स्वयं का प्रताप फैला लिया था। शिव का वह धनुष वज्र से भी कठोर था और कूर्म की पीठ से भी अधिक कठिन था। उस सभा में उपस्थित देश-विदेश से आये अनेक बलशाली राजाओं ने उस धनुष को उठाने और उस पर प्रत्यंचा चढाने का भरसक प्रयास किया किन्तु सभी असफल रहे। तुलसीदास जी कहते हैं कि प्रभु श्रीराम ने जैसे ही उस धनुष को हल्का-सा उठाया, वैसे ही वह टूट गया। उस समय ऐसा लग रहा था मानो स्वयं शिव जी ने राम के द्वारा धनुष को तोड़ने के अनुमान से ही राम को वहाँ पर भेजा था।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में शिव धनुष की विशेषताएँ बताते हुए उसके खण्डन का सुन्दर वर्णन किया है।

2. पद में अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रूपक और काव्यलिंग अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

3. 'कवित्त' छन्द की गेयता, पद मैत्री और भावानुभूति सुन्दर है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(5)

दूब दधि रोचनु कनक थार भरि भरि,
आरति सँवारि बर नारि चलि गावतीं।
लीन्हें जयमाल कर कंज सोहे जानकी के,
पहिराओ राघोजू को सखियाँ सिखावतीं।
तुलसी मुदित मन जनक नगर जन,
झाँकती झरोखे लागी सोभा रानी पावतीं।
मनहुं चकोरि चारु बैठी निज निज नीड,
चंद की किरन पीवै पलकौ न लावती।

शब्दार्थ – रोचनु=चन्दन। कनक थार=स्वर्ण थाल। कर कंजु=कमल के समान हाथ। राघो जू=श्रीरामजी। मुदित=प्रसन्न। चारु=सुन्दर। नीड=घोंसला।

प्रसंग – प्रस्तुत कवित्त छन्द हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'तुलसीदास' पाठ से अवतरित है। प्रस्तुत पद में कवि तुलसीदास ने ''सीता-स्वयंवर'' में राम-सीता विवाह का मनोहारी वर्णन किया है।

व्याख्या – स्वयंवर सभा में श्री राम द्वारा धनुष तोड़ने पर जनक की प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाती है तब सीता अपनी सखियों के साथ जयमाला लेकर राम के समीप आती है।

जयमाला पहनाने की तैयारी के साथ अनेक स्त्रियाँ अपने हाथों में दूब, दही, चन्दन आदि मांगलिक सामग्रियों से सुसज्जित सोने के थाल लेकर स्वयंवर स्थल पर मांगलिक गीत गाती हुई आती हैं। उनके साथ ही कमल के समान सुन्दर कोमल हाथों में जयमाला लिये हुए मिथिलेश कुमारी सीता आती हैं। उस समय सीता का रूप सौन्दर्य बहुत ही आकर्षक लग रहा था। श्री राम के सम्मुख आने पर सीताजी की सखियाँ जयमाला पहनाने के लिये निर्देश देने लगीं। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय मिथिला नगर के सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न लग रहे थे और महलों के झरोखों में बैठी हुई सभी रानियाँ अत्यधिक शोभायमान लग रही थीं। वे ऐसी लग रही थीं मानों चकोरियाँ अपने-अपने घोंसलों में बैठी हुई शोभायमान लग रही हों और मधुर चन्द्रमा की किरणों अर्थात् चाँदनी का पान करने में अपलक लीन हो रही हों।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में सीता-राम विवाह के प्रथम चरण ''वरमाला'' दृश्य का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। रानियों के सौन्दर्य को अलंकृत संभावनाओं में सुन्दर ढंग से बाँधा गया है।

2. अनुप्रास, रूपक, उपमा, वीप्सा और उत्प्रेक्षा अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

3. कवि कल्पना के अनुसार पद-मैत्री और कवित्त-छंद की गेयता प्रशंसनीय है।

अयोध्या काण्ड

(6)

वनगमन –

कीर के कागर ज्यों नृप चीर, विभूषण उप्पम अंगनि पाई।
औंध तजी मगवास के रूख ज्यों, पंथ के साथ ज्यों लोग लुगाई।
संग सुबंधु पुनीत प्रिया मानो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बापु को राज बटाऊ की नाईं।

शब्दार्थ – कीर=तोता। कागर=पंख। नृपचीर=राजसी वस्त्र। विभूषण=आभूषण। उप्पम=उत्तम उपमा। औंध=अयोध्या। मगवास=रास्ते में रहने वाले। रूँख=पेड़-पौधे। पुनीत=पवित्र, सुन्दर। प्रिया=प्रेयसी, पत्नी। राजिव-लोचन=कमल के समान नेत्रों वाले श्रीराम। बटाऊ=पराया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के तुलसीदास नामक पाठ से अवतरित है जिसे तुलसीकृत ''कवितावली'' के बनगमन प्रसंग से लिया गया है। कवि ने राम वनवास के समय का सुन्दर और जीवन्त चित्रण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या – तुलसीदास जी राम वन गमन के समय का चित्रण प्रस्तुत करते समय कहते हैं कि जब प्रभु श्रीराम ने वन को प्रस्थान करते समय राजसी वस्त्रों और आभूषणों का परित्याग कर दिया था तो भी वे अत्यंत सुन्दर और सजीले से लग रहे थे। ऐसा लग रहा था कि समय आने पर तोता अपने पुराने पंखों का परित्याग कर वास्तविक सौन्दर्य को प्राप्त कर नवीन पंख धारण कर लेता है। ठीक उसी प्रकार राम ने भी राजसी वस्त्रों और आभूषणों को त्याग दिया था, उनके अंगों का सौन्दर्य ही अपने आप में सौन्दर्य की उपमा प्रतीत हो रहा था। उन्होंने अयोध्या को इस प्रकार निरीह और निस्पृह भाव से छोड़ दिया था जैसे कोई राहगीर अपने मार्ग में पड़ने वाले पेड़-पौधों को निस्पृह भाव से छोड़ देता है। और अयोध्या वासियों को भी इस प्रकार छोड़ दिया था मानो सहयात्रियों को छोड़कर किसी प्रकार का दुःख नहीं किया जाता है। वन गमन के समय प्रभु श्रीराम के साथ उनकी अर्द्धांगिनी सीताजी और अनुज लक्ष्मण थे। वे दोनों ऐसे लग रहे थे मानों धर्म और कर्म ने साक्षात् मानव शरीर धारण कर लिया हो और वे प्रभु राम के वन गमन के लक्ष्य में सहभागी हो गये हों। कमल नयन श्रीराम ने अपने पिता के राज्य को ऐसे छोड़ दिया था मानो कोई बटोही पिछले विश्राम स्थल को छोड़कर चला जाता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में राम की निस्पृहता और आज्ञाकारी पुत्र के आदर्श प्रस्तुत किये हैं।
2. राम के अंगों के वास्तविक सौन्दर्य को प्रभावशाली ढंग से उपस्थित किया है।
3. अवतरण में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और यथासंख्य अलंकारों का सुन्दर प्रयोग है।
4. अवतरण सवैया छन्द में लिखा गया है।

(7)

एहि घाटतै थोरिक दूर अहै, कटि लौं जल थाह दिखाइहौं जू।
परसें पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू॥
तुलसी अवलंबनु और कछु, लरिका केहि भाँति जियाइहौं जू।
बरु मारिए मोहि बिना पग धोये हौं नाथ न नाव चढाइहौं जू॥

शब्दार्थ – एहि घाटतै=इस घर से। थोरिक दूर=थोड़ी ही दूर पर। अहै=है। परसे=स्पर्श मात्र से। कटि लौं=कमर तक। तरनी=नाव। अवलम्ब=सहारा। बरु=चाहे।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के तुलसीदास नामक पाठ से अवतरित है, जिसे 'कवितावली' के लिया गया है। कवि तुलसीदास बनमार्ग में नदी पार करने के लिए श्री राम-केवट संवाद का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या – जब राम ने केवट से नदी पार कराने के लिये नाव लाने को कहा तो केवट घबरा गया और वह प्रभु राम से निवेदन करने लगा कि इस घाट से थोड़ी दूर कमर तक का पानी है, अगर आप चाहें तो मैं आपसे आगे चलकर जल की थाह दिखा सकता हूँ। केवट कहता है कि आप पैदल ही नदी को पार कर सकते हैं किन्तु मैं आपको अपनी नाव में नहीं बैठने दूँगा। मैंने सुना है कि आपके चरणों की धूल में ऐसी शक्ति है कि जिसके स्पर्श मात्र से कोई भी वस्तु नारी बन जाती है। केवट शिलारूप अहिल्या का उदाहरण देते हुए कहता है कि हे प्रभु! पत्थर की चट्टान जब आपकी चरण धूल से नारी बन सकती है तो मेरी नाव तो लकड़ी की है। इसके नारी रूप में किसी प्रकार का संदेह नहीं है। केवट अपनी संभावित व्यथा को व्यक्त करता हुआ कहता है कि यदि मेरी नाव ने नारी रूप धारण कर लिया तो क्या मेरी पत्नी इस दूसरी नारी को सौतन रूप में स्वीकार करेगी ? मैं उसे कैसे समझाऊँगा। हे प्रभु! यह नाव ही तो मेरे परिवार के भरण-पोषण का आधार है। यदि यही नहीं रहेगा तो मैं अपने बच्चों का पालन कैसे कर सकूँगा। अतः हे प्रभु! आप चाहे मुझे मार दें किन्तु मैं आपको अपनी नाव में किसी भी हालत में नहीं चढने दूँगा। यदि आप मेरी नाव के द्वारा ही नदी पार करना चाहते हैं तो पहले आप अपने चरणों को धोकर इनमें लगी धूल को हटा देने की अनुमति प्रदान कीजिये। अन्यथा मैं आपको नाव में नहीं चढने दूँगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

विशेष – 1. केवट की भक्तिभावना और उसके वाक्चातुर्य को कवि ने सुन्दर रूप दिया है।
2. अवतरण में अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है।
3. सवैया छन्द की गेयता प्रशस्य है।

(8)

पुरतें निकसी रघुवीर बधु धरि धीर दये दो मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनीं जलकी, पुट सूखि गये मधुराधर वै॥
फिरि बूझति हैं, चलनौ अब केतिक, पर्णकुटी करिहौं कित ह्वै ?
तिय की लखि आतुरता पिय की, अखियाँ अति चारु चली जल च्वै॥

शब्दार्थ – रघुवीर वधु=श्रीराम की पत्नि सीता। मग=मार्ग। डग द्वै=दो कदम। भाल=ललाट। कनीं=बूँद। पुट=परत। मधुराधर=सुन्दर ओठों के। बूझत=पूछती है। केतिक=कितनी। लखि=देखकर। चारु=सुन्दर। च्वैं=बहना।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'तुलसीदास' पाठ से अवतरित है जो तुलसीकृत ''कवितावली'' से लिया गया है। इसमें वन मार्ग में सीताजी की व्याकुलता का सुन्दर चित्रण किया है।

व्याख्या – कवि तुलसीदास वन मार्ग में सीताजी की थकावट पूर्ण व्याकुलता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जैसे ही वन गमन के लिये सीताजी ने प्रभु राम और लक्ष्मण के साथ अयोध्या नगरी के कुछ कदमों की ही दूरी पैदल-पैदल तय की थी कि उनके सुन्दर ललाट पर पसीने की बूँद झलकने लगी। सीताजी की अत्यधिक सुकोमलता के कारण अल्प परिश्रम से ही उनके माथे पर पसीना आने लगा और उनके मधुर ओठों की परत सूखने लग गई थी। इस प्रकार वन मार्ग में थोड़ी-सी दूर चलते ही सीताजी को थकान का अनुभव होने लगा। सीताजी ने कुछ ही समय पश्चात् प्रभु राम से पूछा कि हे स्वामी! अब हमें कितनी दूर और चलना है और हम अपनी पर्ण कुटी कहाँ पर बनाएँगे ?

तुलसीदास कहते हैं कि सीताजी की इस आकुलता को देखकर प्रभु राम की सुन्दर आँखों में अश्रुजल झलकने लगा। श्रीराम इस बात को सोचकर भावुक हो गये कि इतना-सा चलने पर सीता की यह हालत है तो चौदह वर्ष तक बनवास का मार्ग कैसे तय कर सकेगी ?

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में सीताजी की सुकोमलता और उनकी थकान युक्त आकुलता का सुन्दर चित्रण किया है।
2. अनुप्रास व स्वाभावोक्ति अलंकार का प्रयोग किया गया है।
3. सवैया छंद की गेयता भावानुरूप है।

(9)

जल को गये लक्खनु हे लरिका परिखौं प्रिय ? छाँह घरीक ह्वैं ठाढे।
पोछि पसेउ व्यारि करौ, अरु पाँय पखारिहौं भूभुरि-डाढे॥
तुलसी रघुवीर प्रिया श्रम जानि कै, बैठि बिलम्बलौं कंटक काढे।
जानकी नाह को नेहु लख्यौ, पुलको तनु वारि-विलोचन बाढे॥

शब्दार्थ – परीखौ=प्रतिक्षा करो। घरीक=कुछ पलों के लिये, थोड़ी देर के लिये। पसेउ=पसीना। व्यारि=हवा। पखारिहो=धोना। कंटक=काँटे। नाहको=नाथ को। नेहु=प्रेम। लख्यो=देखकर।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यावतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'तुलसीदास' नामक पाठ से लिया गया है जिसे तुलसी द्वारा विरचित 'कवितावली' के वनमार्ग चित्रण से लिया गया है।

व्याख्या – तुलसी दास कहते हैं कि जब वनमार्ग में सीताजी थक जाती हैं तो राम उनकी व्याकुलता को देखकर परेशान हो जाते हैं। सीताजी कुछ बहाना बनाकर वहाँ कुछ क्षणों के लिये रुक जाती हैं। श्रीराम सीताजी को थका हुआ देखकर बहुत समय तक अपने पैर से काँटा निकालने के बहाने वहाँ बैठ जाते हैं। इसी प्रसंग का वर्णन कवि आगे करते हुए कहते हैं कि सीता जी अपने थक जाने की बात प्रभु राम से नहीं कहती हैं और लक्ष्मण की प्रतीक्षा करने के बहाने कुछ समय के लिये वहीं पर रुक जाती हैं। वे अपनी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

थकान को छुपाने के लिये कहती हैं कि हे प्रिय ! लक्ष्मण अभी बालक हैं, वे जल लेने गये हैं अत: हमें पेड़ की छाँव में उनकी प्रतीक्षा कर लेनी चाहिये। इस दौरान मैं आपका पसीना पौंछकर हवा करूंगी और मार्ग की गर्म रेत से झुलसे हुए आपके पैरों को पौंछकर शीतल जल से धोऊँगी। सीता के वचनों को सुनकर राम जान गये कि वे मार्ग श्रम से थक गई हैं। राम भी वृक्ष की छाया में बैठकर काफी समय तक अपने पैर से काँटा निकालने का बहाना बना लेते हैं। तब सीताजी ने अपने प्रिय पति के मनोभावों को और अपने प्रति प्रेम को समझ गई और उनका शरीर रोमांचित हो गया। उनके प्रेम भाव को देखकर सीताजी की आँखों से अश्रुजल प्रवाहित होने लगा।

विशेष – 1. प्रस्तुत प्रसंग में श्रम परिहार के लिये संकोच व्यक्त किया गया है।

2. सीता और राम के परस्पर प्रेम की सुन्दर प्रस्तुति है।

3. अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकारों का प्रयोग है।

4. भाषा सरल एवं भावानुकूल है।

वनिता बनी स्यामल गौर के बीच,
बिलोकहुँ री सखि ! मोहिसी ह्वै।
मनुजोगु न कोमल, क्यों चलि हैं,
सकुचाति मही पद पंकज छूवै॥
तुलसी पुनि ग्राम बधू बिथकी,
पुलकी तन औ चले लोचन च्वैं॥
सब भाँति मनोहर मोहन रूप,
अनूप हैं भूप के बालक द्वै॥

शब्दार्थ – वनिता=स्त्री। विलोकहुँ=देखो। पद पंकज=कमल के समान कोमल। विथकी=व्याकुल।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के तुलसीदास नामक पाठ से लिया गया है जो तुलसीकृत 'कवितावली' के वन गमन प्रसंग से अवतरित है।

व्याख्या – कवि तुलसीदास कहते हैं कि 'वन गमन' के समय राह में ग्रामीण स्त्रियाँ राम, लक्ष्मण और जानकी के रूप सौन्दर्य और उनकी सुकोमलता को देखकर आश्चर्य चकित हो जाती हैं। एक स्त्री अपनी दूसरी सखी को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे सखी ! तुम श्यामवर्ण और गौरवर्ण वाले सुन्दर राजकुमारों के बीच में चल रही उस सुन्दर स्त्री को तो मेरी तरह से देखो। वह स्त्री ऐसे कठोर मार्ग में नंगे पैर पैदल चलने योग्य नहीं है। उसके पैर कमल के फूल के समान सुकोमल हैं जिन्हें वह इस कठोर धरती पर रखने में संकोच कर रही है। तुलसीदास कहते हैं कि उस स्त्री की बातों को सुनकर जब उसने भी सुकोमल और सुन्दर सीताजी को देखा तो वह रोमांचित हो उठी और व्यथित हो गई, उसकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लग गई तब वह करुणा पूर्वक कहने लगी कि महाराज दशरथ के ये दोनों राजकुमार सभी प्रकार से सुन्दर और अनुपम हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने सन्यासी रूप राम, लक्ष्मण और जानकी के अनुपम रूप सौन्दर्य व उनकी सुकोमलता का ग्रामीण स्त्रियों के माध्यम से वर्णन प्रस्तुत किया है।

2. ग्राम वधुओं के सात्विक भाव का उद्रेग प्रकट हुआ है।

3. अनुप्रास रूपक और प्रेय अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

(11)

रानी मैं जानी अयानी महा, पवि पाहन हुँ ते कठोर हियो है।
राजहुँ काज अकाजु न जान्यो, कह्यो तिय को जेहि कानि कियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ऐ, बिछुरें, कैसे प्रीतम लोग जियो है।
आँखिन में सखि ! राखिवे जोगु, उन्हें किमि कै बनवासु दियो है॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – अयानी=अज्ञान। पाहन=पत्थर। हियो=हृदय। पवि=वज्र। किमि=किस प्रकार। तिय=स्त्री। जोगु=योग्य।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के तुलसी कृत ''कवितावली'' का राम वन गमन का प्रसंग है जिसमें वन मार्ग में गाँवों की स्त्रियों के मन में राम, जानकी और लक्ष्मण के प्रति प्रेम भावना का सुन्दर चित्रण है।

व्याख्या – तुलसीदास एक ग्रामीण स्त्री के शब्दों में कहते हैं के हे सखी ! मैं मानती हूँ कि राम को वनबास दिलाने वाली कैकेयी बहुत ही मूर्ख हैं। उसका हृदय वज्र से भी अधिक कठोर है, किन्तु महाराज दशरथ भी प्रशासनिक कार्यों के प्रति अनजान हैं। उन्होंने भले-बुरे का भी अनुमान नहीं लगाया। पत्नी की बात मान कर इन मासूमों को चौदह वर्षों के लिये वन वास भेज दिया। इन तीनों सुन्दर राजकुमारों और सुकोमल रानी सीता को भेजने के बाद अयोध्या वासी कैसे जीवित रह रहे होंगे ? हे सखी ! इनका रूप सौन्दर्य तो सभी की आँखों में बसने योग्य है फिर इनको वन वास क्यों भेजा गया है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में महाराज दशरथ और रानी कैकेयी के दुष्कार्य की ग्राम वधुओं के माध्यम से निंदा दर्शायी गई है।

2. राम, सीता और लक्ष्मण के प्रति निष्ठा व प्रेमासक्ति प्रदर्शित की गई है।

3. अनुप्रास, यमक और काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर चित्रण किया गया है।

(12)

सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरछी सी भौंहें।
तून सरसन-बाण धरें, तुलसी बन मारग में सुठि सोंहें॥
सादर बारहिं बार सुभायँ, चितै तुम त्यौं हमरो मन मोहें।
पूछति ग्राम वधू सिय सौं, कहौ साँवरे से सखी रावरे कौहें ?

शब्दार्थ – उर=हृदय। बाहु=भुजा। विलोचन=नेत्र। तून=तरकश। सरासन=धनुष। सुठि=सुन्दर। रावरे=तुम्हारे।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के तुलसीदास नामक पाठ से अवतरित है जिसे तुलसीकृत 'कवितावली' के 'राम वन गमन' प्रसंग से लिया गया है। कवि तुलसीदास ने वन गमनोपरान्त सन्यासी राम के अलौकिक रूप सौन्दर्य और वन मार्ग में मिली ग्रामीण स्त्रियों के विनोद युक्त पावन स्नेहानुभूति का चित्रण किया है।

व्याख्या – एक ग्रामीण स्त्री सीताजी से पूछती है कि हे सखी ! जिनके सिर पर काले घुँघराले सुन्दर बालों की जटा है, विशाल हृदय और बड़ी-बड़ी भुजाएँ हैं, जिनके सुन्दर नेत्र लालिमा लिये हुए हैं, तिरछी भौंहें हैं, जिनके कंधे पर तरकश और हाथ में धनुष बाण हैं, जो वनमार्ग में विचरण करते हुए अत्यन्त शोभायमान लग रहे हैं, वे श्यामवर्ण कुँवर तुम्हारे क्या लगते हैं ? कृपा करके आप हमें यह बतायें कि वे कौन हैं और आपका उनके साथ क्या सम्बन्ध है ?

विशेष – 1. प्रस्तुत पद्यांश में प्रभु राम के सन्यास रूप के अलौकिक सौन्दर्य का चित्रण है।

2. ग्रामीण स्त्री के चातुर्य और उसकी जिज्ञासा को भी स्पष्ट किया गया है।

3. सब कुछ जानते हुए भी सम्बन्धों के संदर्भ में सीताजी से प्रश्न पूछना उनका विनोदपूर्ण प्रेम प्रदर्शन है।

4. वर्णावृत्ति से अनुप्रास, उदाहरण और भाविक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

(13)

सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने, सयानी है जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन, दे सैन, तिन्है समुझाइ कछु, मुसकाय चली ॥
तुलसी तेहि औसर सौहें सबै, अवलोकति लोचनलाहु अलीं।
अनुराग तड़ाग में भानु उदै, बिगसी मानो मंजुल कंजकली ॥

शब्दार्थ – बैन=वचन। सुधारस=अमृतमय। सयानी=चतुर। सैन=इशारा। औसर=अवसर। अली=सखी। लाहु=लाभ। भानु=सूर्य। विगसीं=खिल गई। मंजुल=सुन्दर। कंजु=कमल।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'तुलसीदास' पाठ से अवतरित है जो कवितावली का एक अंश है। वन गमन के समय ग्रामीण स्त्रियों व सीताजी के आपसी चातुर्य संवाद को कवि ने वर्णित किया है।

व्याख्या – ग्रामवधु द्वारा राम के सम्बन्ध में पूछे जाने वाले प्रश्न के अमृतमयी मधुर और सुन्दर वचनों को सुनकर सीताजी समझ गई कि यह स्त्री जितनी भोली है, उतनी चालाक भी है। सीताजी ने भी उसके प्रश्न का उत्तर देने के लिये अपने सुन्दर नैनों को तिरछा कर कुछ इशारा किया और समझाते हुए मुस्कुरा कर आगे बढ़ गईं। तुलसीदास कहते हैं कि उस समय उन सभी का सौन्दर्य देखने योग्य था। इस प्रकार के मुस्कराहट पूर्ण उत्तर देने की मुद्रा में सीता जी बहुत सुन्दर लग रही थीं और ग्राम वधुओं का सौन्दर्य भी देखते नहीं बन रहा था। एक स्त्री कहती हैं कि हमें तो हमारी आँखों का लाभ प्रभु का सौन्दर्य देखकर ही मिल गया।

वह दृश्य ऐसा लग रहा था मानो ''प्रेम रूपी ग्रामीण सरोवर में राम रूपी सूर्य के उदय होने पर सीता तथा ग्रामवधुएँ के मुख रूपी कमल प्रेमातिरेक में खिल गये हों।

विशेष – 1. सीताजी द्वारा अपने पति का नाम व सम्बन्ध न बताना तथा आँखों का इशारा करना भारतीय नारी लज्जा का प्रतीक है।

2. अनुप्रास, उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

(14)

सर चारिक चारु बनाइ कसें, कटि, पानि सरासनु सायकु लै।
बन खेलत रामु फिरै मृगया, 'तुलसी' छवि सो बरनै किमि कै॥
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी, मृग चौकि चकै चितवैं चित दै।
न डगै न भगै जियँ जानि सिलीमुख पंच धरै रति नायकु हैं॥

शब्दार्थ – सर=बाण। चारिक=चार। पानि=हाथ। सरासनु=धनुष। सायकु=बाण। मृगया=शिकार खेलना। सिलीमुख=बाण। पंच=पाँच।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'तुलसीदास' नामक पाठ से अवतरित है जो तुलसीकृत 'कवितावली' से लिया गया है। कवि ने शिकार खेलते हुए श्रीराम के सौन्दर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या – तुलसीदास कहते हैं कि श्रीराम शिकार खेलने के लिये जब जंगल में गये तो उन्होंने चार बाण अपनी कमर पर अच्छी तरह से बाँध रखे थे और एक बाण धनुष के साथ अपने हाथ में रख लिया था। उस समय के राम रूप सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता है अर्थात् उनका सौन्दर्य उस समय अलौकिक और अवर्णननीय था। वे वन में शिकार की तलाश में घूम रहे थे। उनके अलौकिक सुन्दर रूप को देखकर मृग और मृगी आश्चर्य में हो गये और अपलक प्रभु राम को देखते रहे। वे न तो भयभीत होकर भाग रहे थे और न हिल-डुल रहे थे। राम ऐसे लग रहे थे मानो पंचशर धारी कामदेव स्वयं वहाँ प्रकट हो गये हों।

विशेष – 1. शिकारी रूप में राम के अद्भुत रूप सौन्दर्य का वर्णन प्रस्तुत किया है।

2. राम के सौन्दर्य को पंचशरधारी रतिपति कामदेव के रूप में भी प्रस्तुत किया है।

3. अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान अलंकारों का सुन्दर प्रयोग है।

4. सवैया छंद की पद योजना गेय और प्रशस्य है।

(15)

विन्धि के बासी उदासी तपी, व्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतमतीय तरी ''तुलसी'' सो कथा सुनि भे मुनिबृन्द सुखारे॥
है है सिला सब चन्द्र मुखी परसें पद मंजुल कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायक जू! करुणा करि काननु को पगु धारे॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – विन्धि के वासी=विन्ध्याचल पर्वत पर रहने वाले। ह्वै है=वन जायेगी। चन्द्रमुखी=चन्द्रमा के समान मुख वाली। कानन=वन में।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के तुलसीदास नामक पाठ से अवतरित है जिसे तुलसीकृत 'कवितावली' से उद्धृत किया है। प्रभु राम के विन्ध्याचल पर्वत पर पहुँचने की सूचना पाकर वहाँ तपस्वियों की प्रसन्नता का अति सुन्दर भावात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या – विन्ध्याचल पर रहने वाले, उग्र व्रतों को धारण करने वाले घोर तपस्वी, सन्यासी, ऋषि-मुनी आदि स्त्रियों के बिना बड़े दु:खी रहते थे। बिना पत्नियों के वे सभी व्यथित थे। जब उन्होंने प्रभु श्रीराम के वहाँ आगमन का समाचार सुना तो वे अत्यधिक प्रसन्न हो गये। उन्होंने ये भी समाचार सुने थे कि उनकी चरण रज से शिला भी सुन्दर नारी के रूप में परिवर्तित हो गई। उनके मन के ये भाव थे कि विन्ध्याचल तो शिलाओं से ही बना हुआ है, यदि राम यहाँ पधार रहे हैं तो यह उनकी हम पर विशेष कृपा है, क्योंकि उनके चरण स्पर्श से पर्वत की सभी शिलाएँ चन्द्रमुखी स्त्रियाँ बन जाएंगी तो इस पर्वत प्रदेश में सुन्दर नारियों का अभाव नहीं रहेगा और हमें भी स्त्री-सुख मिल सकेगा।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में शिष्ट हास्य की छटा व्याप्त है।

2. अनुप्रास, रूपक और परिणाम अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

3. तुलसीदास ने हास्यरस का केवल एक ही सवैया लिखा है।

4. भाषा सीधी और प्रभावपूर्ण गेयता का गुण लिये हुए है।

''सुन्दर काण्ड''

(1)

बालधी बिसाल बिकराल, ज्वाल जाल मानो,
लंक लीलिवे को काल रसना पसारी है।
कीधौं व्योम-बीथिका भरे हैं भूरि धूम केतु,
बीर रस बीर तरवारि में उघारी है।
तुलसी सुरेस चापु, कीधौं दामिनी कलापु,
कीधौं चली मेरु ते क्रसानु सरि भारी है।
देखे जातुधान-जातुधानी अकुलानी कहै,
काननु उजार्‌यो अब नगरु प्रजारि है।

शब्दार्थ – बालिधि=बालों वाली पूँछ। रसना=जीभ। व्योम बीथिका=आकाश मार्ग। सुरेसु=इन्द्र। कलापु=समूह। सरि=नदी। काननु=वाटिका। कलापु=समूह। कृसानु=आग। जातु धान=राक्षस। प्रजारि=जलाना।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'तुलसीदास' पाठ से अवतरित है जो तुलसीकृत 'कवितावली' के सुन्दरकाण्ड का एक भाग है। कवि ने संकटमोचन पवनपुत्र हनुमान द्वारा लंका दहन का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या – जब लंकापति रावण के आदेश पर श्रीहनुमानजी की पूँछ में आग लगा दी गई तो महाबली पवनपुत्र ने अपना विशाल रूप धारण कर लिया। उस समय का सजीव चित्रण करते हुए तुलसीदास जी कहते हैं कि उस समय रामदूत हनुमानजी की बालों वाली विशाल पूँछ भयंकर और प्रचंड ज्वाला से युक्त ऐसी लग रही थी मानो सम्पूर्ण लंका को निगल जाने के लिये स्वयं महाकाल ने अपनी लाल जीभ फैला रखी हो अथवा ऐसी लग रही थी मानो आकाश मार्ग में एक साथ बहुत से पुच्छल तारे (धूमकेतु) उदित हो गये हैं अथवा ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वीररस ने ही मूर्त रूप धारण कर रक्त रंजित तलवार से प्रहार करने प्रारम्भ कर दिये हों अथवा ऐसा लग रहा था मानो प्रचण्ड अग्नियुक्त इन्द्रधनुष हो अथवा बिजलियों का समूह हो अथवा मेरुपर्वत ने अग्नि की नदी प्रवाहित करनी प्रारम्भ कर दी हो। उस भीषण अग्नि से जलती हुई ज्वाला को देखकर सभी राक्षस और राक्षसियाँ हा-हाकार करने लगे और कहने लगे कि यह बन्दर अब तक तो अशोक वाटिका को ही उजाड़ कर आया है और अब लगता है सम्पूर्ण लंका को ही भस्मसात् कर देगा।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष – 1. लंकादहन के समय महावीर बजरंगबली के रौद्र रूप का अत्यंत सुन्दर और सजीव चित्रण किया है।

2. राक्षस और राक्षसियों के भय तथा हनुमानजी के पराक्रम का सुन्दर वर्णन है।

3. अनुप्रास और संदेह अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।

4. कवित्त छन्द की पदयोजना और गेयता अत्यंत प्रभावपूर्ण है।

(2)

हाट-बाट, कोट-ओट, अटनि-अगार, पौरी,
खोरि-खोरि, दौरि-दौरि दीनी अति आगि है।
आरत पुकारत, सँभारत न कोउ काहूँ,
व्याकुल जहाँ सो तहाँ लोक चले भागि हैं॥
बालिधी फिरावै, बार-बार झहरावै झरैं,
बुंदिया-सी, लंक पघिलाई पाग-पागि है।
'तुलसी' विलोकि अकुलाने जातुधानी कहै,
चित्रहुं को कपि सों निसाचरु न लागि है॥

शब्दार्थ – हाट-बाट=हाट-बाजार। कोट-ओट=कंगुरों और मकानों। अटनि-अगार=भवनो और अट्टालिकाओं। आरत=आर्त, करुण। पघिलाई=पिघला कर। चित्रहुं=चमत्कारी। बालिधी=बालों वाली पूँछ। निसाचरु=राक्षस।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'तुलसीदास' पाठ से अवतरित है, जो तुलसीकृत 'कवितावली' के लंकादहन प्रसंग से अवतरित है। कवि तुलसीदास ने लंका दहन के समय लंका के राक्षसों की भयभीत स्थिति का चित्रण किया है।

व्याख्या – तुलसीदास जी कहते हैं कि महावीर हनुमानजी ने लंका के सारे हाट-बाजारों, भवनों-मकानों, कंगुरों-आँगनों, घरों-अट्टालिकाओं और गली-गली में दौड़-दौड़ कर आग लगा दी। उस भयानक अग्नि काण्ड से भयभीत होकर कुछ राक्षस करुण निवेदन करने लगे, कुछ अपनी रक्षा के लिये पुकारने लगे किन्तु वहाँ पर कोई भी किसी को सहारा नहीं दे रहा था अर्थात् सभी लोग अपनी जान बचाने में उधर-उधर सहारा ढूँढने में लगे हुए थे। हनुमान जी अपनी प्रज्वलित पूँछ को बार-बार घुमा-फिरा कर आग की लपटें फैला रहे थे। उस समय सारी लंका पिघल-पिघल कर स्वर्ण द्रव्य में परिवर्तन होने लगी थी। तुलसीदास जी कहते हैं कि उस भीषण अग्निकाण्ड को देखकर लंका की सभी राक्षसियाँ अत्यधिक व्याकुल हो रही थीं। उन सभी को उस समय हनुमानजी कोई साधारण बानर न लग कर अलौकिक देवशक्ति लगने लगे थे। सभी लंकावासी राक्षस और राक्षसियाँ हनुमानजी द्वारा किये गये अग्निकाण्ड से भयभीत हो गये थे।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में लंकादहन का रोमांचक दृश्य चित्रित किया गया है।

2. अवतरण में हनुमानजी के अलौकिक पराक्रम का प्रभावशाली वर्णन है।

3. अनुप्रास (वर्णावृति से) वीप्सा (शब्दावृत्ति से) उपमा और स्वाभावोक्ति अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

4. कवित्त छन्द की पद योजना, नाद सौन्दर्य और गेयता सुन्दर है।

6.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

6.2.1 अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. तुलसीदास के बचपन का नाम क्या था और वह कैसे पड़ा?

उत्तर – तुलसीदास के बचपन का नाम ''रामबोला'' था। नवजात शिशु तुलसीदास जैसे ही अपनी माँ के गर्भ से संसार में अवतरित हुए तो जहाँ बालक जन्म लेते ही रोता है वहीं उनके मुख से ''राम'' शब्द निकला था। गर्भगृह में उपस्थित महिलाओं को यह आश्चर्य हुआ कि वह ''रामबोला''। यह खबर सर्वत्र हवा की भाँति फैल गई और इनका नाम ''रामबोला'' पड़ गया था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न-2. तुलसीदास की कौन-सी रचना महाकाव्य मानी गई ?

उत्तर – 'रामचरितमानस' को महाकाव्य की श्रेणी में रखा जाता है।

प्रश्न-3. तुलसीदास ने रामचरितमानस कब लिखना प्रारम्भ किया और यह कब पूर्ण हुई ?

उत्तर – 'रामचरित्तमानस' की रचना चैत्र शुक्ल नवमी, मंगलवार संवत् 1631 में प्रारम्भ हुई और यह संवत् 1633 में तैयार हो गई।

प्रश्न-4. तुलसीदास का जन्म कब और कहाँ हुआ तथा इनके माता-पिता का नाम क्या था ?

उत्तर – तुलसीदास का जन्म 1598 में राजापुर में हुआ, इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी था।

प्रश्न-5. तुलसीकृत 'विनय-पत्रिका' का रचनाकाल क्या था तथा इसका नामकरण कैसे सार्थक हुआ ?

उत्तर – 'विनय-पत्रिका' का रचना काल सं. 1678 माना जाता है। इसमें कलिकाल के विरुद्ध राज दरबार में तुलसी द्वारा प्रार्थना की गई है तथा इसमें संस्कृत गर्भित भाषा ब्रज भाषा है। इस कृति में 300 पद संकलित हैं।

प्रश्न-6. तुलसीकृत 'कवितावली' का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

उत्तर – तुलसीकृत ''कवितावली'' का रचना काल संवत् 1665 वि. के बाद का माना गया है। यह एक 'गीति' काव्य है। इसमें कवित्त, सवैया, धनाक्षरी, छप्पय और 'झूलना' आदि छंदों का प्रयोग हुआ है और रामचरितमानस के मुख्य-मुख्य प्रसंगों का वर्णन किया गया है।

प्रश्न-7. गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित कौन-कौन-सी रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं ?

उत्तर – तुलसीकृत रचनाएँ जिनमें – 1. रामचरितमानस, 2. कवितावली, 3. गीतावली, 4. विनय-पत्रिका, 5. कृष्ण गीतावली, 6. दोहावली, 7. पार्वती-मंगल, 8. जानकी-मंगल, 9. रामलला नहछू, 10. हनुमान बाहुक, 11. वैराग्य संदीपनि, 12. बरवै रामायण, 13. रामाज्ञा प्रश्न आदि हैं।

प्रश्न-8. तुलसीदास की भक्ति-भावना किस प्रकार की है और इन्होंने अपने आराध्य के कितने रूप अपने काव्य में प्रस्तुत किये हैं ?

उत्तर – तुलसी की भक्ति दास्य भाव की रही है, इन्होंने राम को परमब्रह्म के रूप में, विष्णु रुप में और दशरथ नन्दन मर्यादा पुरुषोत्तम राम के रूप में प्रस्तुत किया है।

प्रश्न-9. तुलसीदास को 'लोकनायक' क्यों माना गया है ?

उत्तर – क्योंकि तुलसीदास ने सम्पूर्ण लोक के विविध पक्षों को सामने रखकर समन्वय का प्रयास किया था।

प्रश्न-10. तुलसीकृत 'रामचरितमानस' को 'मानसरोवर' की संज्ञा किस प्रकार दी है ?

उत्तर – तुलसीकृत काव्य में नवरस इसके जलचर हैं, संतसभा अमराई है, शम, यम और नियम फूल हैं, ज्ञान फल है और भक्ति का आनन्द उसका रस है। इस प्रकार मानस भी एक मानसरोवर का स्वरूप है।

प्रश्न-11. तुलसीकृत 'रामचरितमानस' का लक्ष्य क्या है ?

उत्तर – तुलसीकृत 'रामचरितमानस' का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – चारों प्रकार के पुरुषार्थों की प्राप्ति है और इसमें लोक-मंगल की भावना समाहित की गई है।

प्रश्न-12. ''जानकी नाह को नेहु लख्यो.....''। प्रियतम राम के स्नेह को देखकर सीता को कैसी अनुभूति हुई ?

उत्तर – जब सीताजी ने यह जाना कि उनके प्रियतम राम उन्हें थका हुआ जानकर काफी देर तक अपने पैर का कांटा निकालने का बहाना बना रहे हैं, तो उनका मन रोमांचित हो उठा और उनके नेत्रों से प्रसन्नता व प्रेम के मिश्रित अश्रु-जल का प्रवाह होने लगा। उन्हें सरस प्रेम की अनुभूति हुई।

प्रश्न-13. ''सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने, सयानी है जानकी जानी भली।'' सीता ने ग्रामवधु को कैसा समझा और उसे कैसे संतुष्ट किया ?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उत्तर – सीता ने समझ लिया कि ग्रामवधु चतुर है तो उन्होंने अपने सुन्दर नेत्रों को तिरछा कर इशारा किया और राम के साथ सम्बन्ध को बता दिया कि वे उनके प्रियतम हैं।

प्रश्न-14. **''तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानि कहै,**
चित्रहूँ के कपि सों निसाचरु न लागि है॥''

व्याकुल सभी राक्षस-राक्षसियों ने क्या सोचना प्रारम्भ कर दिया ?

उत्तर – अग्निकाण्ड में झुलसी हुईलंका नगरी को देखकर राक्षस और राक्षसियाँ अकुलाने लगे। वे हनुमान को सामान्य वानर न समझकर आश्चर्यकारी और अलौकिक शक्तिपुंज समझने लगे।

प्रश्न-15. ''देखा जातुधान-जातुधानी अकुलानी कहै'', हनुमान की प्रचण्ड अग्नि की ज्वालाओं से युक्त पूँछ को देखकर राक्षसों को क्या लगा ?

उत्तर – रामदूत हनुमान के विध्वंसकारी प्रचण्ड रूप को देखकर सभी राक्षस व राक्षसियाँ सोचने लगी कि अभी तो इस वानर ने अशोक वाटिका ही उजाड़ी है, किन्तु अब यह सम्पूर्ण लंका का ही विध्वंस कर देगा।

प्रश्न-16. तुलसीदास में सेवक और सेव्य भाव की भक्ति को ही क्यों अपनाया था ? स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – तुलसीदास के अनुसार ज्ञान कठिन है और भक्ति सरल है। इसीलिये उन्होंने दास्य भाव को अपनाया था।

6.2.2 लघुत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. राम वन गमन के समय ग्राम वधुओं की मनोभावना को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – अयोध्यापति महाराज दशरथ ने अपनी पत्नी कैकेयी के द्वारा माँगे गये वरदानानुसार अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को चौदह वर्ष का वनवास दे दिया था। राम ने रघुकुल की मर्यादाओं का सम्मान करते हुए पित्राज्ञा का पालन किया और वन गमन स्वीकार कर आदर्श पुत्र होने का परिचय दिया। मिथिलेश कुमारी सीता ने भी राम के साथ चौदह वर्ष की लम्बी अवधि वनवास में बिताने का दृढ़ संकल्प कर लिया, साथ ही लक्ष्मण भी अपने भाई के अटूट प्रेम-बन्धन को नहीं तोड़पाये और वे भी उनके साथ वन में प्रस्थान कर गये। जब रास्ते में गाँववासियों ने फूलों को काँटों के पथ पर चलते हुए देखा तो प्रभु की लीला पर आश्चर्य व्यक्त किया तथा ग्रामवधुओं ने महाराज दशरथ की योग्य विचार धारा और प्रभावशाली राज व्यक्तित्व पर अनेक प्रकार के सवालिया निशान लगाये। ग्रामवधुओं ने तो यहाँ तक कह दिया कि राजा दशरथ की विचारधारा अज्ञानयुक्त है। उन्होंने पत्निमोह में आकर राम, सीता और लक्ष्मण जैसे स्वरूपवान व मासूम पुत्रों व पुत्रवधु को वन-वन भटकने का आदेश दे दिया। ग्रामवधुओं ने कहा कि उन तीनों की सौन्दर्य छवि तो सदैव आँखों में बसाये रखने योग्य है और नयनाभिराम है।

प्रश्न-2. तुलसीदास के 'बाललीला वर्णन' की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

उत्तर – गोस्वामी तुलसीदास ने 'कवितावली' में महाराज दशरथ के चारों पुत्रों की 'बाल-लीला' का मनमोहक और प्रभावशाली वर्णन किया है। उन्होंने उनके रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए मह राज दशरथ और तीनों रानियों की आत्म प्रसन्नता को भी अलंकृत ढंग से चित्रित किया है। चारों पुत्रों की बाल छवि का वर्णन कर उनके वस्त्रों और आभूषणों की शोभा को भी अंकित किया है। तुलसीदास ने यों तो चारों ही पुत्रों – राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के रूप सौन्दर्य का सुन्दर चित्रण किया है किन्तु राम का रूप सौन्दर्य उनका बाल चापल्य और उनकी बाललीला तुलसी की पैनी दृष्टि का बिन्दु रही। दशरथ नन्दन राम कभी तो चन्द्रमा को खिलौने के रूप में मांगने की जिद करते हैं और कभी उसके प्रतिबिम्ब मात्र से डर जाते हैं। वे हठ करके इच्छित वस्तु को प्राप्त कर ही लेते हैं। तुलसी ने चारों पुत्रों के बाल-स्वभाव और उनके बाल-सौन्दर्य को मनमोहक ढंग से अलंकृत कर रचनाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है, साथ ही बालक राम की छवि को सदैव अपने मन-मन्दिर में बसाये रखने की कामना भी व्यक्त की है। पद योजना, उनकी गेयता, नाद सौन्दर्य, अलंकार योजना और बाल-मनोविज्ञान की दृष्टि से तुलसी के ''बाल लीला वर्णन'' में महत्त्वपूर्ण आकर्षण है।

6.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. ''भक्ति कालीन कवियों में कवि तुलसीदास हिन्दी साहित्य रूपी व्योम मण्डल के सोलहों कलाओं से युक्त दैदीप्यमान चाँद हैं।'' इस कथन की विवेचना कीजिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

अथवा

''सूर-सूर तुलसी ससि'' कथनानुसार तुलसीदास का भक्तिकालीन कवियों में अति महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है।'' इस कथन की पुष्टि कीजिये।

अथवा

''भक्तिकाल के कवियों में तुलसीदास का सर्वोच्च स्थान है।'' इस कथन की सोदाहरण व्याख्या कीजिये।

उत्तर – गोस्वामी तुलसीदास का नाम हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन युग के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों से अंकित है। ये उन महान् कवियों में अग्रणी हैं, जिन्होंने हिन्दी साहित्य को अन्य समृद्ध शास्त्रों की कोटि में रखने का पुनीत कार्य किया है। तुलसी का आविर्भाव ऐसे समय में हुआ जब भारतीय समाज में अनास्था, अव्यवस्था एवं हीनभावना पनपी हुई थी। उस समय समाज में भक्ति और धर्म को लेकर अनेक वाद चल रहे थे। समाज को ऐसे महापुरुषों की आवश्यकता थी जो धर्म, भक्ति, ज्ञान, कर्म, लोकहित एवं शासन मर्यादा में समन्वय स्थापित करके लोक-कल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सके। महान् कवि तुलसीदास उस युग के लोकनायक महात्मा रूप में सामने आये और ये समाज की हर आवश्यकता की कसौटी पर खरे उतरे।

तुलसीदास का बचपन स्नेह शून्य वातावरण में निकला क्योंकि बचपन में ही उनके माता-पिता का देहान्त हो गया था। ये सुन्दर और हृष्टपुष्ट गौर वर्ण आकर्षण से युक्त थे। इनका विवाह एक अति रूपवान कन्या 'रत्नावली' के साथ सम्पन्न हुआ। 'रत्ना' के रूप सौन्दर्य में तुलसी इतने मग्न हो गये कि लोक-लाज और सामाजिक मान-मर्यादाओं की सीमा-रेखा की भी इन्होंने परवाह नहीं की थी। 'रत्ना' इनके प्रेमदिवाने रूप से बहुत परेशान हो गई थी, यहाँ तक कि कई बार रत्ना को लोक परिहास का कारण बनना पड़ा। एक दिन रत्ना इन्हें क्रोध में आकर छोड़कर अपने मायके में आ गई किन्तु तुलसी रत्ना को खोजते हुए देर-रात को उसके मायके में चले गये। इस पर रत्ना ने उन्हें प्रताड़ित किया और काफी लज्जित भी किया। इस पर तुलसी का पत्नी प्रेम; रामानुराग में बदल गया। तत्पश्चात् इन्होंने स्वामी नरहरिदास से दीक्षा लेकर काशी में समस्त निगमागमों की शिक्षा ग्रहण की। ज्ञान प्राप्ति के बाद अपने आराध्य का स्तवन करते हुए जिन-जिन कृतियों की रचना की वे हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'अमर कृतियाँ' बन गईं। वस्तुत: तुलसीदास अपने युग के श्रेष्ठ समाज सुधारक बन गये। ये सामाजिक व्यवस्था को उचित आदर्शों से मण्डित करना चाहते थे। इनके व्यक्तित्व में उच्च कवित्व-शक्ति के साथ-साथ लोक-कल्याण की भावना अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक आलोकपूर्ण दिखाई देती थी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि ''भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि यदि किसी को कह सकते हैं तो इसी महानुभाव को कहेंगे।''

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने तुलसीदास को ''असाधारण प्रतिभा युक्त कवि और लोकनायक महात्मा'' कहा है।

मायादास ने तुलसी को 'कलिकाल का वाल्मीकि' कहा है। स्मिथ ने इन्हें ''मुगल काल का सबसे बड़ा कवि'' माना है। डॉ. ग्रियर्सन ने तुलसीदास को ''महात्मा बुद्ध के बाद सबसे बड़ा लोकनायक'' माना है। ग्रियर्सन ने तो यहाँ तक कहा है कि तुलसीकृत रामायण तो ''भारत का बाइबल'' है।

''..............लोकनायक वही हो सकता है, जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में परस्पर विरोधी नाना संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचार निष्ठाएँ और विचार-पद्धतियाँ प्रचलित हैं। महात्मा बुद्ध समन्वयकारी थे, गीता में भी समन्वय की चेष्टा है और महात्मा तुलसी भी समन्वयकारी थे।''

नि:संदेह तुलसीदास एक सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व के धनी, उच्च कोटि के साहित्यकार, उत्तम कवि, अनन्य समाज सुधारक और भारतीय संस्कृति के अग्रदूत थे। उन्होंने अपने आराध्य मर्यादा पुरुषोत्तम राम की समस्त युगीन मान्यताओं को अपनाकर व्यापक साहित्य सृजन किया।

महात्मा तुलसीदास की सर्वश्रेष्ठता में –

1. रचनात्मक कार्यों की व्यापकता – यद्यपि तुलसीकृत साहित्य काफी व्यापक माना गया है तथापि साहित्यकार व अन्य विद्वानों ने इनके निम्नलिखित ग्रंथों को प्रामाणिक माना हैं –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

1. रामचरितमानस। 2. रामललानहछू।
3. वैराग्य संदीपनि। 4. जानकी मंगल।
5. पार्वती मंगल। 6. बरवै रामायन।
7. रामाज्ञा प्रश्न। 8. कवित वली।
9. गीतावली। 10. दोहावली।
11. श्रीकृष्ण गीतावली। 12. विनय पत्रिका।
13. हनुमान बाहुक।

प्रस्तुत ग्रंथों में रामचरितमानस तुलसी की कीर्ति का स्तम्भ मानी गई है। ऐसा माना जाता है कि 'रामचरितमानस' के निर्माण के लिये ही देवों ने स्वर्ग से तुलसीदास को पृथ्वी पर अवतरित किया था। ये महर्षि वाल्मीकि के अवतार माने गये हैं। उस समय पृथ्वी पर घोर कलियुग का प्रभाव बढ़ता जा रहा था और कलियुग ने अपने प्रभाव से सम्पूर्ण मानव जाति को विकृत बना दिया था। देवतागण यह जानते थे कि पृथ्वी पर कलियुग का प्रभाव तुलसी को भी नहीं छोड़ेगा, इस दृष्टि से देवों ने पृथ्वी पर राम भक्त हनुमान को तुलसी के सुकृत में आने वाली बाधाओं को दूर करने और उनकी रक्षा करने के आशय से उनके साथ भेजा था। ऐसा आध्यात्म विचार है। यह भी माना जाता है कि कलियुग का प्रभाव कम करने के लिये रामचरितमानस को इतना सरल और सुरीला रूप दिया है कि जन-साधारण इसे आसानी पूर्वक पढ़कर आत्मसात् कर सकें। ''कलियुग केवल नाम आधारा'' के आधार पर कहा जाता है कि रामायण (रामचरितमानस) का श्रद्धा पूर्वक पठन ही कलियुग के प्रभाव से मानवगुणों को बचाया जा सकता है।

हिन्दी साहित्य में तुलसीदास का आविर्भाव एक दैविक चमत्कार ही है। विषय की व्यापकता, काव्य सौन्दर्य और भाषा की परिमार्जित दृष्टि से तुलसी की कृतियाँ सर्वोत्कृष्ट हैं।

2. जीवन का सर्वांगीण चित्रण – भक्तिकालीन अधिकतर कवि और साहित्यकार एकांगी क्षेत्रों की काव्य रचनाओं में ही लीन रहे किन्तु तुलसीदास ने मानव जीवन के सभी पक्षों एवं व्यापक परिवेश का चित्रण किया है। उन्होंने अपने आराध्य राम के जीवन के व्यापक आदर्शों को अपनाकर समस्त उत्तरी भारत के जन-मानस को राम मय बना दिया। भक्ति के साथ-साथ उन्होंने लोकजीवन को भी अपने काव्य का विषय बनाया। इन्होंने यद्यपि सब कुछ 'स्वान्तः सुखाय' लिखा तथापि व्यक्तिगत साधना के साथ लोक-धर्म का भी निर्वाह किया है। कविता उनकी साधना है और भक्ति उनका साध्य है। वे भक्ति भावना द्वारा लोक-मंगल की स्थापना करना चाहते थे। यही कारण था कि उन्होंने अपने आराध्य मर्यादापुरुषोत्तम राम के आदर्श चरित्र की प्रतिष्ठा करके अपने काव्य में मानव के सर्वांगीण जीवन का चित्रण किया है और आदर्श समाज, आदर्श राज्य की कल्पना प्रस्तुत की है।

3. विविध आदर्शों की स्थापना – तुलसीदास ने जहाँ ''स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा'' कहकर आत्मनिष्ठ भक्ति-भावना का परिचय दिया है वहीं वे लोक-संग्रह की भावना से भी ओत-प्रोत थे। उनके मानस में अनेक पात्रों के द्वारा जिन नैतिक मूल्यों की स्थापना की गई है, उनसे जन-साधारण का मनोबल बढ़ा है। तुलसी के राम शील, सौन्दर्य और शक्ति की प्रतिमूर्ति हैं। वे जन-जन के आराध्य और रक्षक हैं। यही कारण है कि तुलसीदास द्वारा विरचित 'रामचरितमानस' की रामकथा चार-सौ वर्षों से भी अधिक समय से आज तक मानव को आह्लादित किये हुए है। अधर्म पर धर्म की विजय, अज्ञान पर ज्ञान की स्थापना, रावणत्व पर रामत्व का प्रभाव इनका मूल लक्ष्य रहा है। उनके साहित्य में समकालीन समाज मुखरित होता है। आज भी उसमें चित्रित आदर्शों से हमारे सामाजिक, पारिवारिक और व्यक्तिगत जीवन को आलोक प्राप्त होता है। उन्होंने आदर्श राज्य के साथ आदर्श पिता, आदर्श पुत्र, आदर्श पत्नी, आदर्श भाई, आदर्श भक्त, आदर्श मित्र उनकी अप्रतिम भावना की परिचायक है।

4. बहुमुखी प्रतिभा के धनी – ''तुलसीदास श्रेष्ठ कवि थे, समाज सुधारक थे, परम भक्त थे, प्रकाण्ड पण्डित थे, अच्छे गायक थे, लोकनायक और भविष्य के सृष्टा थे।''

''तुलसीदास ने सब ओर से समता की रक्षा करते हुए अद्वितीय काव्य की रचना की जो अब तक उत्तर भारत का मार्गदर्शक है और उस दिन भी रहेगा जब नवीन भारत का जन्म हो गया होगा।'' वास्तव में तुलसीदास हिन्दी साहित्य के ऐसे महान् कवि हुए हैं जिन्होंने धर्म और संस्कृति, समाज और साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में भारतीय जनता का सफल नेतृत्व किया है। तुलसी सच्चे संत, निश्छल भक्त, प्रखर उपदेष्टा, सुयोग्य चिन्तक और दूरदृष्टि थे। उन्होंने काव्य में विभिन्न अंगों-उपांगों को अपनाकर अवधी और ब्रज भाषा में काव्य रचना की और जीवन से साहित्य को सम्प्रक्त बनाकर अपनी बहुमुखी काव्य प्रतिभा एवं लोक व्यवहार का परिचय दिया।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

जहाँ एक ओर तत्कालीन लोक जीवन की मान्यताएँ एवं लोक गीतों की मंगलमयी आस्थाएँ उनके काव्य में मुखरित होती हैं वहीं दूसरी ओर शास्त्रों और दार्शनिक तत्वों की भी विवेचना दिखाई देती हैं।

5. समन्वयवादी विचारधारा – आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने सही लिखा है कि ''तुलसीदास का सम्पूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। लोक और शासन का समन्वय, ग्रार्हस्थ्य और वैराग्य का समन्वय, भक्ति और ज्ञान का समन्वय, भाषा व संस्कृति का समन्वय, सगुण और निर्गुण का समन्वय, पाण्डित्य और अपाण्डित्य का समन्वय उनके प्रसिद्ध काव्य 'रामचरितमानस' के प्रारम्भ से अन्त तक स्वतः परिलक्षित होता है।'' समन्वय स्थापित करने की उनमें अथाह शक्ति थी। तुलसी मानते थे कि समन्वय का अर्थ कुछ झुकना और कुछ झुकाना होता है। तुलसीदास अनेक स्तरों पर रह चुके हैं। उन्होंने विभिन्न पुराणों और शास्त्रों का अध्ययन किया। तुलसीदास के सामने समकालीन समाज की एक महान् चुनौति थी, जिसे उन्होंने स्वीकार किया जो आज तक हिन्दी साहित्य के इतिहास में अमिट है और वह समन्वय की ही चुनौती थी।

महाभारत काल में कृष्ण ने ज्ञान-कर्म-भक्ति के समन्वय से तत्कालीन समाज का मार्गदर्शन किया। महात्मा बुद्ध ने अहिंसा, सत्य और शील का समन्वय किया तथा तुलसीदास ने भारत की विभिन्न विचारधाराओं, साधनाओं, विरोधी संस्कृतियों, विभिन्न जातियों, जीवन और साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में समन्वय स्थापित किया।

निष्कर्ष – गोस्वामी तुलसीदास भक्तिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। वे सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य जगत् में अप्रतिम माने जाते हैं। उन्होंने एक ऐसा महान् साहित्य रचा कि भारतवासी कभी भी उऋण नहीं हो सकते हैं। तुलसी का काव्य-प्रदेय अनुभूतिमय एवं उदात्त है। तुलसीदास को हिन्दी साहित्य का ही नहीं अपितु विश्वसाहित्य में मूर्धन्य कलाकार कह दिया जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

प्रश्न-2. तुलसीदास की काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

अथवा

तुलसी के काव्य में कलापक्ष और भावपक्ष को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – माँ सरस्वती के पुनीत आशीर्वाद के धनी कवि तुलसीदास हिन्दी साहित्य के लिये एक वरदान माने गये हैं। भारतीय जन मानस पर जितना अधिक प्रभाव उनके काव्य का पड़ा है उतना किसी अन्य दिग्गज कवि के काव्य का नहीं। बचपन में इनकी माता हुलसी और पिता आत्माराम इन्हें हमेशा हमेशा के लिये छोड़ कर चले गये थे इसलिये इनका बचपन वात्सल्य शून्य व्यतीत हुआ। मुनिया नामक दासी ने इनको पाल पोश कर बड़ा किया। इनका विवाह 'रत्नावली' नामक सुन्दरी के साथ सम्पन्न हुआ। तुलसी 'रत्ना' के रूप सौन्दर्य के इतने दीवाने थे कि इन्हें सामाजिक मान-मर्यादाओं और लोक लाज का भी ध्यान नहीं रहा और ये समाज में परिहास का कारण बन गये। परिणाम स्वरूप इनको रत्ना के द्वारा खूब लज्जित किया गया और वही लज्जा रामभक्ति के प्रति अनुराग का निमत्त बन गई। तत्पश्चात् तुलसी की प्रतिभा उत्तरोत्तर प्रखर होती चली गयी। इस प्रकार तुलसी की काव्य साधना भक्तिभावना का प्रतिफल मानी जाती है। उन्होंने अपने साहित्य से हिन्दी का जो गौरव बढाया वह इतना सम्माननीय है कि हिन्दी साहित्य का समाज सदैव नतमस्तक और ऋणी रहेगा।

भावपक्ष में तुलसीदास का काव्य –

तुलसीदास का राम के प्रति विशेष श्रद्धाभाव था। उन्होंने राम को तीन रूपों में प्रस्तुत किया है – परम ब्रह्म के रूप में, विष्णु के रूप में और दशरथ के पुत्र के रूप में। दशरथनन्दन राम में तुलसी ने शक्ति, शील और सौन्दर्य की प्रतिष्ठा की। तुलसीदास ने राम के मानव रूप में विष्णुत्व और ब्रह्मत्व की एक साथ स्थापना की और अपनी भक्ति भावना का प्रासाद खड़ा किया है। उनकी भक्ति भावना में ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों का सामञ्जस्य दिखाई देता है। साधना के क्षेत्र में उन्होंने निर्गुण और सगुण दोनों को अलग-अलग स्वीकार किया है, किन्तु भावना के क्षेत्र में उन्होंने दोनों को अलग न मानकर सगुण में ही निर्गुण की झलक दिखा दी है। तुलसी ने अपनी भक्ति में युग की जनरूचि का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा है। यही कारण था कि वे अपनी भक्ति भावना में सेवक-सेव्य भाव को महत्त्व देते थे। इसी भावना के कारण उन्होंने एक ओर तो मुगल सम्राटों की ओर से तत्कालीन जनता को विमुख किया और राम भक्ति की ओर उन्हें प्रेरित किया था। आगे चल कर तुलसीदास ने राम से भी अधिक राम भक्तों को महत्त्व दिया।

तुलसी के काव्य का प्रतिपाद्य लोकमंगल की भावना है। उन्होंने राम, लक्ष्मण, सीता, भरत, शत्रुघ्न आदि चरित्रों के माध्यम से अनेक आदर्शों की स्थापना की है। राम के लोक-धर्म निर्वाह, भरत के त्याग, लक्ष्मण का भ्रातृ-स्नेह, सीता की पतिपरायणता और

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

हनुमान की आराधना के प्रति अनुरक्ति आदि को तुलसी ने सामाजिक जीवन के लिये आवश्यक माना है। उन्होंने अपने 'रामचरितमानस' में पाप और तामसिक वृत्तियों की पराजय तथा सत्य, सदाचरण एवं सात्विक वृत्तियों की विजय बताई है। उनके काव्य में निहित भाव पक्ष को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है –

1. रामचरित प्रमुख विषय – तुलसी के काव्य की यह एक प्रमुख विशेषता रही है कि इन्होंने श्रीहरि विष्णु के अवतार भगवान राम को ही अपने काव्य का मूल विषय बनाया है। इनके राम शील, सौन्दर्य और शक्ति की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। इनके सम्पूर्ण काव्य में प्रारम्भ से अंत तक प्रभु राम के ही सच्चरित्र का गुणगान किया है। यद्यपि तुलसी ने अपनी काव्य रचना के आरम्भ में विष्णु, गणेश, शक्ति, शिव, गुरु, सरस्वती आदि कई देवी-देवताओं की वन्दना की है किन्तु वह वन्दना राम के प्रति अनुराग और अपनी कृतियों की सुन्दर रचनाओं के सफल रूप को प्राप्त करने की कामना से की है।

2. रामकथा का काव्यात्मक वर्णन – तुलसीदास ने रामकथा का आद्योपान्त अत्यंत प्रभावपूर्ण और मनोहर वर्णन किया है। विषय विस्तार की दृष्टि से तुलसी ने राम कथा के माध्यम से जीवन के प्रत्येक पक्ष और सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू का सरस चित्रण किया है। सामाजिक चेतना की सुन्दर अभिव्यक्ति करते हुए लिखा है कि –

''रानी में जानी अजानी महा, पवि-पाहन हुँ ते कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तियको जिन कान कियो है।।
ऐसी मनोहर मूरति ए, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है।
आँखिन में सखि राखिवे जोगु, इन्हें किमि कै बनबासु दियो है।।''

3. सेवक-सेव्य भाव की भक्ति – तुलसीदास ने ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को अधिक महत्त्व दिया है। उन्होंने कहा है कि ''ज्ञान कठिन है और भक्ति सरल है।'' इनकी भक्ति दास्य भाव की ही थी। उन्होंने स्वयं को भगवान राम का सेवक ही माना है और राम को अपना स्वामी और आराध्य। इसीलिये इनके काव्य में लघुता, दैन्य, उदारता, नम्रता, आदर्शवादिता आदि भावों की प्रधानता प्रदर्शित होती है।

''अब कछु समझ परत रघुराया,
बिनु तव कृपा दयालु दास-हित मोह न छूटै माया।।''
''ऐसो को उदार जग माहीं,
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोउ नाही।।''

तुलसी के राम दया के सागर हैं, वे दीनों पर बिना सेवा के ही द्रवित होकर कृपा कर देते हैं। प्रभु राम की कृपा से ही हमें ज्ञान की प्राप्ति होती है और मनुष्य संसार रूपी काल-रात्रि से ग्रसित नहीं होता है।

''अबलौ नसानी, ब न नसैहों।
राम कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसै हों।।''

4. प्रभु की महिमा का वर्णन – तुलसीदास ने स्पष्ट किया है कि राम की कृपा होने पर सम्पूर्ण सांसारिक बन्धन टूट जाते हैं। केवल पुस्तकीय ज्ञान और शास्त्र चर्चाओं के आधार पर संसार सागर को पार नहीं किया जा सकता। प्रभु राम सदैव दीन दुखियों के कष्टों का निवारण करने वाले हैं, जिस पर प्रभु कृपा हो जाती है उस पर हर किसी की कृपा तुरंत हो जाती है –

''जा पर कृपा राम की होई।
ता पर कृपा करै सब कोई।।''

5. स्वान्तः सुखाय रचना – कवि तुलसीदास की रचनाएँ स्वान्तः सुखाय काव्यों की रचनाएँ हैं। इन्होंने किसी राजा-महाराजा अथवा किसी विशिष्ट व्यक्ति का गुणगान नहीं किया है। इन्होंने तो स्पष्ट घोषणा की है कि –

''कीन्हे प्राकृत जन-गुण माना।
सिर धुनि गिरा लागि पछताना।।''

6. समन्वय की भावना – तुलसी ने अपने काव्य में ज्ञान, भक्ति और कर्म का अच्छा समन्वय किया है, उन्होंने ज्ञान को अत्यन्त दुरुह तथा क्लिष्ट बताकर लोक हित के लिये भक्ति का मार्ग प्रतिपादित किया है, साथ ही उन्होंने ज्ञान और भक्ति में अन्तर भी नहीं माना है। 'रामचरितमानस' के 'उत्तर-काण्ड' में उन्होंने लिखा है कि –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''ज्ञानहि भगताहिं नहीं कछु भेदा।
उभय हरिहिं भव संभव खेदा॥''

तुलसी के राम कर्मयोगी हैं। उन्होंने राम को अनेकानेक परिस्थितियों में अविचल भाव से कर्मण्य बताकर कर्म को श्रेष्ठ माना है।

7. आर्य मर्यादाओं की स्थापना – तुलसीदास भारतीय संस्कृति के प्रवक्ता एवं उन्नायक कवि माने जाते हैं। उन्होंने रामकथा के विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से आर्य मर्यादाओं और आदर्शों की स्थापना की है। रामचरितमानस में राजा-प्रजा, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, स्वामी-सेवक, भाई-बहन, गुरु-शिष्य आदि के उदात्त पारस्परिक सम्बन्ध तथा इनकी मर्यादाओं का प्रभावपूर्ण वर्णन किया है। 'विनय पत्रिका' में उन्होंने दास्य-भाव की भक्ति-भावना व्यक्त करके सेवक की मर्यादा की अपूर्व मर्यादा को स्पष्ट किया है –

''जाके प्रिय न राम बैदेही,
तजिय ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही॥''

'रामचरितमानस' में दशरथ का चरित्र राजा की सत्यनिष्ठा का प्रतीक है। राम आज्ञाकारी पुत्र, सीता आदर्श पत्नी, लक्ष्मण और भरत आदर्श भाई, हनुमान आदर्श सेवक, वशिष्ट आदर्श गुरु, सुग्रीव अच्छे मित्र हैं। राम का राज्य उच्च आदर्शों और मर्यादाओं का प्रतीक है जिसमें लोकभावों को सर्वोपरि बताया गया है।

8. शिवम् की भावना – तुलसी के काव्य में शिवम् की भावना अर्थात् लोक मंगल की भावना के दर्शन होते हैं, उनके काव्य की यह प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य की अपूर्व देन है। कवि ने समाज को निवृत्ति की ओर अग्रसर नहीं किया बल्कि सामाजिक कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए उच्च भूमि को प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान की है।

9. शक्ति, शील और सौन्दर्य से युक्त – तुलसीदास ने अपने राम के माध्यम से शील, शक्ति और सौन्दर्य का सुन्दर समन्वय किया है –

सौन्दर्य-रूप में राम –

''राम को रूप निहाररि जानकी, कंगन के नग की परछाई।
याते सवै सुधि भूलि गई, कर टेक रही पल टारत नाहीं॥''

शक्ति-रूप में राम –

''डिगति उर्वि, अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र सर।
व्याल बधरि तेहि काल, विकल दिक्पाल चराचर॥
दिग्गयंत लरखरत परत दसकंधु मुख्य भर।
सुर-विमान हिम भानु भानु संघटत परसपर॥
चौक बिरंचि संकर सहित, कोल कमठु हि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड-खण्ड कियौ चंड धुनि, जबहि राम सिव धनुष दल्यो॥''

शील-रूप में राम –

ऐसी मनोहर मूरति ए बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है।
आँखिन में सखि राखिवे जोगु, इन्हें किनि कै बनवास दियो है।''

प्रभु श्रीराम के तीनों गुणों का बखान करते हुए कवि ने कहा है –

''काम के रूप, प्रतापु दिनेस से, सोम से सील, गनेस से माने।''

इस प्रकार तुलसी के काव्य का भावपक्ष अत्यंत प्रशस्य, सशक्त, भावानुकूल आदि के गुणों से युक्त है। इसमें विषय विस्तार के साथ तत्कालीन समाज का चित्रण भी मिलता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कला पक्ष में तुलसी का काव्य –

जिस प्रकार तुलसीदास का काव्य भाव पक्ष की दृष्टि से अत्यंत व्यापक और बहुमुखी है, इसी प्रकार कला पक्ष भी अत्यंत समृद्ध और प्रभावशाली है। कलापक्षीय विशेषताओं को हम निम्नलिखित बिन्दुओं से व्यक्त कर सकते हैं –

1. प्रकृति चित्रण – कवि तुलसीदास ने अपने काव्य में अनेक स्थलों पर प्रकृति को एक सुन्दर तथा सलौने रूप में मनमोहक ढंग से प्रस्तुत किया है। प्रकृति को अनेक रूपों में चित्रित कर काव्यानुभूति को आत्मापरक बना दिया है – उद्दीपन रूप, आलंकारिक रूप, उपदेशात्मक रूप और मानवीकरण केरूप में प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है –

उपदेशात्मक रूप में प्रकृति चित्रण –

बूंद अघात सहै गिरि कैसे, खल के वचन संत सहे जैसे।
क्षुद्र नदी भरि चलि गतराई, जस थोरेउ धन खल उतराई॥''

2. भाषा शैली – तुलसीदास के काव्य की यह विशेषता रही है कि इन्होंने ब्रज और अवधी दोनों ही भाषा का प्रयोग किया है। यद्यपि तुलसी का अन्य कई भाषाओं पर अधिकार था और वे उन भाषाओं के अच्छे ज्ञाता भी थे किन्तु अवधी भाषा को उन्होंने काव्यगत रूप में अच्छी तरह से संवारा है। उनकी भाषा में माधुर्य, सरलता, सहजता एवं भावप्रवणता का स्वाभाविक समावेश हुआ है। इनकी काव्य कला पर मुग्ध होकर भी आलोचकों ने इन्हें कविता कामिनी का कमनीय-कंत तथा कविकुल शिरोमणी कहा है।

''पुरते निकसी रघुवीर बधु, धरि-धीर गये पग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनीं जल की पट्ट सूख गये मधुराधर वै॥''
''रानी मैं जानी अयानी महा, पवि पाहनु हूँ ते कठोर हियो है।
राज हुं काज अकाज न जान्यो, कह्यो तियको जिन कान कियो है॥''

3. अलंकार योजना – तुलसी के काव्य में भावों के प्रवाह के साथ जो मधुर और ललित वाक्य-योजना दिखाई देती है, उसमें अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और उदाहरण अलंकार के तो वे सम्राट माने जाते थे। शब्दों की आवृत्ति एवं नाद योजना के कारण अनुप्रास अलंकार के प्रयोग में तुलसी महारथ प्राप्त थे –

''सहज सुभाय सुभग तनु गोरे।
नाम लखनु लघु देवर मोरे॥''

रूपक और उपमा अलंकार का कई स्थलों पर एक साथ प्रयोग किया है –

''लता भवन ते प्रकट भे, तेहिं अवसर दोउ भाई।
निकसे जनु-जुग बिमल बिधु जलद-पटल विलगाई॥''

4. रस योजना – तुलसी का काव्य भक्ति काव्य है अतः इनके काव्य में शान्त रस का पूर्णपरिपाक दिखाई देता है। फिर भी इनके काव्य में शृंगार रस, वीर रस, भयानक रस, वीभत्स रस, करुण रस आदि अनेक रसों का सुन्दर समावेश मिलता है। 'विनय-पत्रिका' शान्त रस का अनुपम ग्रंथ है। तुलसी के काव्यों में काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का पूर्ण पालन हुआ है क्योंकि तुलसी स्वयं संस्कृत साहित्य और काव्यशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान थे।

5. छन्दविधान – तुलसी के काव्य में सभी प्रकार के छन्दों का सफल प्रयोग मिलता है। 'रामचरितमानस' में दोहा, चौपाई सोरठा छन्दों का प्रयोग किया है तो 'विनय-पत्रिका' में पद, 'कवितावली' में सवैया, 'दोहावली' में दोहा, 'बरवैरामायण' में बरवै, 'रामललानहछू' में सोहर छन्द का प्रयोग है। इनकी गीति तथा पद शैली अनूठी है, इस प्रकार तुलसी का छन्द विधान अत्यधिक व्यापक है।

6. प्रबन्ध तथा मुक्तक काव्य-रचना – तुलसीदासकृत 'रामचरितमानस' हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ प्रबन्ध-काव्य है। इस रचना में प्रबन्ध-कौशल अपनी पूर्ण गरिमा बनाए हुए है। इसके अतिरिक्त तुलसी ने 'विनय-पत्रिका' तथा 'गीतावली' कई मुक्तक काव्यों की रचनाएँ की हैं।

निष्कर्ष – संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि तुलसीदास ने अपने काव्य में भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष का चित्रण किया है। उनके काव्य का भाव पक्ष जितना विशाल और सशक्त है, कला पक्ष भी उतना ही समृद्ध है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''कविता करिकै तुलसी न लसै,
कविता लसी पा तुलसी की कला।''

प्रश्न- 3. तुलसीदास की भक्ति भावना पर एक विश्लेषणात्मक निबन्ध लिखिये।

अथवा

तुलसी की भक्ति भावना की विशेषताओं पर अपने विचार व्यक्त कीजिये।

उत्तर – रामभक्त शिरोमणी तुलसीदास का नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों से अंकित हैं। तुलसी राम भक्त कवियों के अधिनायक माने गये हैं। यद्यपि उन्होंने कविता के उद्देश्य को भक्ति का विषय नहीं बनाया है तथापि उनके काव्य में भक्ति युक्त विश्वास और विचार स्वत: अपना परिचय देने लगते हैं। 'रामचरितमानस' सदाचरण का आदर्श ग्रंथ है जिसे अनेक लोग पंचम वेद तक कहते हैं। इसमें राजा और रंक, विद्वान और सामान्य जन, स्त्री और पुरुष, ग्रामीण और नागरिक समान रूप से आनन्द लेते हैं। यह ग्रंथ रोटी की तरह सबके लिये समान है और हीरे की भाँति विशेष परख का तत्त्व है। 'विनय-पत्रिका' तो एक प्रकार से 'भक्ति का सागर' माना गया है।

तुलसीदास एक असाधारण राम भक्त के रूप में – जिस समय तुलसीदास जीवन की तीसरी अवस्था में विचरण कर रहे थे और स्वाभाविक रोग इनके हमसफर बने हुए थे तो इन्होंने 'विनय-पत्रिका' की रचना की। उन्होंने अपने आराध्य श्रीराम के दरबार में एक विनती युक्त पत्रिका भेजी थी जिसमें निवेदन किया कि आपका दास तुलसी इस समय सांसारिक रोगों से ग्रसित है और कष्टों से व्याकुल है, अत: हे कृपा निधान ! उसे कष्टों से मुक्ति दिला कर मोक्ष प्रदान कीजिये। यह 'विनय-पत्रिका' एक आस्थावादी व्यक्ति की अर्जी या पत्रिका के रूप में अनेक देवी-देवताओं, राम के भाइयों, सीता माता व शिव-पार्वती आदि को प्रसन्न करके उनकी सिफारिशों के साथ भरतजी के द्वारा राम के पास पहुँचाई गई थी जिसे प्रभु राम ने स्वीकार कर लिया था।

तुलसी ने अपने काव्य में विभिन्न प्रसंगों को लेकर, अपने आराध्य को रिझाकर, उन्हें अनुकूल बनाकर अपनी भक्ति भावना का परिचय दिया। ये दार्शनिक दृष्टि से विशिष्टाद्वैतवादी थे और व्यावहारिक दृष्टि से वे दास भाव या सेवक भाव में राम के चरणों में समर्पित हुए। उनकी भक्ति भावना को निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है –

1. तुलसी का दास्य भाव – तुलसीदास एक आदर्श सेवक की भाँति राम के साथ अनुशासित व्यवहार प्रस्तुत करते थे और इसी रूप में वे अपने स्वामी को रिझाते थे। इस भावना के उनके आदर्श श्री हनुमान जी थे। भक्त हनुमान सेवा के द्वारा ही प्रभु को प्रसन्न रखने के लिये सदैव तत्पर रहते थे।

''सेवक सेवा भाव बिनु, भव न तरिय उरगारि॥''

विनय-पत्रिका तो केवल दास्य भाव का ही एक अति सुन्दर परिचय है।

''हम चाकर रघुवीर के पटौ लिखौं दरबार।
तुलसी अब का होउंगे नर से मनसबदार॥''

यह तुलसीदास का एक मूल कथन है। दास्य भाव द्वारा ही वे अपने राम की कृपा प्राप्त करना चाहते थे –

''अब कछु समझ परी रघु राया।
बिनु तब कृपा दयालु-दास, हित, मोह न छूटै माया॥''

2. राम के प्रभुत्व में अटूट विश्वास – विनय-पत्रिका में तुलसी का मन आराध्य के चरणों में स्थान पाने का प्रयास करता है। उसे अपने राम की उदारता और प्रभुत्व में अटूट विश्वास है। तुलसी के राम महान् हैं, कृपा निधान हैं, क्षमाशील हैं। उनके समान भक्तों पर दया करने वाला तीनों लोकों में भी कोई नहीं है।

''ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥''

तुलसीदास अपने प्रभु के गुणों का वर्णन करते हुए थकते नहीं हैं।

3. सम्बन्धों का केन्द्रीकरण – तुलसीदास की भक्ति में एक विशेषता यह भी रही है कि वे राम में ही समस्त सम्बन्धों का केन्द्रीकरण कर देते थे। अत: जिनका सम्बन्ध राम से है वह उनका भी निकटस्थ व्यक्ति हो जाता है। इसप्रकार वे राम के साथ बहुविध सम्बन्धों की स्थापना करके उन्हें अपना बना लेते हैं –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

"तू दयालु दीन हौं दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कोन मो सो।
मो समान आरत नहीं, आरतिहर हर तो सो॥
ब्रह्म तू ही जीव ही तू ठाकुर हों चेरो।
तात मात गुरु सखा, तू सब विधि हितु मेरो॥
मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यौं तुलसी कृपालु चरण सरन पावै॥"

जिसका राम से सम्बन्ध नहीं है, उसे वे शत्रु समान समझकर त्याग देने की बात कहते हैं –

"जाके प्रिय न राम वैदेही,
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही॥"

इस प्रकार विनय-पत्रिका में सभी सम्बन्धों को राम में केन्द्रित कर कहा है कि सभी देवता भी राम की भक्ति और राम के प्रेम से प्रसन्न होते हैं –

"जा पर कृपा राम की होई।
ता पर कृपा करै सब कोई॥"

4. आत्म शुद्धि और आत्म बोध – तुलसी की भक्ति में आत्मा की शुद्धि और आत्मबोध का बहुत प्रभाव मिलता है। उन्होंने अनेक स्थलों पर आत्म परिष्कार की बात स्पष्टतः कही है, साथ ही अपने आपको भी समझने का प्रयास किया है।

आत्म प्रबोधन के लिये –

"सुन मन मूढ सिखावन मेरो।
हरिपद-विमुख लह्यो न काहु सुख, सठ यह समझु सबेरो॥
बिछरे ससि रवि मन नैननि से, पावत दुःख बहुतेरो॥
भ्रमत श्रमित निसि-दिवस गगन में तैह रिपु राहु बडेरो॥"

आत्म परिष्कार के लिये कवि कहते हैं कि –

"जो निज मन परिहरे विकारा।
तो कत द्वैत जनित संसृति दुःख संसय सोक अपारा॥
सत्रु मित्र मध्यस्थ तीन ये, मन कीन्हें बरिआई॥
त्यागन गहन उपेच्छनीय, अहि हाटक तृन की नाई॥"

इस प्रकार आत्मशोध और आत्मबोध दोनों के लिये भक्ति मार्ग का विशेष महत्त्व है।

5. आत्म-दोषों की पुष्टि – तुलसीदास ने मात्र अपने प्रभु का गुणगान ही नहीं किया है बल्कि गिन-गिन कर अपने दोषों की पुष्टिभी की है। दोषों की स्वीकृति प्रायः हृदय की स्वच्छता की परिचायक होती है, वे कहते हैं कि मैं माया-मोह में बँधा हुआ हूँ, अज्ञानी हूँ, पतित हूँ और ऐसा मेरे पास कुछ भी नहीं है जिसे प्रभु के चरणों में अर्पित कर उन्हें प्रसन्न कर सकूं।

"या ही ते मैं हरि ज्ञान गँवायो।
तुम सम ज्ञान निधान मोहि सम मूँढ न आनि पुराननि गायो॥
तुलसीदास प्रभु यह विचारि जिय कीजै नाथ उचित मन भायो॥"
"मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
तुलसीदास प्रभु कृपा करहुँ अब मैं निज दोष कछु नहीं जोयो॥
डासत ही गई बीति निसा सब कबहुँ न नाथनींद भर सोयो॥"

6. आत्म-निरीक्षण – तुलसीदास सच्ची भक्ति के लिये आत्म-निरीक्षण और आत्मज्ञान को आवश्यक मानते हैं। अन्तर-मन में जितने भी विकार हैं वे सब राम कृपा से ही नष्ट हो सकते हैं। वे अन्तर्यामी और घट-घट वासी हैं। वे हमारी अन्दर की हर स्थिति को जानते हैं –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

"ऐसी मूढता या मन की।
परिहरि राम भगति सुर सरिता, आस करत ओस-कन की।
कहै लौ कहूँ कुचाल कृपानिधि, जानत हौं गति जन की॥
'तुलसीदास' प्रभु हरहुँ दुसह दुःख करहुँ लाज निज पन की॥"

तुलसीदास ने आत्मा के साथ संसार के मूल सत्य को भी देखने का सफल प्रयास किया है –

"कोउ कह सत्य, झूँठ कह कोउ, जुगल प्रबल करि मानै।
'तुलसीदास' परिहरै तीनि भ्रम, सो आपुनि पहिचानै॥

7. सात्विक जीवन की कामना – सच्चा भक्त अपने कार्यों के साथ जीवन की प्रत्येक सांस को सदाचार में रंगना चाहता है। तुलसी ने अपनी 'विनय-पत्रिका' में जगह-जगह सात्विक गुणों के प्रति प्रबल लालसा व्यक्त की है। सदाचार ही मानव का दूसरा नाम है। मानवीय गुण एक प्रकार से ईश्वर की भक्ति है। दया, करुणा, स्नेह, सहानुभूति, भ्रातृत्व भाव, सदाचार, नियमबद्धता, समशीलता, निरभिमान आदि मानवीय गुणों की याचना हर सच्चा भक्त अपने आराध्य से करता है। यही सात्विक जीवन प्रभु भक्ति का आधार है। केवल वाक्य ज्ञान द्वारा स्तुतियाँ गा कर प्रभु भक्ति नहीं की जा सकती है।

"कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा ते, संत स्वभाव गहौंगो॥
यथा लाभ संतोष सदा काहू सों कछु न कहूँगो।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो॥"

8. नाम स्मरण – तुलसीदास की भक्ति का आधार केवल 'राम' नाम ही है। "राम से बड़ो राम कौ नाम " के आधार पर तुलसी ने राम नाम के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। राम नाम तो संसार सागर से प्राणी को पार उतारने वाली नाव है। इसी नाम के निरन्तर स्मरण से आन्तरिक और बाहरी प्रकाश होता है –

"राम नाम मणि दीप धरि जिहि देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरहु, जो चाइसि उजियार॥"

'विनय-पत्रिका' में भी वे मानस के इस कथन का समर्थन करते हुए लिखते हैं कि –

"काहे न रसना रामहिं गावहिं।
निसि दिन पर अपवाद वृथा कत रटि-रटि राग बढ़ावहिं॥"
"राम रटि राम रटि राम रटि बाबरे।
घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे॥"

9. मोक्ष की कामना – तुलसीदास राम भक्ति के द्वारा सांसारिक आवागमनों से सदैव के लिये छुटकारा पाने की कामना करते हैं। जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त होना ही 'मोक्ष' है।

"हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधन धाम विबुध दुर्लभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हो॥
है स्तुत विदित उपाय सकल सुर केहि केहि दीन निहोरे।
'तुलसीदास' यह जीव मोह रजु, सोई बान्ध्यों सोई छोरे॥"

अर्थात् जिसने जीव को मोह की रस्सी से बाँध रखा है वही कृपालु इसे छोड़ सकता है।

6.3 सारांश

अतः स्पष्ट होता है कि 'तुलसीदास' ने अपनी 'विनय पत्रिका' तथा अन्य रचनाओं में भक्ति-भावना की ऐसी अभिव्यक्ति की है कि मनुष्य मन की सम्पूर्ण कलुषित वृत्तियों से मुक्ति पाकर अपने आराध्य की कृपा प्राप्त कर सकता है। तुलसीदास का सम्पूर्ण जीवन राम रसायन का आस्वादन करता हुआ प्रभु राम की भक्ति भावना में निमग्न रहा है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई-7 : रसखान

संरचना

7.0 कवि परिचय

7.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

7.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

7.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

7.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

7.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

7.3 सारांश

7.0 कवि परिचय

कृष्ण भक्त मुसलमान कवि रसखान के जीवन विषय में अधिक सूचनाएँ तो नहीं मिल सकीं, किन्तु इनके द्वारा रचित ''प्रेमवाटिका'' ग्रंथ से यह ज्ञात होता है कि ये दिल्ली के राजवंश में उत्पन्न हुये थे और इनका रचनाकाल जहाँगीर का राज्यकाल था। यह रचना काल कुछ विद्वानों के अनुसार संवत् 1640 से 1670 तक ठहरता है।

विद्वानों ने इनका जन्म 1615 के आस-पास का बताया है। इनका नाम सैयद इब्राहिम माना जाता है। रसखान ने ''प्रेम-वाटिका'' में लिखा है कि –

''देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा बंस की, ठसक छाँडि रसखान।।''

रसखान ने दिल्ली में कोई विप्लव होते देखा तो उससे व्यथित होकर ये मथुरा के पास गोवर्धन चले आये। यहाँ आकर ये श्रीनाथजी के शरण में आ पहुँचे। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' के अनुसार उनके दिल्ली निवास की पुष्टि होती है, जहाँ किसी 'साहुकार के सुन्दर छोरा' में रसखान का मन आसक्त हो गया था। इनकी लौकिक आसक्ति की अन्य किंवदन्तियाँ भी मिलती है जिनमें उस प्रेम की अलौकिक परिणति का भी उल्लेख प्राप्त होता है। ऐसा माना जाता है कि ये पठान राजवंश के थे और जब दिल्ली पर मुगलों का आधिपत्य हुआ तथा पठान वंश पराजित हुआ तो ये दिल्ली से भाग कर ब्रज में आ गये।

वार्ता के अनुसार गोसाई विट्ठलनाथजी ने उन्हें गोविन्द कुण्ड पर नाम सुना कर पुष्टि मार्ग में दीक्षित किया था। वार्ता से यह पता चलता है कि तब रसखान गोवर्धन नाथ जी के स्वरूप में आसक्त हो गये थे। रसखान की रचनाओं से ऐसा लगता है कि वैष्णव धर्म के गहरे संस्कार इनमें पहले से ही व्याप्त थे। यह भी स्पष्ट होता है कि ये रसिक प्रेमी थे, बाद में अलौकिक प्रेम की ओर आकृष्ट हुए और कृष्ण भक्त बन गये। इनकी रचनाओं में प्रेम और शृंगार का प्रभावी चित्रण हुआ है इसमें किसी प्रकार का विवाद नहीं है। रसखान अनन्य कृष्ण भक्त थे। कवित्त और सवैया छंदों में इनकी रचनाएँ अत्यंत लोकप्रिय हुई हैं।

''धूरि भरे अति शोभित स्याम जु तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरै अँगना पग पैंजनियाँ कटि पीरी कछौटी।।
वा छवि को रसखान विलोकति बारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी कहिये, हरिहाथ सों ले गयो माखन रोटी।।''
''कानन दे अंगुरी रहिहो जबही मुरली धुनि मंद बजैहे।
मोहनिताननि सौ रसखान अटा चढि गोधन गैहे तो गैहें।।
माई री सिगरे ब्रज लोगनि काल्हि कोउ कितनी समुझैहें।
टेरि कहौ वा मुख की मुसकाय संभारि न जैहे न जैहे ने जैहें।।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस प्रकार हम देखते हैं कि रसखान मुसलमान होते हुए भी ब्रज भाषा के अत्यंत उत्कृष्ट कवि थे। वे कंठीमाला धारण करने लगे थे। इस संदर्भ में जहाँगीर ने एक फ़रमान भी जारी किया था। दोनों बातों को मिलाकर कवि ने जीवन-वृत्त के निर्माण का प्रयास श्री भवानीशंकर यज्ञिक ने पौद्धार अभिनन्दन ग्रंथ में प्रकाशित 'आलम और रसखान' लेख में किया है। इस उद्धरण में रसखान द्वारा दोहा और कवित्त के अतिरिक्त 'कीर्तन' बनाये जाने का भी उल्लेख है, परन्तु अब तक उनकी जो रचनाएँ प्राप्त हुई हैं उनमें 'प्रेम वाटिका' के दोहों तथा स्फुट कवित्त सवैयों की संख्या तो पर्याप्त है किन्तु पद केवल एक ही है। विशेष खोज होने पर अधिक 'कीर्तन' की संभावनाएँ हैं क्योंकि एक पद प्राप्त होने से वार्ता का कथन प्रमाणित हो जाता है। रसखान की रचनाओं से यह ज्ञात हो जाता है कि उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम कवित्त, सवैयों को ही बनाया। उनके इस प्रकार के मुक्तक, परवर्ती व्यक्तियों द्वारा विभिन्न क्रम से संग्रहित एवं प्रकाशित हुए हैं, जैसे किशोरीलाल और घनानन्द कवि किंकर द्वारा 'रसखान रत्नावली' एवं चन्द्रशेखर पाण्डे द्वारा 'रसखान' आदि। उनके वर्ण्य-विषयक (भाग्वतोक्त) कृष्ण लीलाओं में से लिये गये हैं, जिनमें बालक्रीड़ा, वेणुवादन, गोचारण, कुञ्जलीलाएँ प्रधान हैं। कहा जाता है कि यह ज्ञान उन्होंने भागवत् के फ़ारसी अनुवाद से प्राप्त किया था। रसखान पुष्टि मार्गीय सगुण-लीला भाव के कवि होते हुए भी प्रेमानुभूति में कुछ-कुछ सूफ़ी संतों के समकक्ष प्रतीत होते हैं। उन्होंने 'प्रेम-वाटिका' में प्रेम की महिमा विशेष रूप से प्रकट की है। उनकी एक उक्ति से –

''प्रेम देव की छावहिं लखि भये मियां ''रसखानि''।''

यह स्पष्ट होता है कि वे प्रेम को अधिक महत्त्व देते थे।

रसखान ने प्रेम की भावनाओं के आलम्बन रूप में कृष्ण को ग्रहण किया है। इनका प्रेम लौकिक भावनाओं से ऊपर उठकर प्रेम के उदात्त स्वरूप को व्यक्त करता हुआ विश्वजनित हो गया है, आदर्श रूप में रसखान ने एकांगी एवं नि:स्वार्थ प्रेम को अपनायाहै –

''रसमय, स्वाभाविक, बिन स्वारथ, अचल, महान।
सदा एक रस, शुद्ध सोई प्रेम रहे रसखान॥
इक, अंगी बिनु कारनहिं, इक रस सदा समान।
गनै प्रियहिं सर्वस्व जो, सोई प्रेम प्रमान॥''

रसखान में जहाँ एक ओर प्रेम की अनन्यता है वहीं दूसरी ओर प्रिय की क्रीड़ा और ब्रजभूमि के प्रति अनुराग भी है। वे तो ब्रज के कण-कण में समाकर अपने जीवन को कृतार्थ करना चाहते हैं –

''मानुस हौं तो वही रसखान, बसौ सँग गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बस मेरौ, चरौ नित नन्द की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि कौ, जो कियो हरि छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरौ करौ नित कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥''

रसखान की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रज भाषा है। माधुर्य और प्रसाद गुणों के समायोजन से वह न केवल सरस व सजीव बन गई है अपितु अनुभूतियों को बिम्बों में बाँधने में भी सक्षम हो गई है।

7.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(1)

प्रान वही जु रहे रिझि वा पर, रूप वही जिहि वाहि रिझायो।
सीस वही जिहि वे परसे पग, अंग वही जिहि वा परसायो॥
दूध वही जु दुहायो रि वाने, दही सु वही जु वही ढुरकायो।
और कहाँ लौं, कहौं रसखानि, सुभाव वही जु वही मन भायो॥

शब्दार्थ – रिझि=मोहित। वा पर=उस पर। रिझायौ=मोहित किया। सीस=सिर। परसै=स्पर्श करे। पग=चरण।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से लिया गया है। यह पद रसखान द्वारा रचित भक्ति भावना पर आधारित है। इसमें कवि अपने आराध्य श्रीकृष्ण के नटखट रूप का वर्णन करते हुए जीवन के विभिन्न पक्षों के सार्थक रूप को स्पष्ट कर रहे हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – कवि रसखान कहते हैं कि प्राणों की सार्थकता प्रभु कृष्ण के प्रति सच्चा अनुराग रखने में ही है। रूप सौन्दर्य वही सर्वश्रेष्ठ है, जिससे प्रभु को रिझाया जा सके। वही सिर सौभाग्यशाली है जो प्रभु श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों का स्पर्श कर सके। अंग वही श्रेष्ठ है जिसने उनका स्पर्श किया है। दूध वही उत्तम है, जिसे गोपाल कृष्ण ने अपने हाथों से दुहाया था। दही वही अच्छा है जिसे ब्रज विहारी कृष्ण ने अपने ग्वाल सखाओं के साथ लीला करते समय ढुरकाया था। कवि रसखान कहते हैं कि प्रभु श्रीकृष्ण की विशेषताएँ तो वर्णनातीत हैं, मैं कहाँ तक उनका बखान करूँ ? अच्छे स्वभाव की सार्थकता वही है जो कृष्ण को प्रिय लगे। अर्थात् इस जीवन और सांसारिक वस्तुओं का महत्त्व प्रभु श्रीकृष्ण के आशीर्वाद पर ही निर्भर है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में कवि की अनन्य भक्ति भावना और समर्पण व्यक्त हुआ है।

2. अनुप्रास अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(2)

बैन वही उनको गुन गाइ, औ कान वही उन बैन सो गुन सानीं।
हाथ वही उन गात परै, औ पाँय वही जु वही अनुजानी।
आन वहीं उन प्रान के संग, औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यों 'रसखानि' वही रसखानि, जु है रसखानि सो है रसखानी।

शब्दार्थ – बैन=वाणी। सानी=श्रवण। गात=शरीर। अनुजानी=पीछे-पीछे चलना। मान=सम्मान। रसखानि=आनन्द की खान।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से लिया गया है जो कवि रसखान द्वारा रचित 'भक्ति पदों' से सम्बंधित है। इस पद में कवि ने अपने आराध्य प्रभु कृष्ण के प्रति पूर्ण समर्पण और अनन्य भक्ति भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति की है।

व्याख्या – रसखान के अनुसार कर्णप्रिय वाणी की सार्थकता प्रभु कृष्ण के गुणगान करने में ही है। कानों की सार्थकता भी श्री कृष्ण के गुणगानों का श्रवण करने में ही है। वे हाथ धन्य हैं जो प्रभु की सेवा करते समय उनके शरीर से स्पर्श होते हों। पैरों की सार्थकता कृष्ण भक्ति के मार्ग और उनकी लीला स्थली तक पहुँचने अथवा कृष्ण के पीछे-पीछे चलने में है। मानव जीवन भी वही उत्तम है जो उनके प्राणों के साथ-साथ अथवा कृष्ण भक्ति में निमग्न रहे। मान सम्मान वही सर्वोत्तम है जो कृष्ण दर्शन के लिये मनमानी करे। कवि रसखान कहते हैं कि वही उत्तम रस की खान है, जो हमें भक्ति के आधार पर कृष्ण में आसक्त रखकर आनंदित करे।

विशेष – 1. कवि की अनन्य भक्ति भावना और पूर्ण समर्पण व्यक्त है।

2. अनुप्रास, काव्यलिंग का प्रयोग दृष्टव्य है।

3. अंतिम पंक्ति में यमक अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

4. भाषा - ब्रज, 5. रस - माधुर्य

(3)

बैद की औषधि खाइ नहीं,
न करै वह संयम री सुन मोसे।
तेरोई पानी पियै 'रसखानि',
संजीवनि जान लहैं सुख तोसे।
ए री सुधामयी भागीरथी,
सब पथ्य कुपथ्य बनैं तहि पोसे।
आॅक धतूरो चवात फिरै,
विष खात फिरे सिव तोरे भरोसे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – बैद=चिकित्सक। औषधि=दवाई। सुधामयी=अमृतमयी। भागीरथी=गंगा। पथ्य=पचने योग्य। कुपथ्य=अपच।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' नामक पाठ से अवतरित है जिसे रसखानकृत भक्तिपदों से लिया गया है। प्रस्तुत अवतरण में कवि ने पतित पावनी गंगा की पवित्रता और उसके महात्म्य की सुन्दर व्याख्या की है।

व्याख्या – कवि रसखान गंगा के पवित्र जल का महत्त्व बताते हुए कहते हैं कि हे सखी! सुन, यदि बीमार हो जाने पर किसी वैद्य की औषधि न लें अथवा उसका कोई लाभ न मिले और मन पर कुपथ्य खाने का संयम भी न रखा जा सके तो गंगा के पवित्र जल का पान कर लेना चाहिये, क्योंकि वह जल संजीवनी बूटी की तरह प्राणदायक, गुणकारी और पथ्यकारी है। कवि गंगा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे भागीरथी! तुम्हारे जल में तो वे गुण हैं कि जिसका स्पर्श करने मात्र से सभी कुपथ्य-पथ्य में बदल जाते हैं। तुम्हारे इस पावन और जीवनदायी जल के इन गुणों के भरोसे ही तो भगवान् शिव आक-धतूरा जैसे विषैले पदार्थों का सेवन करते रहते हैं। भावार्थ यह है कि भगवान् शिव की जटाओं में गंगा का निवास है, वे गंगा जल की पावन शक्ति को जानते हैं, इसी वजह से वे निश्चिंत होकर विषपान करते रहते हैं क्योंकि गंगाजल से हर कुपथ्य वस्तुएँ पथ्य अथवा गुणकारी बन जाती हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कवि ने गंगाजल की पवित्रता और उसके जीवनदायी गुणों का वर्णन कर उसके महात्म्य को स्पष्ट किया है।

2. गंगा के प्रति अपनी भक्ति भावना व्यक्त की है।

3. अनुप्रास, भावुक और परिकर अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

4. भाषा सरल, गेय और प्रभावशाली है।

5. रस - माधुर्य

(4)

द्रोपदी औ गनिका गज गीध,
अजामिलि जो कियो सो न निहारो।
गौतम-गेहनी कैसे तरी,
प्रहलाद को कैसे हर्‌यो दु:ख भारो।
काहे को सोच करै 'रसखानि'
कहा करि है रविनन्द विचारो।
कौन की संक परी है जु,
माखन चाखनिहार सो राखन हारो।

शब्दार्थ – गौतम-गेहनी=गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या। हर्‌यों=शमन् किया। रविनन्द=सूर्य पुत्र यमराज। संक=आशंका। राखन हारौ=रक्षा करने वाला।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है, जिसमें कवि रसखान ने अपने आराध्य के प्रति एकनिष्ठ भाव और पूर्ण आत्मविश्वास का वर्णन किया है।

व्याख्या – रसखान अपने आराध्य देव प्रभु श्रीकृष्ण के पतित पावन रूप की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हे मन! भगवान् कृष्ण ने अपनी भक्ति करने वाली द्रोपदी की लाज रखी थी। गनिका (एक व्यभिचारिणी, जो तोते के साथ प्रभु के नाम का स्मरण करती थी), गज (एक हाथी, जिसे मगरमच्छ गहरे जल में ले गया और उसने अंत में प्रभु कृष्ण का स्मरण किया), अजामिल (एक दुष्टात्मा शिकारी जिसने जीवन के अंत में केवल एक बार अपने पुत्र 'नारायण' को याद करने के बहाने प्रभु का नाम लिया) जैसों का उद्धार कर दिया। इन सब का भी हे मन! तुम विचार मत करो। ये सब तो सचेतन जीव थे, किन्तु भगवान् ने तो अचेतन अर्थात् पाषाण जैसी निर्जीव, जड़ वस्तु का जो गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या थी, उद्धार कर दिया था वह प्रभु की भक्ति निष्ठा और प्रभु की भक्तवत्सलता के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इसी प्रकार भक्त प्रहलाद के कष्टों को कितनी आसानी से दूर किया था, यह हर कोई अच्छी

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

तरह से जानता है। कवि स्वयं के मन को समझाते हुए कहते हैं कि हे मन ! तू अपने विषय में क्यों अनावश्यक सोच करता है ? तुझे किस बात की आशंका है ? जब तक मक्खन खाने वाले प्रभु श्रीकृष्ण तुम्हारी रक्षा करने वाले हैं, तब तक तुम्हारा कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता है, यहाँ तक कि सूर्यपुत्र स्वयं यमराज भी तुम्हारे जीवन का अनिष्ट नहीं कर सकता है। क्योंकि जिस पर भगवान् की कृपा होती है उसका उद्धार अवश्य होता है इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में कवि ने अपने आराध्य के प्रति पूर्ण आस्था और अटूट विश्वास के भाव को व्यक्त किया है।

2. ईश्वर को सर्वशक्तिमान और भक्तवत्सल बताकर उनके पतित पावन रूप की पुष्टि की है।

3. पद में अनुप्रास, यमक और उल्लेख अलंकारों का चमत्कारी वर्णन किया है।

4. भाषा - ब्रज, 5. रस - माधुर्य

(5)

मानुष हौं तो वही ''रसखानि'',
बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो,
चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन।
पाहन हौं तो वही गिरिको,
जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं,
नित कालिंदी कूल कदम्ब की डारन।

शब्दार्थ – मानुष=मनुष्य। बसौं=निवास करूँ। पसु=पशु। धेनु=गाय। मँझारन=बीच में। पाहन=पत्थर। गिरि=पर्वत। पुरन्दर=इन्द्र। खग=पक्षी। कालिन्दी कूल=यमुना किनारे।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है। प्रस्तुत पद में कवि ने जन्म-जन्मान्तरों तक हर रूप में अपने आराध्य प्रभु कृष्ण के सामीप्य की चमत्कारी कामना व्यक्त की है।

व्याख्या – कवि रसखान जन्म-जन्मान्तरों तक प्रभु कृष्ण का सामीप्य प्राप्त कर उनके चरणों में रहना चाहते हैं, चाहे वे किसी रूप में रहें। इसी भावना को व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं कि हे विधाता ! अगले जन्मों में आप मुझे जिस किसी भी रूप में जन्म दें, कृष्ण की लीला स्थली में ही जन्म देना, तभी मेरा जीवन सार्थक होगा और यही मेरी कामना है।

कवि कहता है कि यदि मैं मानव रूप में पुनर्जन्म प्राप्त करूँ तो ब्रज के ग्वालों के मध्य रहकर ब्रज की गाय चराने वाला बनना चाहता हूँ। यदि पशु रूप में जन्म हो तो कहना ही क्या है, मैं नन्द बाबा की गायों के साथ उनके बीच में चरने वाली गाय बनना चाहूँगा। यदि पत्थर के रूप में मेरा जन्म हो तो उसी गिरीराज पर्वत का पत्थर बनूँ जिसे ब्रज पर इन्द्र के प्रकोप की रक्षा के लिये प्रभु कृष्ण ने छत्र की भाँति धारण किया था। यदि मुझे पक्षी योनी में जन्म मिले तो सदैव यमुना किनारे स्थित कदम्ब की डालों पर निवास करने वाला पक्षी बनना चाहता हूँ जिससे सदैव प्रभु कृष्ण के सामीप्य की लालसा बनी रह सके। मैं किसी भी स्थिति में श्रीकृष्ण को पाना चाहता हूँ।

विशेष – 1. रसखान यद्यपि जाति के मुसलमान थे किन्तु वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षा लेकर उन्होंने श्रीकृष्ण को अपना आराध्य मान लिया था। वे कृष्ण प्रेम में इतने अनुरक्त हो गये कि ब्रजभूमि (कृष्ण की लीला स्थली) के कण-कण से आत्मिक लगाव हो गया था। इस कारण वे प्रत्येक जन्म में कृष्ण का सामीप्य किसी भी रूप में चाहते थे।इसी भावना की मनमोहक प्रस्तुति कवि ने प्रस्तुत अवतरण में दी है।

2. कवि की एकनिष्ठा और अनन्य आस्था प्रकट हुई है।

3. भक्तहृदय की पवित्रता की पुष्टि होती है।

4. अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. सवैया छंद की पदयोजना भावानुरूप है।

6. भाषा ब्रज है जो सरल, सरस और गेय है।

(6)

या लकुटी अरु कामरिया पर,
राज तिहूँ पुर कौ तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधि को सुख,
नंद की गाय चराय बिसारौं।
''रसखानि'' कबौं इन आँखिन तैं,
ब्रज के वन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिनहूँ कलधौत के धाम,
करील के कुञ्जन ऊपर वारौं।

शब्दार्थ – लकुटी=लकड़ी। अरु=और। कामरिया=काम्बली। तिहुँ पुर=तीनों लोक। आठहुँ सिद्धि=अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ। नौ निधि=शंख-महाशंख आदि निधियाँ। कोठिन =करोड़ों। कलधौत के धाम=स्वर्णमहल।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है। प्रस्तुत पद में कवि अपने आराध्य प्रभु कृष्ण की प्रत्येक वस्तु के प्रति गहरा-अनुराग व्यक्त कर रहे हैं।

व्याख्या – कवि रसखान कहते हैं कि मैं गोचारण करने वाले लीलाधर श्रीकृष्ण की छड़ी और कम्बली का सानिध्य प्राप्त करने के लिये तीनों लोकों के राजसुखों का भी त्याग करने को तैयार हूँ। यदि मुझे नन्द बाबा की गायें चराने का अवसर मिल जाये तो आठों सिद्धियों तथा नौ निधियों के वैभवयुक्त सुखों को न्यौछावर कर सकता हूँ। कवि रसखान कहते हैं कि न जाने कब वह आनन्ददायी सुअवसर प्राप्त होगा जब मैं अपने इन नेत्रों से ब्रज के वन, बाग, बगीचों और तालाबों को देख सकूगा। मैं करोड़ों स्वर्ण-महलों को इन करील की कुंजों पर वारने को तैयार हूँ जिन कुंजों में प्रभु कृष्ण ने गोपियों के साथ मिलकर विभिन्न लीलाएँ की थीं।

विशेष – 1. आराध्य का सामीप्य पाने के लिये सर्वस्व समर्पण की अद्भूत भावना व्यक्त हुई है।

2. अनुप्रास, काव्यलिंग, प्रेय आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। सवैया छन्द की पदयोजना अनुकूल है।

(7)

लोग कहैं ब्रज के ''रसखानि''
अनंदित मंन जसोमति जू पर।
छोहरा आज नयौ जनम्यौ,
तुम सो कोउ भाग भर्‌यो नहीं भू-पर।
बारक दाम संवारि करौ,
धनि पानी पियौ सु उतार ललू पर।
नाचत रावरो लाल गुपाल हा,
काल से व्याल कपाल के ऊपर।

शब्दार्थ – छोहरा=लड़का। बारक=एक बार। व्याल=सर्प। काल=यमराज।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है। कवि ने प्रस्तुत पद में माँ यशोदा के सौभाग्य की सराहना की है और प्रभु कृष्ण की महिमा का गुणगान किया है।

व्याख्या – ब्रजवासी आपस में वार्तालाप करते हैं कि नन्द और यशोदा बहुत सौभाग्यशाली हैं। उन्हें देखकर हम सब भी आनन्दित होते हैं। उनका पुत्र कृष्ण ऐसा अनोखा उत्पन्न हुआ है जिसे कोई भाग्यशाली ही इस पृथ्वी पर पुत्र के रूप में प्राप्त कर सकता है। कृष्ण के रूप सौन्दर्य को एक बार देख लेने मात्र से जीवन धन्य हो जाता है। श्रीकृष्ण ऐसी लीलाएँ करते हैं कि जिन्हें देखकर

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सभी को आश्चर्य होता है। कोई नन्द और यशोदा से कहता है कि तुम्हारा पुत्र यमराज से भी अधिक भयानक कालिया नाग के सिर पर नृत्य कर रहा है। रसखान कहते हैं के श्री कृष्ण की लीलाएँ अवर्णनीय हैं।

विशेष – 1. पद में यशोदा और नन्द का अद्वितीय सौभाग्य दर्शाया है।

2. कवि की भक्ति भावना प्रकाशित हुई है।

3. अनुप्रास और सापेक्ष अलंकार का प्रयोग हुआ है।

4. सवैया छन्द की पद योजना भावानुकूल है।

(8)

धूर भरे अति सोहत स्याम जू,
तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरें अँगना पग,
पैंजनियाँ कटि पीरी कछौटी।
वा छवि को ''रसखानि'' विलोकति,
बारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी,
हरि हाथ सौं लै गयौ माखन-रोटी।

शब्दार्थ – सोभित=शोभायमान। पैजनियाँ=पायल, घुंघरू। कटि=कमर। वा छवि=उस सौन्दर्य। काम=कामदेव। कोटी=करोड़ों।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है। प्रस्तुत भक्ति पद में कवि ने कृष्ण के बाल-सौन्दर्य रूप का मनोहारी चित्रण किया है।

व्याख्या – धूल से युक्त श्यामवर्ण बालक कृष्ण के सिर पर आकर्षक चोटी बहुत शोभायमान लग रही है। उन्होंने पीले रंग की कच्छी कमर पर पहन रखी है तथा पैरों में घुंघरू धारण कर रखे हैं। सूरदास कहते हैं कि बालक कृष्ण के इस रूप सौन्दर्य पर तो कामदेव की करोड़ों कलाएँ भी न्यौछावर की जा सकती हैं। जो भी कोई कृष्ण की इस बाल-छवि को देखता है वह अपने आप को बड़ा भाग्यशाली समझता है। उस कौवे के भाग्य की किन शब्दों में सराहना करूँ जो बालक कृष्ण के हाथों से मक्खन-रोटी छीन कर ले गया। अर्थात् वह काग अत्यंत सौभाग्यशाली है जिसे प्रभु कृष्ण के हाथ से माखन-रोटी ले जाने का सुअवसर मिला।

विशेष – 1. कृष्ण के बाल सौन्दर्य का मनमोहक चित्रण प्रस्तुत है।

2. कवि की अनन्य भक्ति भावना प्रस्तुत की है।

3. अनुप्रास, उपमा और काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

4. सवैया छंद का भाव योजनानुरूप है।

5. पद की भाषा सरल और प्रभावशाली ब्रज है जो गेय है।

6. रस - माधुर्य

(9)

सेस, गनेस, महेस, दिनेस,
सुरेसहु जाहि निरंतर गावै।
जाहि अनादि अनंत अखंड,
अछेद अभेद सुबेद बतावै।
नारद से सुक व्यास रटैं,
पचि हारि तऊ पर पार न पावै।
ताहि अहीर की छोहरियाँ,
छछिया भर छाछ पै नाच नचावै।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – सेस=शेषनाग। महेश=शिव। दिनेस=सूर्य देव। सुरेस=देवराज इन्द्र। अनादि=जिसका प्रारम्भ नहीं। अनंत=जिसका अंत नहीं। सुबेद=सुन्दर वेद। ताहि=जिन्हें। छोहरियाँ=लड़कियाँ।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है। भक्तिपद में कवि रसखान ने प्रभु कृष्ण के परमात्मा स्वरूप का वर्णन कर उनकी अनन्त महिमाओं के प्रति अनन्य भक्तिभाव व्यक्त किया है।

व्याख्या – कवि रसखान कहते हैं कि जिन परमात्मा स्वरूप कृष्ण का गुण-गान स्वयं बुद्धिविधाता गणेश जी, शेषनाग, भगवान् शिव, भगवान् सूर्यदेव, देवराज इन्द्र निरन्तर करते रहते हैं, जिन्हें सुवेदों (चारों वेदों) में अनादि (अजन्मा), अनन्त (मृत्यु रहित), अछेद (अनश्वर) और अभेद्य बताया गया है। देवर्षि नारद, महर्षि शुकदेव और द्वेषायन व्यास जिनके नाम को रटते-रटते हार गये किन्तु वे भी उनका पार नहीं पा सके अर्थात् जिनकी महिमा अगम्य और वर्णनातीत है ऐसे परम प्रभु श्रीकृष्ण को अहीरों की छोरियाँ (ग्वालिनें) अंजुली भर छाछ का लालच देकर अनेक प्रकार से नचाती हैं।

विशेष – 1. परमात्मा सब पर कृपा करने वाले हैं और प्रेम के वशीभूत हैं।

2. परमात्मा स्वरूप कृष्ण की अनन्त महिमा बताई हैं।

3. अनुप्रास, उल्लेख और प्रेय अलंकार का प्रयोग हुआ है।

4. भाषा - ब्रज भाषा, 5. शैली - गेय पद, 6. रस - माधुर्य

(10)

ब्रह्म में ढूँढ्यो, पुरानन गानन,
वेद रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो, सुन्यो न कहूँ कबहूँ,
वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।
टेरत हेरत हारि पर्यो,
''रसखानि'' बतायो न लोग लुगायन।
देखो दुरी वह कुंज कुटीर में,
बैठो पलोटत राधिका वै पायन।

शब्दार्थ – वेद रिचा=वौदिक मंत्र। चायन=रुचि। हेरति=पुकारते। दुरो=छुपा हुआ। पलोटत=सहलाता हुआ।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के ''रसखान'' नामक पाठ के भक्ति-पदों से लिया गया है। प्रस्तुत पद में कवि ने कृष्ण के सर्वव्यापक एवं रहस्यमय ईश्वरी रूप के साथ उनकी लीला विलास का सुन्दर चित्रण किया है।

व्याख्या – कवि रसखान कहते हैं कि जिस परमात्मा को ज्ञानी जन सम्पूर्ण सृष्टि में खोजते रहते हैं, जिसे पाने के लिये वेदों, पुराणों के मंत्रोच्चारण करते हैं, ग्रंथों में जिनके नामों का गान किया जाता है, जिसके रहस्य को जानने के लिये भक्तगण वैदिक मंत्रों का चौगुनी चाव से उच्चारण करते हैं, जिस परमात्मा के रूप आकार को न कभी सुना, न देखा तथा न कभी कुछ पता लगा। हम आज तक यह नहीं जान पाये कि वह कैसा है ? उसे खोजते हुए सभी लोग थक गये किन्तु वह किसी को कहीं पर भी नहीं मिला। वही परमात्मा श्रीकृष्ण रूप में वृन्दावन की कुंजों में छुपा हुआ दिखाई देता है जो कि वहाँ अपनी श्रृंगार लीला के अनुरूप राधा के पावों में पलोटता हुआ उन्हें सहलाता हुआ बैठा है।

विशेष – 1. स्पष्ट किया है कि परमात्मा का साक्षात्कार अत्यन्त कठिन व रहस्यमय है।

2. कृष्ण रूप में परमात्मा लीला विलास के साथ ब्रज में विहार कर रहे हैं।

3. अनुप्रास, वीप्सा और आक्षेप अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(11)

कंस के कोप की फैल गई,
जब ही ब्रज मंडल बीच पुकार सी।
आय गयो तब ही कछनी,
कसकै नटनागर नन्द कुमार री।
द्वैरद को रद खींच लियो,
रसखानि तवै मन आई विचार री।
लागी कुठौर लई लखि तोर,
कलंक तमाल के कीरति डार सी।

शब्दार्थ – कोप=भय। कछनी=कच्छा, कमर बन्द। द्वैरद=हाथी। रद=दाँत। लखि=देखकर। तमाल=ढाँक।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है जो कृष्ण की लीलाओं के पदों से सम्बंधित है। जब क्रोध में आकर कंस ने कृष्ण को मथुरा बुलाया और कपट नीति से वह कृष्ण का वध करना चाहता था तब कंस को किस तरह नीचा देखना पड़ा। उसी समय का वर्णन कवि ने यहाँ पर किया है।

व्याख्या – जिस समय सम्पूर्ण ब्रज-मण्डल में कंस का कोप फैल गया और सभी लोग कष्ट पाने लगे तो कृष्ण का अवतार हुआ। कृष्ण ने कमर कस कर कंस का विरोध किया। कंस ने क्रोध में आकर कृष्ण को मथुरा बुलाया और उन्हें मदमस्त हाथी के नीचे कुचल कर मार देना चाहा। कवि उस समय का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कृष्ण ने उस हाथी के दोनों दाँत पकड़कर खींच लिये और जमीन पर गिरा कर मार दिया।

इस प्रकार कंस की करनी का फल उसी के लिये घातक रहा। सभी लोगों को लगा कि कंसने व्यर्थ ही अपने अहंकार और शक्ति का प्रदर्शन किया है। कंस का यश तमाल की डाल की भाँति टूट कर गिर गया था। और वह कलंकित हो गया था।

विशेष – 1. परम्परागत कथानक को नवीन भावों के साथ व्यक्त किया गया है।

2. अनुप्रास यमक और काव्यलिंग अलंकारों का प्रयोग किया है।

3. पद योजना तथा भावाभिव्यक्ति अनुकूल है।

4. भाषा - ब्रज भाषा

(12)

आयो हुतो नियरे ''रसखानि''
कहा कहूँ तू न गई वह ठैयाँ।
या ब्रज की वनिता जिहि देखि कै,
वारहि प्राणनिं लेत बलैया।
कोउ न काहु की कानि करै,
कछु चेटक सो जु कर्‌यो जदुरैया।
गाइगो तान जगाइगो नेह,
रिझाइगो प्रान चराइगो गैयाँ ।

शब्दार्थ – नियरे=समीप। ठैया=जगह। वनिता=स्त्रियाँ। कानि=मर्यादा। चेटक=जादू। जदुरैया=यदुराज कृष्ण।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने कृष्ण की रासलीला का सुन्दर वर्णन किया है। एक गोपी अपनी सखी से उस कृष्ण लीला को देखने नहीं जाने का दुःख व्यक्त करती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – एक गोपी अपनी दूसरी सखी से कहती है कि जब यशोदा नन्दन यहाँ हमारे पास आये और उन्होंने मनमोहक रासलीला की, तब तुम उस समय उनके पास नहीं जा सकी। तुमने बहुत ही अच्छा अवसर गँवा दिया। इस ब्रज की प्रत्येक स्त्री श्रीकृष्ण के रूप दर्शन के लिये अपने प्राणों तक को न्यौछावर करने के लिये तैयार रहती हैं। सदैव उन पर बलिहारी जाती हैं। जब यदुराज कृष्ण की मनमोहक क्रीड़ाएँ और जादू भरी रासलीला प्रारम्भ होती है तो कोई भी गोपी किसी की कुछ सुनती ही नहीं है और अपनी मान-मर्यादाओं की भी चिन्ता नहीं करती है। अर्थात् कृष्ण की क्रीड़ाओं से आसक्त होकर सभी स्त्रियाँ लोकलाज व मान-मर्यादा भूल कर उसी के प्रेम रंग में रंग जाती हैं। श्रीकृष्ण अपनी मुरली की तान सुनाकर सभी में प्रेम जाग्रत कर देते हैं और रासलीलाओं से सभी को मुग्ध कर गाय चराते रहते हैं। इस प्रकार किशोरवय श्रीकृष्ण का प्रत्येक कार्य-कलाप ब्रज वासियों को अत्यन्त आनंददायी लगने लगता है। ऐसा लगता है कि कृष्ण ने सभी पर कोई जादू-टोना सा कर दिया हो।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में कवि ने श्रीकृष्ण की सरस रासलीला का वर्णन कर अपनी आस्था और भक्ति भावना व्यक्त की है।

2. अनुप्रास, यमक और काव्यलिंग अलंकारों का प्रयोग किया है।

(13)

तेरी गलीनि में जा दिन तै,
निकस्यों मन मोहन गोधन गावत।
ये ब्रज लोग सौं कोनसी बात,
चलाइके जो नहीं नैन चलावत।
वे ''रसखानि'' जो रीझिंगे नेकु तो,
रीझिके क्यों न बनाय रिझावत।
बावरी जो पै कलंक लग्यो तो,
नि:संक ह्वै काहे न अंक लगावत।

शब्दार्थ – निकस्यो=निकला। गोधन=गैया। रीझिगो=प्रसन्न हो गया। बावरी=पगली। निसंक=बिना संकोच। अंक=बाहों में।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने गोपियों के परस्पर संवाद् को प्रकट किया है। एक गोपी अपनी सखी को कृष्ण से भरपूर आलिंगनबद्ध होने की सलाह देती है।

व्याख्या – एक गोपी अपनी सहेली से कहती हैं कि हे सखी! जब से गोपाल कृष्ण अपनी गायों को हाँकते हुए और बाँसुरी बजाते हुए तुम्हारी गली से निकले हैं, तब से ये ब्रज के सभी लोग तुम्हारे सम्बन्ध में न जाने क्या-क्या बातें बनाते रहते हैं और आँखें चलाकर तरह-तरह के संकेत करते रहते हैं। गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी! यदि कृष्ण तुम पर थोड़ा-सा भी रीझ गया है तो तुम उसे और अधिक रिझाकर अपना क्यों नहीं बना लेती हो। तुम तो पगली हो, जब तुम पर कृष्ण प्रेम का कलंक लग ही गया है तो नि:संकोच तुम कृष्ण को अपनी बाहों में भरकर कृष्ण के साथ उसके सामीप्य का भरपूर आनन्द क्यों नहीं लेती हो? अर्थात् उनका दृढ़ आलिंगन कर अपने जीवन को सफल बना लो।

विशेष – 1. स्पष्ट किया है कि कृष्ण की मोहक क्रीड़ाएं गोपियों को प्रेमासक्त कर लेती है जिसके कारण उन्हें कई प्रकार की बदनामी सहन करनी पड़ती है।

2. अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

3. पद में भावानुकूल शब्द योजना है।

4. भाषा सरल, रोचक और प्रभावशाली है।

(14)

वह नंद को साँवरो छैल अली,
अब तो अति ही इतरान लग्यो।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

नित घाटन बाटन कुंजन में,
मोहि देखत ही निपरानि लग्यो।
'रसखानि' बखान कहा करिये,
तकि सैननि सों मुसकानि लग्यो।
तिरछी बरछी सम मारत है,
दृग बान कमान सु कान लग्यो।

शब्दार्थ – छैल-छबीला=नटखट। अली=सखी। अति=जादा ही। नित=रोजाना। पिरान लग्यो=रिझाने लगा। तकि=आँखों की नजर। सैननि=इशारों से। बरछी=कटारी। दृग=नेत्र।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है जिसमें रसिक शिरोमणी श्रीकृष्ण की शृंगार लीला का मनमोहक वर्णन किया है।

व्याख्या – एक गोपी अपनी दूसरी सखी से कहती है के हे सखी! आजकल वह नन्दबाबा का लाडला नटखट कृष्ण तो बहुत ही ज्यादा इतराने लग गया है। वह हमेशा यमुना के घाटों, ब्रज के मार्गों और कुंजों में मुझे देखते ही मधुर हँसी हँसने लगता है तथा अपनी रसिक भावना प्रकट करता है। रसखान कवि कहते हैं कि कृष्ण की रसिक लीलाओं का कहाँ तक वर्णन करूँ? गोपी कहती है कि हे सखी! कृष्ण मेरी ओर एक टक देखकर मुस्कुराने लगता है और सुन्दर आँखों से न जाने कैसे-कैसे संकेत करता रहता है। उस समय उसकी दृष्टि रूपी धनुष से ऐसे बाण छूटते हैं कि ह्रदय को एकदम भेद जाते हैं। उनकी तिरछी नजर बरछी की तरह कलेजे में उतर जाती है। अर्थात् अब नन्दलाल कृष्ण कुछ अधिक ही शरारती हो गया है। वह किशोर होने के साथ-साथ रसिक भी हो गया है और वह हमारे साथ रति-क्रीड़ा करना चाहता है।

विशेष – 1. कृष्ण की रसिक प्रवृत्ति और गोपियों की प्रेमासक्ति का सुन्दर चित्रण किया गया है।

2. अनुप्रास, उपमा और रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

3. सवैया छन्द की भावयोजना पदानुकूल है।

(15)

चीर की चटक औ लटक नव कुण्डल की,
भौंह की मटक नेक आँखिन दिखाउ रे।
मोहन सुजान गुन रूप के निधान फेरि,
बाँसुरी बजाय तनु तपन सिराउ रे।
ए हो बनवारी बलिहारी जाउँ तेरी आजु,
मेरी कुंज आय नेक मीठी तान गाउ रे।
नन्द के किसोर चित्त चोर मोर पंख बारे,
बंसी वारे साँवरे पियारे इत आउ रे।

शब्दार्थ – चीर=वस्त्र। चटक=चमक। सुजान=प्रियतम। निधान=भण्डार। नेक=थोड़ी-सी। सिराउ=शान्त। इत=इधर।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है। प्रेम माधुरी से सम्बंधित इस पद में एक गोपी श्रीकृष्ण को अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास कर अपनी प्रेमाग्नि को शांत करने की भावना व्यक्त करती है।

व्याख्या – गोपी मनमोहन कृष्ण से प्रेम निवेदन करती हुई कहती है कि हे कृष्ण! आप अपने वस्त्रों की चमक और मधुर कुण्डलों की लटक को दिखाकर मुझे प्रसन्न कीजिये। अपनी तिरछी भौंहों की मटक दिखाकर प्रेम नजरों से कुछ लीला करिये। हे सुजान कृष्ण! आप गुण और रूप के भण्डार हैं। आप अपनी मुरली की मधुर तान से मेरे शरीर के प्रेम विरह संताप को शांत करने की कृपा कीजिये। हे बनवारी श्रीकृष्ण। मैं आप पर बलिहारी जाती हूँ। आज आप मेरे कुंज में आकर अर्थात् मेरे पास आकर अपनी मुरली की मधुर तान

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सुना दीजिये। हे नन्दकिशोर ! गोपियों के चित्त को चुराने वाले, हे मुरलीधर श्यामसुन्दर ! आज आप मेरा प्रेम-निवेदन सुनकर कुछ समय के लिये मेरे पास अवश्य आ जाइये।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में एक गोपी ने अपनी अभिसार भावना व्यक्त की है।

2. संयोग श्रृंगार रस की पुष्टि होती है।

3. अनुप्रास यमक और काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

4. कवित्त छन्द की पद मैत्री और गेयता सुन्दर है।

(16)

ब्याही अनब्याही ब्रज माही सब चाही तासो।
दूनी सकुचाही दीठि परै न जुन्हैया की।
नेकु मुस्कानि ''रसखानि'' की बिलोकत ही,
चेरी होत एक बार कुंजनि किरैया की।
मेरा कह्यो मान अन्त मेरो गुन मानि है री
प्रात खात जात न सकात सौहं भैया की
माइ की अटक तो लौं, सासु की हटक तौ लौ,
देखी न लटक जौ लौ सावरे कन्हैया की।

शब्दार्थ – ब्याही=शादीशुदा। अनब्याही=कुँवारी। दीठि=दृष्टि। जुन्हैया=कृष्ण। नेकु=थोड़ा-सा। बिलोकति=देखते ही। चेरी=दासी। सकात=सकना। अटक=भय। हटक=फटकार।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है। प्रस्तुत प्रेम-पद में कवि ने एक गोपी के मन में उत्पन्न प्रेमासक्ति की व्यंजना की है।

व्याख्या – गोपियों के परस्पर संवाद में एक गोपी दूसरी सखी से कहती है कि हे सखी ! ब्रज की सभी गोपियाँ श्रीकृष्ण के रूप-माधुर्य और लीलाओं को देखकर परवश हो गई हैं। चाहे कोई विवाहिता हो या अविवाहिता हो। सब श्री कृष्ण को अपने प्रियतम के रूप में चाहती हैं। यदि श्रीकृष्ण की प्रेमदृष्टि किसी कारणवश किसी स्त्री पर नही पड़ती है तो वह अधिक संकोच करने लगती है। अर्थात् मन ही मन में व्याकुल और उदास हो जाती है। रसखान कवि कहते हैं कि सभी स्त्रियाँ थोड़ी-सी मुस्कान भरी दृष्टि से अपनी ओर देखने के लिये सदैव लालायित रहती हैं। हमेशा कुंजबिहारी श्रीकृष्ण की दासी बन जाने के लिये तत्पर रहती हैं। एक गोपी कहती है कि हे सखी ! तुम मेरा कहा मान लो, तुम्हें मेरी बात मानने का सुखद फल अवश्य ही मिलेगा, तुम्हारे मन में उन कृष्ण के प्रति जो प्रेम उमड रहा है, उसे छुपायानहीं जा सकता है और प्रतिदिन भाई को सौगन्ध खाकर मना भी नहीं किया जा सकता है। प्रियतम कृष्ण से मिलने में अनेक बाधाएँ रहती हैं। एक ओर तो माँ का भय और दूसरी ओर सास की फटकार की चिन्ता रहती है, परन्तु जब तक कृष्ण के रूप-माधुर्य और उनकी लीलाओं का ठीक प्रकार से अवलोकन नहीं हो जाता है तब तक मन को शांति नहीं मिलती है अर्थात् अनेक बाधाओं के रहने पर भी मन हमेशा कृष्ण की ओर आसक्त रहता है। अब तो मन से लोक लाज का भय भी समाप्त होता जा रहा है।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में गोपियों की प्रेमासक्ति का सुन्दर वर्णन है।

2. अनुप्रास, यमक और काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग हुआ है।

3. कवित्त छंद की पद मैत्री और गेयता अनुकूल है।

(17)

लीने अबीर भरे पिचका,
''रसखानि'' खड़्यो बहु भाव भरोजू।
मार से गोपकुमार कुमार सौं,
देखत ध्यान टरो न टरो जू।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पूरब पुन्यनि दाँव परयो अब,
राज करौ उठि काज करो जू।
अंक भरो निरसंक उन्है,
इहि पाख पतिव्रत ताख धरो जू।

शब्दार्थ – अबीर=गुलाल। पिचका=पिचकारी। टरो=टलना। पूरब पून्यनि=पूर्व जन्म के पुण्य। अंक=गोद। निरसंक=नि:संकोच।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है, जिसमें कवि ने वृन्दावन में गोपियों के साथ कृष्ण के द्वारा होली खेलने का चित्रण किया है।

व्याख्या – कवि रसखान कहते हैं कि होली पर 'फाग उत्सत्र' मनाने का अवसर आता है, उस समय श्रीकृष्ण हाथों में अबीर-गुलाल और पिचकारी में रंग भरकर अनेक-अनेक मनोरम भावों के साथ एक स्थान पर खड़े हो जाते हैं। उस समय वे अबीर-गुलाल से अनेक गोप कुमारों को रंगारंग कर देते हैं और उन पर पिचकारी से रंगों का प्रहार करते हैं। उस समय वे अपनी जगह से थोड़ा-सा भी नहीं हटते हैं। उनकी लीलाओं को देखकर गोपियाँ स्वयं को धन्य मानती हैं। वे कहती हैं कि यह हमारे पूर्व जन्म के पुण्यों का ही प्रताप है कि हमें श्रीकृष्ण के साथ होली खेलने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। फागोत्सव की इस प्रसन्नता के अवसर पर कृष्ण चाहे कोई भी कार्य करे उससे सभी गोपियों को हार्दिक प्रसन्नता होती है। गोपियाँ कहती हैं कि यह पखवाड़ा इतना आनन्दमयी है कि जिसमें ब्रज की गोपियाँ अपने पति धर्म को ताक में रखकर नि:संकोच वे कृष्ण को अपनी बाहों में भर लेती हैं और उनका पूर्ण आलिंगन सुख भोगती हैं क्योंकि ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलता है।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में वृन्दावन के फागोत्सव का सुन्दर चित्रण किया है। यह उत्सव एक पखवाड़े तक चलता है।
2. गोपियों और गोप कुमारों के उल्लास का वर्णन किया गया है।
3. अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।
4. प्रस्तुत पद सवैया छंद में लिखा गया है।
5. रस - श्रृंगार रस
6. भाषा - ब्रज

(18)

काहू सों माइ कहा कहिये,
सहिये सु जोई ''रसखानि'' सहावै।
नेम कहा जब प्रेम किये,
अब नाचिये, सोई जो नाच नचावै।
चाहति हैं हम और कहा सखि,
क्यों हूँ कहूँ प्रिय देखन पावै।
चेरिय सो जु गुपाल रचै तौ,
चलौ री सबै मिलि चेरी कहावै।

शब्दार्थ – काहू सो=किसी से। कहा कहिये=क्या कहें। नेम=नियम, पतिधर्म। सोई=वही। चेरिये=दासियाँ।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है, जिसमें कवि ने गोपियों के मन में कृष्ण के प्रति आसक्ति और उनकी मनोदशा का सुन्दर चित्रण किया है।

व्याख्या – कवि रसखान गोपियों की परस्पर वार्ता को स्पष्ट करते हैं। गोपियाँ कहती हैं कि अब अपने मन की दशा के बारे में हम किसी से क्या कहें ? अर्थात् कुछ कहा नहीं जा सकता है। अब हम पूर्णतया कृष्ण पर प्रेमासक्त हो गई हैं। अब वे हमारे साथ

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैसा भी व्यवहार करेंगे, हमें वैसा ही सहन करना पड़ेगा। अब हमें अपने सभी नियम या पतिधर्म आदि की बात भी सोचना व्यर्थ है, क्योंकि हमारी सारी लोक-लाज समाप्त हो गई है और हम कृष्ण से हार्दिक प्रेम कर चुकी हैं। अत: वे अब हमें जैसा नाच नायेंगे हमें नाचना पड़ेगा। अब हम अपने प्रियतम कृष्ण के ही इशारे पर चलेंगी। एक गोपी कहती है कि हे सखी ! हमें इससे अधिक और क्या चाहिये। अब तो यदि कृष्ण हमें अपनी दासियाँ भी बना लें तो हम इसके लिये भी तैयार हैं। हमें अब उनकी दासी कहलाने में जरा सा भी संकोच नहीं होगा।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में गोपियों की कृष्ण के प्रति प्रेमनिष्ठा और समर्पण भाव को स्पष्ट किया गया है।

2. 'नाच-नचाना' मुहावरे का सुन्दर प्रयोग है।

3. अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग किया गया है।

4. रस - शृंगार रस, 5. भाषा - ब्रज

(19)

छीर जो चाहत चीर गहै,
जू लेहु न केतक छीर अचैहौं।
चाखन के हित माखन मागत,
खाउ न माखन कैतिक खैहौं।
जानत है जिय की 'रसखानि',
सु काहे को ऐतिक बात गढैहौं।
गौरस के मिस जो रस चाहत,
सो रस कान्ह जू नैकु न पैहौं।

शब्दार्थ – छीर=दूध। चीर=वस्त्र। केतक=कितना भी। अचैहौं=चाहते हो। हित=लिये। सुकाहे=तो किसलिये। एतिक=इतनी। गोरस=मक्खन। मिस=बहाने। नेकु=जरा सा भी।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है, जिसमें कवि रसखान ने बताया है कि कृष्ण ने मक्खन माँगने के बहाने एक गोपी को छेड़ दिया तब गोपी ने कृष्ण को भावानुकूल उत्तर दिया। इसी दृश्य का सुन्दर चित्रण है।

व्याख्या – रसखान कृष्ण की नटखटलीला का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जब कृष्ण ने एक गोपी से मक्खन माँगा तो मक्खन के बहाने उन्होंने उसके वस्त्रों को पकड़ लिया। गोपी कहती हैं कि हे कृष्ण ! यदि तुम मुझसे दूध माँग रहे हो तो मेरे वस्त्र क्यों पकड़ रहे हो ? तुम्हें कितना दूध चाहिये ? जितना चाहो उतना ले लो। यदि तुम चखने के बहाने मक्खन माँग रहे हो तो जितना चाहो मक्खन ले लो और जितना खा सकते हो, उतना खालो। हे कृष्ण ! जब तुम मेरे मन की बात अच्छी तरह से जानते हो तो क्यों दूध लेने और मक्खन चखने का बहाना बना रहे हो और इस तरह का व्यवहार कर रहे हो। अपने मन की बात तुम साफ-साफ क्यों नहीं कह देते हो ? गोपी कहती है कि यदि तुम्हें दूध और मक्खन के बहाने प्रेम-रस चाहिए तो वह रस तुम्हें थोड़ा-सा भी नहीं मिलेगा अर्थात् तुम्हारे इस प्रकार के अड़ियल और नटखट स्वभाव से तो मैं तुम्हें थोड़ा-सा भी प्रेम नहीं करूँगी।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में गोपी के चातुर्य और वाचाल रूप को स्पष्ट किया है।

2. कृष्ण के प्रेम को जान-बूझकर स्वीकार नहीं करती है।

3. अवतरण में अनुप्रास, यमक और ब्याजोक्ति अलंकार है।

4. सवैया छंद की पद-योजना सुन्दर है।

5. रस - शृंगार रस, 6. भाषा - ब्रज

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(20)

दानी भये न ये मागत दान,
सुनै जु पै कंस तौ बाँधि के जैहों।
रोकत हौ मग में ''रसखानि''
पसारत हाथ कछू नहिं पैहों।
टूटे छरा, बछरादिक गोधन,
जो धन हैं सु सबै घर दैहों।
जैसे अभूषण काहु सखी को तो, मोल छला के लला न बिकैहौ।

शब्दार्थ – मग=रास्ता। पैहों=प्राप्त करोगे। छला=सिक्का या छल्ला। लला=प्रिय कृष्ण।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है, जिसमें रसखान ने गोपियों के द्वारा कृष्ण के मथुरा-गमन का विरोध जताया है।

व्याख्या – जब मथुरा से कंस द्वारा भेजे गये अक्रूर जी आदि वृन्दावन में आये और कृष्ण को अपने साथ मथुरा चलने का निमंत्रण दिया तो गोपियों ने इस बात का विरोध जताया। गोपियों ने कहा कि जो दूसरों को जीवन दान देने वाले होते हैं वे कभी भी स्वयं दान नहीं माँगते हैं। यदि इनके दानी होने की बात को कंस सुन ले तो इन्हें बाँध कर अपने साथ ले जावें। यदि मार्ग में इन्हें कोई रोक कर दान की याचना कर हाथ फैलावे तो ये उसे कुछ भी नहीं दे सकते हैं। यहाँ से मथुरा जाने पर इनकी सारी गायों के बछड़े तथा सभी गायें बिछुड़ सकती हैं और ये अपने आपको ब्रज में वितरित कर सकते हैं। इसलिये एक गोपी कहती है कि चाहे कितना भी बहुमूल्य आभूषण दे परन्तु हम एक साधारण छल्ले के लिये भी अपने कृष्ण को दूसरों के हाथों नहीं बेचेंगी।

विशेष – 1. प्रस्तुत अवतरण में गोपियों का अभिप्राय यह है कि वे कृष्ण के सामीप्य को बनाए रखने के लिये अपना सर्वस्व त्याग कर सकती हैं।

2. आक्षेप के साथ अपने मन की व्यथा को व्यक्त किया है।
3. अवतरण में अनुप्रास, यमक और आक्षेप अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।
4. गोपियों की कृष्ण के प्रति अन्येयता की भावना दृष्टव्य हैं।
5. भाषा - ब्रज

(21)

कानन दे अँगुरी रहिहौं,
जब-हौं मुरली धुनि मंद बजैहैं।
सोहनी तानन सौं 'रसखानि',
अटा चढ़ि गो धन गैहै तो गैहैं।
टेरि कहौ सिगरे ब्रज लोगनि,
काल्हि कोउ कितनो समुझै हैं।
माइ री बा मुख की मुस्काय,
सँभारि न जैहैंने जैहैं न जैहैं।

शब्दार्थ – कानन=कानों में। जबहौ=जब। मंद=धीमे-धीमे। सोहनि=सुहानि, मधुर। अटा चढि=ऊपर मुँह कर के। गैहें=रँभाने लगती हैं।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है, जो कृष्ण की 'लीला-विलास' पर आधारित है। इसमें कृष्ण की मधुर मुस्कान, मधुर मुरली वादन का आनन्द और गोपियों की विवशता का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – कवि रसखान गोपियों के शब्दों में कहते हैं कि जब मैं श्रीकृष्ण की मुरली की मधुर धुन सुनती हूँ तो कानों में अँगुली डाल लेती हूँ। हे सखी ! मुरली की वह तान अत्यंत सुरीली और मधुर लगती है कि ब्रज की गायें भी ऊपर की ओर मुँह करके रँभाने लगती हैं। इस तरह कृष्ण की मुरली गायों को भी प्रेमासक्ति के लिए विवश कर देती है। ब्रज के लोग कृष्ण को पुकार कर कहते हैं कि हे कृष्ण ! हम पहले भी तुम्हें कई बार समझा चुके हैं, अब और कितना समझाएँ। अंत में एक गोपी कहती है कि हे सखी ! उन कृष्ण के मुख की मधुर मुस्कान को देखकर मैं स्वयं को सँभाल नहीं पाती हूँ और उसके प्रेम के लिये विवश हो जाती हूँ।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में गोपियों की प्रेमासक्ति और मुरली की मधुर तान का सुन्दर वर्णन है।

2. अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश और पर्यायोक्त अलंकार का प्रयोग किया गया है।

3. पद की गेयता और भाषा सौष्ठव प्रशंसनीय है।

(22)

मोर पखा सिरि ऊपर राखिहों,
गुंज की माल गरे पहिरौं जी।
ओढि पिताम्बर लै लकुटी,
बन गावत गोधन अंग फिरौंगी।
भावतो बोही मेरो ''रसखानि'' सौं,
तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
पे मुरली मुरलीधर को,
अधरान धरी अधरा न धरौंगी।

शब्दार्थ – मोर पखा=मोर पंख। गरै=गले में। लकुटी=लकड़ी। भावतो=अच्छा लगता। अधराधर=होठों पर।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है, जिसमें कवि ने कृष्ण के प्रति गोपियों की प्रेमासक्ति को बहुत ही रोचक ढंग से चित्रित किया है।

व्याख्या – कवि रसखान कहते हैं कि गोपियाँ कृष्ण के प्रेम में इतनी आसक्त हो गई कि उसे रिझाने और अपने अनुकूल बनाने के लिये कृष्ण के अनुसार अपना भेस बनाने को भी तैयार हो जाती हैं।

एक गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी ! मैं कृष्ण की माधुरी छवि को अपने शरीर पर आरोपित करना चाहती हूँ, जिससे कृष्ण का सामीप्य हमेशा के लिये बना रहे। वह कहती है कि मैं अपने सिर पर मोर पंखों का मुकुट धारण करूँगी। गले में गुंजा की माला धारण करूँगी और हाथ में लकड़ी लेकर पीताम्बर पहनकर वन में मधुर गान गाती हुई गायों के साथ घूमती रहूँगी तथा कृष्ण की सारी मन भावन क्रीड़ाएँ करूँगी जो कृष्ण करते रहते हैं। गोपी कहती है कि मैं कृष्ण के जैसे सारे कार्य करने को तैयार हूँ किन्तु कृष्ण की तरह मुरली को अपने होठों पर नहीं रखूँगी क्यों कि मुरली को होठों पर रखने का अधिकार तो केवल कृष्ण को ही है और वे ही मधुर तान सुना सकते हैं।

विशेष – 1. गोपियों के माध्यम से कृष्ण के लीला विलास की व्यंजना हुई है।

2. गोपियों का कृष्णमय होना बताया है।

3. पद में अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(23)

अबहि गई खिरक गाय के दुहाइवें को।
बावरी ह्वैं आई डारि दोहनी यों पानि की।
कोउ कहे छरी, कोउ भौन परी, डरी कोउ,
कोउ कहै मरी, गति हरी अँखियानि की।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

सास ब्रत ठाने, नन्द बोलत सयाने, धाई,
दौरि-दौरि जानै मानै खोरि देवतान की।
सखी सब हँसैं मुरझाई पहिचानि, कहूँ,
देखि मुसकानि वा अहीर ''रसखानि'' की।

शब्दार्थ – खिरक=बाड़ा। दोहनी=दूध दुहने का बर्तन। छरी=बावरी। भौन परी=घर में घुस गई। गति=चेतना।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' पाठ से अवतरित है, जिसमें कवि ने कृष्ण की नटखट लीला का चमत्कारी वर्णन किया है।

व्याख्या – रसखान कवि कहते हैं कि एक गोपी अपने घर के बाड़े में दूध दुहने गई ही थी, कि वह तुरन्त डर कर दुहनी वहीं छोड़ कर भागी हुई चली आई। उस समय वह गोपी बावली सी हो गई और बिना दूध दुहे ही लौट आई। उसकी दशा इतनी खराब हो गई कि उसे देख कर कोई तो उसे पागल बताने लगी और छड़ी मंगाने लगी। कोई गोपी भयभीत होकर अपने घर में छुप गई। कोई बेहोश हो गई। इस प्रकार वहाँ पर सभी की दशा बिगड़ गई।

(भावार्थ यह है कि जो गोपी अपने घर के बाड़े में दूध दुहने के लिये गई थी, उसने वहाँ पर भय उत्पन्न करने वाली किसी चीज का सही अनुमान न लगा पाने के कारण वह भयभीत हो गई थी जिसे देखकर अन्य लोग भी परेशान हो गये।) उस समय उस गोपी की सास किसी ब्रत की पारणा कर रही थी, तब दौड़ कर वहाँ पर नन्दबाबा आ गये। उन्होंने सब कुछ देखकर कहा कि तुमने किसी देवता को अपराध करके रूष्ट कर दिया है इसीलिये इस प्रकार को अज्ञात भय की स्थिति उत्पन्न हुई है। रसखान कवि कहते हैं कि इसके बाद एक चतुर गोपी ने कहा कि वहाँ गौशाला में नटखट कृष्ण छुपा हुआ है, उसने इससे छेड़छाड़ की हरक़त (क्रिया) की है। इसीलिये यह गोपी वहाँ से भाग कर आ गई है। अत: वह गोपी कृष्ण की जादुई मनमोहक मुस्कान को देख करके पागल सी हो गई थी।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में गोपी की मनोदशा और प्रेमासक्ति के साथ भ्रान्ति जनक स्थिति का वर्णन किया है।

2. अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग हुआ है।

3. कवित्त छन्द की पदयोजना प्रशंस्य है।

(24)

बंसी बजावत आनि कढ़्योरी,
गली में अली कछु टोना सो डारै।
नेक चितै तिरछी करि दीठि,
चलो गयो मोहन मूठि सी मारै।
ताही धरी सी परी वह सेज पै,
प्यारी न बोलत प्रानहुँ वारै।
राधिका जीहैं तो जीहें सबै,
न तो पिहै हलाहल नन्द के द्वारै।

शब्दार्थ – टोना=जादू। नेक=जरासी। दीठि=दृष्टि। धरी=समय। चितै=देखना। बारै=न्यौछावर। हलाहल=जहर, विष।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' नामक पाठ से अवतरित है। लीला-विलास से लिये गये पद में राधा और कृष्ण के प्रथम परिचय के बाद राधा की प्रेमासक्ति युक्त हालत का वर्णन किया गया है।

व्याख्या – एक गोपी अपनी दूसरी सखी को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे सखी! जब से नन्दलाल कृष्ण अपनी मुरली की मधुर तान सुनाता हुआ इस गली से निकला है, तब से राधा पर कोई जादू-सा कर दिया है। तभी से राधा प्रेम रोग से पीड़ित हो गई है।गोपी कहती है कि कृष्ण ने अपने नेत्रों की तिरछी दृष्टि से राधा की ओर देखा और चले गये तब से ही राधा की यह हालत बनी है। ऐसा लगता है मानो उन्होंने राधा पर कोई मूठ का कठोर प्रहार कर दिया है। उसी समय से राधा विरह व्यथा से व्याकुल अपनी शैया पर पड़ी हुई है। वह कुछ भी नहीं बोल रही है और अपने प्राणों को न्यौछावर करने के लिये तत्पर पड़ी है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गोपियाँ कहती हैं कि यदि राधा जीवित रहेगी तो हम सब जीवित रहेंगी। यदि राधा को कुछ हो गया तो हम सब नन्द बाबा के द्वार पर विष खाकर आत्महत्या कर लेंगी।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में राधा के साथ ही अन्य गोपियों की प्रेमासक्ति का सुन्दर वर्णन किया है।

2. अनुप्रास, रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है।

3. पद में सवैया छंद का पद योजना है।

(25)

लाज को लेप चढाइके अंग,
पचीं सब सीख को मंत्र सुनाइ कै।
गाडरु ह्वै ब्रज लोक थक्यो,
करि औषधि बासुक सोह दिवाय कै।
उधौ सौ कौ ''रसखानि'' कहै,
जिन चित्त धर्‌यो तुम एते उपाइ कै।
कारे बिसारे को चाहे उतार्‌यो,
अरे विष बावरे राख लगाइ कै।

शब्दार्थ – पची=थक गई। बासुक=शेषनाग। एते=इतने।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'रसखान' नामक पाठ से अवतरित है जिसमें कवि ने गोपियों की प्रेम निष्ठा और आसक्ति का मार्मिक चित्रण किया है।

व्याख्या – रसखान कवि कहते हैं कि गोपियाँ कृष्ण को अपना प्रियतम मानकर उनसे अतिशय प्रेम करती हैं। किन्तु वे अपने प्रेम को खुला व्यभिचार नहीं मानती हैं। गोपियाँ कहती हैं कि हम अपने शरीर पर नारी सुलभ लज्जा अथवा लोकलाज का लेप लगाकर या आवरण चढाकर ही अपना प्रेम व्यक्त करती हैं तथा अपने प्रियतम से भी ऐसे ही आचरण की अपेक्षा करती हैं।

एक गोपी कृष्ण के प्रेम में इतनी दीवानी हो जाती है कि वह लोकलाज की तथा सखियों के द्वारा दी जाने वाली सीख की थोड़ी-सी भी परवाह नहीं करती है। सारे ब्रजवासी श्रीकृष्ण की लीलाओं के वशीभूत रहते हैं और अनेक प्रकार के उपाय करके तथा शेषनाग की सौगन्ध दिलाकर उद्धव को वापिस लौट जाने के लिये कह देते हैं। वे उद्धव से कहते हैं कि जिस प्रकार तुम योग-साधना के अनेक उपाय बता रहे हो, उन्हें तुम स्वयं क्यों नहीं अपना लेते हो ? तुम चाहे कुछ भी कहो किन्तु अपना काला अथवा धोखा देने वाला स्वभाव नहीं बदल सकते हो ? क्या कोई प्रेमासक्ति रूपी विष से विमोहित लोगों के लिये यह संभव है ?

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में उद्धव के व्यवहार की अपेक्षा की है।

2. गोपियों की प्रेमनिष्ठा का वर्णन किया है।

3. अनुप्रास, रूपक और समासोक्ति अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है।

4. भाव योजना में क्लिष्टता परिलक्षित होती है।

7.2 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

7.2.1 अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. रीतिकाल के प्रेमी कवि 'रसखान' का रचनाकाल कौन-सा है तथा उन्होंने कौन-सी प्रमुख रचनाएँ लिखीं ?

उत्तर – कवि 'रसखान' का रचनाकाल संवत् 1640 से 1670 के लगभग माना गया है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं –

1. प्रेमवाटिका, 2. सुजान रसखान।

प्रश्न-2. ''रसखान'' का पूरा नाम क्या था ?

उत्तर – रसखान का पूरा नाम 'इब्राहिम रसखान' था।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न- 3. रसखान का जन्म कब और कहाँ हुआ ?

उत्तर — रसखान का जन्म दिल्ली में सं. 1615 के आसपास का माना जाता है।

प्रश्न- 4. रसखान ने किस सम्प्रदाय में दीक्षा ली थी और इनकी भक्ति किस प्रकार की मानी जाती है ?

उत्तर — रसखान ने गुसाई विट्ठलनाथ से पुष्टिमार्गीय वल्लभ सम्प्रदाय से दीक्षा ली थी। इनकी भक्ति सूफ़ी प्रेमादर्श से प्रभावित प्रेमनिष्ठ थी।

प्रश्न- 5. प्रभु कृष्ण की कौन-सी वस्तुओं पर रसखान तीनों लोकों का राज्य न्यौछावर देने को तैयार हैं ?

उत्तर — गोचारण में काम आने वाली लकड़ी और कम्बली पर कवि तीनों लोकों के राज्य का सुख न्यौछावर करने को तैयार हैं।

प्रश्न- 6. ''रसखान'' दिल्ली से ब्रज किन परिस्थितियों में आये ?

उत्तर — रसखान ने दिल्ली में एक विप्लव होते हुए देखा। उससे व्यथित होकर ये दिल्ली से ब्रज में चले आए। ये पठान राजवंश के थे। जब दिल्ली पर मुगलों ने आक्रमण कर दिया तो पठान वंश पराजित हो गया तब ये वहाँ से भागे और मथुरा के आस-पास आकर रहने लगे।

प्रश्न- 7. 'प्रेम वाटिका' नामक रचना में कवि ने किसका वर्णन किया ?

उत्तर — 'प्रेम वाटिका' में रसखान ने प्रेम विषयक अनेक सिद्धान्तों का सुन्दर वर्णन किया है।

प्रश्न- 8. रसखान ने गंगा जल की क्या विशेषताएँ बताई हैं ?

उत्तर — रसखान के अनुसार गंगा का जल अमृत है। वह तो संजीवनी के समान है। उसका पान करने से सभी कुपथ्य पथ्य में बदल जाते हैं। अर्थात् विष भी अमृत बन जाता है।

प्रश्न- 9. बीमार हो जाने पर कवि रसखान ने कौन-सा संयम बताया है कि जिससे तुरन्त प्रभाव से लाभ मिले ?

उत्तर — कवि रसखान के अनुसार गंगाजल के पान की युक्ति बताई है। इसके जल में वह गुण है जो संजीवनी में है।

प्रश्न- 10. ''राधिका जी है तो जीहैं सब, न तो पीहैं हलाहल नन्द के द्वारे'' पंक्तियों में गोपियों का कौन-सा भाव स्पष्ट हुआ है ?

उत्तर — ''राधा के माध्यम से गोपियों ने अपने मन की प्रेमासक्ति और कृष्ण के प्रति त्याग मयी भावना को प्रकट किया है।

प्रश्न-11. **त्यौ ''रसखानि'' वही ''रसखानि',**

जु है रसखानि सो है रसखानि।

इस पंक्ति से कवि का क्या आशय है ?

उत्तर — कवि ने श्रीकृष्ण को उत्तम रस की खान बताया है, और वे स्वयं आनन्द का भोग करके दूसरों को भी आनन्दित करते हैं।

प्रश्न- 12. ''नाचत रावरो गुपाल हाँ, काल से व्याल कपाल के ऊपर'' पंक्ति में किस प्रसंग की ओर संकेत किया है ?

उत्तर — प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने कालिया नाग लीला का संकेत दिया है।

प्रश्न- 13. ''ताहि अहीर की छोहरियाँ छछिया भर छाछ पे नाच नचावै'' पंक्ति का भावार्थ स्पष्ट कीजिये।

उत्तर — सर्व शक्तिमान, त्रिलोकेश्वर प्रभु श्रीकृष्ण प्रेम के वशीभूत होकर सदैव भक्तों के साथ हर स्थिति में रहते हैं।

प्रश्न- 14. ''देख्यो सुन्यों न कहूँ कबहुँ, कैंसो सरूप औ कैसो सुभायन।'' प्रस्तुत पंक्तियों में परमात्मा के किस स्वभाव की ओर कवि ने संकेत किया है ?

उत्तर — कवि ने स्पष्ट किया है कि परमात्मा के स्वरूप व आकार को न तो कहीं देखा है और न ही कभी सुना है। वह तो अवर्णननीय और निराकार है जिसका आज तक भी किसी को पता नहीं है।

प्रश्न- 15. ''कछु चेटक सो जु कर्‌यो यदुरैयाँ'' — गोपी ने अपनी सखी से किस चेटक की बात कही है ?

उत्तर — गोपी कहती है कि यदुराज कृष्ण की सरस क्रीड़ाओं से और जादू भरी रासलीलाओं से सभी ब्रज की ललनाएँ अपनी मर्यादाएँ भी भूल गई हैं और वे स्वच्छन्द आचरण करने लग गई हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न-16. ''चलो री सखी सबै मिलि चेरी कहावै।'' इस कथन में गोपियों का कौन-सा भाव व्यक्त हुआ है ?

उत्तर –गोपियों के समर्पण भाव की अभिव्यंजना हुई है। ये कहती हैं कि यदि कृष्ण हमें अपनी दासी बनाना चाहें तो प्रेमासक्ति के कारण हम उनकी दासी कहलाने या बनने के लिये तैयार हैं, क्योंकि हम तो सदा से ही उनका सामीप्य चाहती हैं।

प्रश्न-17. ''पै मुरली मुरलीधर की, अधरान धरी अधरा न धरूँगी।'' पंक्ति में कौन-सा अलंकार प्रयुक्त हुआ है?

उत्तर –प्रस्तुत पंक्ति में यमक अलंकार में मुरली-मुरली और अधरा-अधरा में वर्ण समूहों की पुनरावृत्ति हुई है।

प्रश्न-18. **''गौरस मिस जो रस चाहत,**
सो रस कान्ह जु नैकु न पैहे।''

प्रस्तुत पंक्ति में 'गोरस' और 'रस' से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर –प्रस्तुत पंक्ति में गोरस से अभिप्राय दूध या दही है और 'रस' से अभिप्राय प्रेम क्रीड़ा या रसलीला का आनन्द है।

प्रश्न-19. ''प्रेमवाटिका'' में रसखान ने प्रेम भावनाओं के आलम्बन रूप में किसे अपनाया है ?

उत्तर – ''प्रेमवाटिका'' में कवि रसखान ने आलम्बन रूप में रसिक शिरोमणी श्रीकृष्ण को अपनाया है।

प्रश्न-20. रसखान किस कारण से यमराज जी से भी नहीं डरने की बात करते हैं ?

उत्तर –कवि रसखान कहते हैं कि जिस किसी पर मक्खन खाने वाले श्री कृष्ण की कृपा हो अथवा जिनके आराध्य प्रभु कृष्ण हों अथवा जिनकी रक्षा स्वयं कृष्ण करते हों, उनका तो सूर्यपुत्र यमराज भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता है।

प्रश्न-21. जहांगीर ने रसखान के विरुद्ध एक फरमान जारी किया था, क्यों ?

उत्तर –रसखान मुसलमान होकर भी कंठीमाला धारण करने लग गये थे, जिससे इनके विरुद्ध जहांगीर ने एक फरमान जारी कर दिया था।

प्रश्न-22. रसखान का वर्ण्य विषय किस प्रकार का है ?

उत्तर –रसखान की रचना के वर्ण्य-विषय भागवतोक्त कृष्ण लीलाओं में से लिये गये हैं, जिनमें बाल क्रीड़ा, बेणुवादन, गोचारण तथा निकुंज लीलाएँ प्रधान हैं। यह ज्ञान उन्होंने भागवत के फारसी अनुवाद से प्राप्त किया था।

7.2.2 लघुत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. **''देख्यो दुरौ वह कुंज कुटीर में, बैठो पलोटत राधिका पायन।''** के आधार पर कृष्ण के ब्रह्म रूप को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर –रसखान ने जहाँ एक ओर कृष्ण को ब्रह्म रूप में स्वीकार किया है वहीं दूसरी ओर उन्होंने अपने आराध्य को प्रेम के अधीन भी बताया है। वेदों और पुराणों के माध्यम से जिस परमात्मा का पूरा पता नहीं चल पाता है जिसे देवर्षि नारद, देवर्षि शुकदेव और व्यासजी जैसे ऋषि-मुनि और अनेक तपस्वी ढूँढते हुए हार गये किन्तु उनका पार नहीं पा सके। जिस परमात्मा के स्वरूप-आकार को निरंतर प्रयास करने के उपरान्त भी नहीं जाना जा सका। वही परम ब्रह्म परमेश्वर श्रीकृष्ण के स्वरूप में वृन्दावन के कुंज कुटीर में छुपा हुआ दिखाई देता है जो कि वहाँ अपनी शृंगार लीला के अनुरूप राधा के पावों को पलोटता हुआ दिखाई देता है। ऐसे परम ब्रह्म परमेश्वर जिनकी महिमा का गुणगान सदैव सभी देवों के द्वारा किया जाता रहा है। वह परमात्मा प्रेम के वशीभूत अपने भक्तों के साथ भाँति-भाँति की प्रेम लीलाएँ करता है।

प्रश्न-2. ''काहे को सोच करै 'रसखानि' कहा करिहै रवि नन्द विचारो।'' इस कथन के आधार पर रसखान के किस विश्वास की अभिव्यक्ति की गई है ?

उत्तर –प्रस्तुत पंक्तियों के आधार पर रसखान की दृढ़-विश्वास परायणता की पुष्टि होती है। भगवान् सदैव अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। उनके सम्पूर्ण संतापों का शमन कर उन्हें मुक्ति प्रदान करते हैं। कवि प्रभु की भक्त वत्सलता को स्पष्ट करते हुए अनेक ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करता है जिससे उसका विश्वास और अधिक दृढ़ हो जाता है। यथा द्रोपदी की लाज रखना, वेश्या, जटायु, हाथी, अजामिल आदि को भी भगवान् ने सद्गति प्रदान की। भक्त प्रहलाद के विश्वास को बनाये रखा। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे प्रभु

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के भक्त बत्सल और उनकी कृपा दृष्टि का पता चलता है। कवि रसखान भी अपने आपको प्रभु कृष्ण का श्रेष्ठ भक्त मानते हुए अपने आपको चिन्ता मुक्त रहने के लिये आश्वस्त करता है। कवि का दृढ़ विश्वास है कि जिस किसी पर मक्खन खाने वाले प्रभु श्रीकृष्ण की कृपा हो उसका तो कोई भी बाल बांका नहीं कर सकता। यहाँ तक कि स्वयं यमराज भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। ईश्वर निश्चित ही उसे मोक्ष प्रदान करने वाले हैं इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

प्रश्न-3. कवि रसखान द्वारा पतित पावनी गंगा के जल की जो महिमा बताई गई है उसे स्पष्ट कीजिये।

अथवा

''ए री सुधामयी भागीरथी, सब पथ्य कुपथ्य बनै तोहिं पोसे।'' के आधार पर गंगा की महिमा का वर्णन कीजिये।

उत्तर – पतित पावनी गंगा का निवास देवादिदेव महादेव नाथ की जटाओं में है। इसका पावन जल अमृत तुल्य और सम्पूर्ण संतापों का शमन करने वाला माना गया है। कवि रसखान इस संजीवनी युक्त गुणवान जल का महत्त्व बताते हुए कहते हैं कि बीमार हो जाने पर वैद्य द्वारा दी जाने वाली दवाइयों के स्थान पर गंगाजल का पान करना अधिक फलदायक है क्योंकि इस जल में सम्पूर्ण रोगनाशक गुण हैं। यह जल सभी कुपथ्यों को पथ्य में बदलने का प्रभाव रखता है। कदाचित यही कारण है कि भगवान् शिव इसी गंगाजल के भरोसे अनेक प्रकार के विषैले पदार्थों का सेवन कर जाते हैं। वैसे भी गंगा जल में सम्पूर्ण संतापों का हरण करने की क्षमता है। पृथ्वी पर सर्वत्र गंगा की महिमा का गुणगान होता रहता है और कवि रसखान ने गंगाजल के प्रति अपने आस्थावादी स्वर व्यक्त किये हैं।

प्रश्न-4. **''वा छवि को 'रसखानि' बिलोकत, वारत काम कला निधि कोटी।''** प्रस्तुत पंक्तियों के आधार पर स्पष्ट कीजिये कि प्रभु कृष्ण की कौन-सी छवि पर कामदेव की करोड़ों कलाओं को न्यौछावर किया जा सकता है ?

अथवा

''कवि रसखान के प्रभु कृष्ण का बाल सौन्दर्य नयनाभिराम है।'' कथन की पुष्टि कीजिये।

उत्तर – प्रेम भावना और श्रृंगार चित्रण के साथ रसखान ने कृष्ण की 'रूपमाधुरी' से सम्बंधित अनेक आकर्षक चित्र प्रस्तुत किये हैं जिसमें कृष्ण का बाल-सौन्दर्य तो इतना मनमोहक बन गया है के उस सौन्दर्य पर तो कवि कामदेव की करोड़ों कलाओं को भी न्यौछावर करने के लिये तत्पर हैं। कवि श्रीकृष्ण के बाल रूप का मनोरम चित्रांकन करते हुए कहते हैं कि धूल से युक्त कृष्ण का श्यामवर्ण अत्यंत सौन्दर्य समाहित किये हुए हैं। वे अपने सिर पर आकर्षक चोटी बाँधे हुए बहुत की सुन्दर लग रहे हैं। कमर पर पीत वर्ण का कच्छा, पैरों में घुंघरू धारण किये हुए बालक कृष्ण बरबस ही सब का मन मोह लेते हैं। खेलते हुए, खाते हुए कृष्ण का रूप सौन्दर्य अपने आप में एक उपमा है। कवि कहता है कि उसे देखकर तो स्वयं सौन्दर्य देव कामदेव भी लज्जित हो जाते हैं।

7.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. ''रसखान'' की काव्यगत विशेषताओं को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

अथवा

''रसखान'' के काव्य में भावपक्ष की विवेचना करते हुए उसके कलागत सौन्दर्य को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – मुसलमान कृष्ण भक्त कवि रसखान भक्तिकाल के ऐसे कवि हैं, जिनके जन्मकाल, शिक्षा-दीक्षा, कार्य-व्यवसाय, निधनकाल आदि के सम्बन्ध में कोई भी प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। इतना अवश्य ज्ञात हुआ है कि इनका नाम सैयद इब्राहिम था तथा इनका सम्बन्ध दिल्ली के राजवंश से था। बाल-वय में इन्होंने दिल्ली में एक विप्लव को अपने सम्मुख विनाशकारी नृत्य करते हुए देखा और ये उससे आक्रान्त होकर ब्रजभूमि में चले आये। इन्होंने स्वामी विट्ठलदास से वल्लभ सम्प्रदाय के अन्तर्गत दीक्षा ली और ये वैष्णव बन गये। एक वार्ताकार ने अपने शब्दों में रसखान के संदर्भ में बताया कि – ''बाइ बखत रसखान श्रीनाथजीन के सरूप कूँ देख कै आसक्त हो गये और बिननै बहुतेरे कीर्तन, कवित्त और दोहा बनाय डारे। जैसे-जैसे भगवान की लीला के दर्सन बिनकूँ भये, वैसे-वैसे वे भगवान् कौ वर्णन करते चले गये।''

कवि रसखान रसिक मिजाज थे। 'दोसौ बाबन वैष्णवन की वार्ता' में प्राप्त 'रसखान' के जीवनवृत्त से उनके दिल्ली निवास की पुष्टि होती है, जहाँ किसी 'साहुकार के सुन्दर छोरा' में उनका मन आसक्त था। इनकी लौकिक आसक्तियों की कई किंवदन्तियाँ भी मिलती हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

रसखान का नाम 'सुजान' नामक प्रेयसी से परम्परागत रूप में लोककथा की तरह जुड़ा हुआ सुना जाता है, किन्तु इस लोक कथन में भी कितनी सत्यता है यह नहीं कहा जा सकता है।

हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में जिन मुसलमान भक्त कवियों के नाम लिये जाते हैं, उनमें कबीर, जायसी, रहीम आदि के साथ रसखान का नाम भी उल्लेखनीय है। ये जाति से मुसलमान पठान थे, रसखान इनका उपनाम था जो श्रीकृष्ण की रसमयी भक्ति-भावना के कारण भक्तजनों के द्वारा दिया गया था। इनका लौकिक प्रेम सत्संगति के कारण से कृष्ण-प्रेम में बदल गया। अब तक इनकी चार रचनाएँ प्राप्त हुई हैं – 'सुजान रसखानि', ''प्रेम वाटिका'', 'दान लीला' और 'अष्टयान'। ये सभी मुक्तक रचनाओं के संकलन हैं तथा इनमें श्रृंगारिक तथा भक्त रसात्मक पदों के अलावा प्रहेलिका, कूटपद, शिवसिंह का राज्यारोहण, युद्ध वर्णन आदि से सम्बंधित पद समाविष्ट हैं। इनके पदों का संग्रह 'पदावली' के रूप में प्रकाशित हुआ है।

रसखान का भाव-पक्ष –

रसखान की सभी रचनाएँ मुक्तक हैं जो कृष्ण-प्रेम और ब्रज-प्रेम से युक्त हैं। रसखान मस्त प्रेमी-भक्त और भावुक हृदय के कवि थे, इस कारण से उनकी कविताएँ तन्मयता एवं भावविह्वलता के साथ मार्मिकता का गुण भी लिये हुए हैं। इनका भाव-पक्ष सरस अनुभूतियों से मण्डित है, इनके इस पक्ष की विशेषताओं को हम निम्नांकित बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते हैं –

1. प्रेमतत्त्व की प्रधानता – कृष्ण-प्रेम रसखान के काव्य का महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। उन्होंने न केवल अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम अपनी रचनाओं के माध्यम से दर्शाया अपितु कृष्ण की लीलास्थली के कण-कण से प्रेम भावना के दर्शन कराये हैं। रसखान में ब्रज भूमि पर होने वाली हर गतिविधि को प्रेमासक्त बनाकर काव्य में प्रस्तुत किया। ऐसा माना जाता है कि 'सुजान' नामक प्रेयसी से इनका प्रेम बन्धन था और वही लौकिक प्रेम कृष्ण-प्रेम में परिणत हो गया था। इनके काव्य से यह स्पष्ट हो गया कि ये प्रेम-निरुपण के क्षेत्र में सिद्ध हस्त कवि थे। कृष्ण के बाल स्वरूप से लेकर किशोरवय की सम्पूर्ण लीलाओं का इन्होंने अनुभूतिमय चित्रण किया है जो इनके काव्य की एक अनुठी विशेषता रही है।

''प्रेम पगे जु रंगे रंग सांवरे,
माने मनासे न लालची नैना।
धावत है, उतही जित मोहन,
रोकै रुके नहीं घूँघट ऐना।
कानन लौं कल जाहीं परे सखि,
प्रीति में भीजे सुनै मृदु बैना।
''रसखान'' भई मधु की अखियाँ,
अब नेहु को बन्धन क्यों न छुटै ना।''

रसखान ने अपने प्रेम काव्य का आलम्बन श्रीकृष्ण को बनाया है। कृष्ण के प्रति प्रेम का अत्यंत प्रभावशील चित्रण इन्होंने किया है और स्पष्ट किया है प्रेम की सच्ची साधना के लिए मन और मस्तिष्क की स्थिरता नितान्त आवश्यक है। अनेक प्रसंगों में इन्होंने भावमय प्रेमाभिव्यंजना व्यक्त कर अपनी रचनाओं को रास रंग से युक्त बना दिया है। प्रेम के लिये शारीरिक और मन की एकता को महत्त्वपूर्ण बताते हुए इन्होंने लिखा है कि –

''दो मन एक होते सुन्यो, पै वह प्रेम न आहि।
होई जबै द्वै तब कु एक, सोई प्रेम कहाय।''

2. भक्ति की गहराई – यद्यपि रसखान जन्म से मुसलमान पठान थे और आगे चलकर ये सच्चे कृष्ण भक्त बन गये। स्थिति या परिस्थितियाँ चाहे कुछ भी रही हों किन्तु उनके हृदय में ईश्वर के प्रति अनुराग के अंकुर प्रारम्भ से ही प्रस्फुटित हो चुके थे। वल्लभ सम्प्रदाय से दीक्षित होने के बाद तो उनकी भक्ति भावना जन-जन के मन में अपना स्थान बनाती चली गई। रसखान न केवल अपने आराध्य कृष्ण के प्रति अनुराग रखते थे अपितु उनके सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक वस्तु, चाहे वह सजीव हो अथवा निर्जीव हो उनके लिये प्राणों से भी अधिक प्रिय लगती थी। वे हर स्थिति में अपने आराध्य के समीप रहना चाहते थे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

"या लकुटी अरु कामरिया पर,
राज तिहुँ पुर को तजि डारौ।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधि को सुख,
नन्द की गाय चराय बिसारौ।"

रसखान अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति गहरी श्रद्धा रखते थे। उनका प्रभु कृष्ण से इतना प्रेम हो गया कि जन्म जन्मान्तरों तक प्रभु कृष्ण का ही बन जाना चाहते थे। उन्होंने सृष्टि रचयिता विधाता से भी यही कामना की है कि अगले जन्मों में वे चाहे किसी भी रूप में जन्म दें किन्तु कृष्ण के सामीप्य को बनाये रखने में योगदान देने वाला जन्म दें। इसी प्रबल कामना के साथ कवि ने कहा कि –

"मानुष हौं तो वही 'रसखानि',
बसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौ तो कहा बस मेरो,
चरौ नित नन्द की धेनु मँझारन।
पाहन हौ तो वही गिरि को,
जो धर्‌यो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौ तो बसेरो करों, नित,
कालिंदी कूल कदम्ब की डारन।

कवि रसखान के मन में प्रभु कृष्ण के प्रति अटूट विश्वास भी था। उनका मानना था कि कृष्ण स्वयं परम ब्रह्म परमेश्वर हैं। उनकी कृपा मनुष्य को मोक्षदायिनी होती है। वे भक्तवत्सल और परम दयालु हैं। उनकी कृपा हमेशा से अपने भक्तों पर रही है। उन्होंने समय-समय पर अनेक भक्तों के संतापों और पापों को नष्ट किया है। अतः आवश्यकता पड़ने पर वे मेरा भी उद्धार करेंगे।

द्रोपदी की लाज उन्होंने बचाई थी, गणिका, गीध, गज, अजामिल जैसों का उन्होंने उद्धार किया, भक्त प्रहलाद की रक्षा कर उसके पिता हिरण्यकश्यप का वध कर सदैव उन्होंने अपने भक्त वत्सल होने का परिचय दिया है। जिस पर उनकी परम् कृपा होती है उसका तो स्वयं यमराज भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं –

"काहे को सोच करै 'रसखानि',
कहा करिहै रविनन्द बिचारो।
कौन की संक परी है, जु
माखन-चाखनहार, सो राखन हारो।"

रसखान को अपनी भक्ति पर पूर्ण विश्वास रहा है। उन्होंने अपनी 'महेश-बानी' और 'नाचारियों' में भक्ति भावना प्रखर रूप में प्रकट की है, साथ ही पतित पावनी गंगा, गौरी, दुर्गा, शिवजी आदि के प्रति भी अपनी आस्था व्यक्त की है।

3. कृष्ण का रूप सौन्दर्य – कवि रसखान शृंगार रस के अनोखे प्रतिभावान व्यक्ति थे। उनका प्रेम निरुपण भी शृंगार का ही परिपोषक है। शृंगार रस का स्थायी भाव 'रति' या 'प्रेम' उनकी रचनाओं का मुख्य प्रतिपाद्य रहा है। श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण करते हुए कवि ने शृंगार के संयोग-पक्ष का अधिक निरुपण किया है। गोपियों और प्रेयसी राधा के प्रेमासक्त भाव को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है। कृष्ण के बाल सौन्दर्य से लेकर युवावय की सौन्दर्यानुभूति को उन्होंने चमत्कारिक आयाम प्रदान किया है, यथा –

"धूरि भरे अति सोहत स्याम जु,
तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरै अँगना,
पग पैजनियाँ कटि पीरी कछोटी।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रूप माधुरी के वर्णन में कवि ने अपनी भक्ति-भावना और रसिकता का अच्छा समन्वय किया है –

''कल कानन कुण्डल मोर पखा,
उर पै बन माल विराजत है।
मुरली कर में अधरा मुसकानि,
तरंग महा छवि छाजत है।''

इसी प्रकार श्रीकृष्ण की रूप माधुरी को मनमोहक रूप प्रदान करते हुए उन्होंने कहा कि –

''सोहत है चन्दवा सिरमोर के,
तैसीय सुन्दर पाग कसी है।
तैसिय गौरज भाल विराजति,
तैसी हिये बनमाल लसी है।''

रसखान ने अपनी रचनाओं में अपने छैल-छबीले कृष्ण का नख-शिख वर्णन कर उनके अंग-अंग के मोहक रूप को प्रस्तुत किया है –

''भौंह बनी बरुनी सुथरी
अति सै अधरानि रंगी रंग रातो।
कुण्डलि लोल कपोल महा छवि,
कुंजति तें निकस्यो मुसकातो।''

कवि ने श्रीकृष्ण के अनेक रूपों, उनकी अनेक मुद्राओं के सौन्दर्य को भाँति-भाँति के चित्रों में प्रस्तुत किया है। कभी गायें चराते हुए, कभी रास रचाते हुए, कभी मुरली बजाते हुए, कभी नृत्य करते हुए और कभी नैना लड़ाते हुए उनकी अनेक छवियाँ वर्णित की हैं।

4. वात्सल्य भावों का निरूपण – रसखान के वात्सल्य में हृदय की कोमलता और भावों की मार्मिकता दिखाई देती है जो उनके सवैयों और कवित्तों में वात्सल्य रस के रूप में विद्यमान है। श्रीकृष्ण के प्रति माता यशोदा के मन से ही नहीं अपितु नन्द बाबा और ब्रज की वृद्धाओं के हृदय में भी वात्सल्य भाव को ममत्व रूप में व्यक्त किया गया है।

''आजु गई हुती भोर ही हौं,
'रसखानि' रई कहि नन्द के भौनहिं।
बाबो जियो जुग लाखों करोर,
जसुमति को सुख जात कह्यो नहिं।
तेल लगाइ-लगाइ कै अंजन,
भौहें बनाइ-बनाइ डिठोनहिं।
डाल हमेलनि हार निहारत,
बारत ज्यौं पुचकारत छौनहिं।''

यद्यपि कृष्ण का नटखट रूप ब्रज की सभी गोपियों और गोप कुमारों को भाँति-भाँति से तंग करता रहा है और गोप ब्रजवासियों के लिये कृष्ण सदैव उलाहनों और शिकायतों के मुख्य बिन्दु रहे हैं, किन्तु माता यशोदा के लिये वे सदैव ही आज्ञाकारी बालक बने रहे –

''बेइ ब्रजचन्द रसखानि प्रान प्रानन कै,
जाके अभिलाष लाख-लाख भाँति बाढे हैं।
यसुदा के आगे बसुधा के मान-मोचन ये,
तामरस-लोचन खरोचन को ठाढे हैं।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

5. शृंगार चित्रण – रसखान ने अपने काव्य में प्रेम और शृंगार को महत्त्व दिया है। उन्होंने राधा कृष्ण को नायक-नायिका के रूप में अपनाकर उनके शृंगार सम्बन्धी अनेक रूप उतारे हैं। गोपियों के साथ उनकी रासलीला और काम-क्रीडा के विविध दृश्य प्रस्तुत किये हैं। रसखान का शृंगार वर्णन पूर्णतः स्वच्छन्द रहा है। कवि ने 'सुजान' को लक्ष्य बनाकर संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों को अपने काव्य में उतारा है।

छीर जो चाहत चीर गहे,
जु लेहु न केतक छीर अचैहों।
चाखन के हित माखन माँगत,
खाहु न माखन केंतिक खैहों।
जानत हैं जिय की 'रसखानि',
सु काहे को ऐतिक बात गढे हों।

6. अपने आराध्य का ब्रह्म रूप में निरूपण – कवि रसखान ने अपने आराध्य को केवल रसिक शिरोमणी अथवा रासरचैया अथवा धेनु चरैया अथवा मुरली बजैया या माखन चुरैया ही नहीं माना है बल्कि उनका आराध्य तो अजर, अमर, अलख, निराकार, निर्गुण, अलौकिक तथा अनादि है। श्रीकृष्ण तो परम ब्रह्म परमेश्वर का रूप है।, वे भक्त वत्सल्य और कृपा निधान हैं, घट-घट वासी और सर्वशक्तिमान हैं। उनकी महिमा का पार तो देवों, दानवों, ऋषियों, मुनियों, तपस्वियों ने भी नहीं पाया है। वेद और पुराण भी उन्हें नेति-नेति कह कर रह जाते हैं। कृष्ण तो स्वयं प्रभु हैं। वे तो श्रीहरि विष्णु के अवतार हैं। बुद्धिविधाता गणेश, शेषनाग, भगवान शिव, सूर्य देव, देवराज इन्द्र आदि जिनकी सदैव वन्दना करते हैं। देवर्षि नारद, महर्षि सुकदेव और ऋषि व्यास जैसे परम् तपस्वी सदैव उनकी भक्तिशोध में रत रहते हैं, किन्तु किसी ने भी उनकी महिमा का पार नहीं पाया है। कवि रसखान ने अपने आपको जन्मजन्मातरों के लिये ऐसे ही प्रभु श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिया है।

7. अन्य विशेषताएँ – जिस प्रकार कवि रसखान ने एक प्रेमी और भावुक कवि एवं भक्त के रूप में श्रीकृष्ण की लीलाओं तथा गोपियों की मनोदशाओं का सुन्दर चित्रण किया है, उसी प्रकार उन्होंने शिवसिंह के राज्यारोहण का भी चमत्कारी वर्णन किया है, उन्होंनें युद्ध वर्णन में वीर रस को बहुत ही रोमांचक ढंग से अपने काव्य का रूप दिया है। प्रहेलिका और कूट पदों में उनकी कौतुकी प्रवृत्ति तथा विदग्धता के साथ साक्षात्कार होता है। रसखान ने भक्ति भावना और भावगत गहनता से ये सूरदास और तुलसीदास के समतुल्य कवि रहे हैं।

रसखान का कला-पक्ष

रसखान का काव्य सौन्दर्य – कवि रसखान भावुक हृदय भक्त और प्रेम मार्गी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे। उन्होंने अपने काव्य को कृत्रिम रूप में सजाने सँवारने का कार्य नहीं किया बल्कि उन्होंने उसे एक ऐसा मौलिक रूप देने का प्रयास किया है कि जनमानस भक्तिरस में सराबोर होता हुआ प्रेम के अमूल्य तत्त्वों को आसानी से पहचान सके। इनके काव्य में भाषा, शब्द भण्डार, अलंकार, छन्द आदि सभी कलागत मानदण्ड निजी वैयक्तिक गुण के रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं। वे माथापच्ची करके उक्तियों और पंक्तियों को बिठाने में कतई विश्वास नहीं करते थे। रसखान के काव्य का भावपक्ष जितना वैविधपूर्ण है, उतना ही उनके काव्य का कलापक्ष भी प्रशंसनीय है। इनके काव्य में जो कलागत सौन्दर्य हैं, वह स्वाभाविक, अकृत्रिम और भाव सौन्दर्य का पूरक बनकर ही व्यंजित हुआ है। कवि के कलापक्ष को निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है –

1. भाषा सौन्दर्य – भाषा सौन्दर्य की दृष्टि से चितेरे कवि रसखान का कलापक्ष अत्यन्त कलात्मक है। इनकी भाषा टकसाली या उच्च कोटि की है, जिसमें समर्थ भाषा के सभी गुण विद्यमान हैं, जो सरलता, प्रसाद गुण से युक्त और व्यावहारिकता लिये हुए है।इसमें लचीली और व्यंजक शब्दावली स्वाभाविक रूप से गूंथी हुई है। इनके काव्य में प्रयुक्त ब्रज भाषा लावण्य, लालित्य और माधुर्य से युक्त है। इस प्रकार उन्होंने शुद्ध-परिमार्जित साहित्यिक ब्रज भाषा का प्रयोग किया है। इनकी भाषा में माधुर्य और प्रसाद गुण का सहज समावेश हुआ है, जो लाक्षणिक प्रयोगों का चुटीलापन लिये हुए है। कदम-कदम पर वक्रता, व्यंजना, लचीलापन, चित्रोपमा, प्रवाह एवं सरल भावाभिव्यक्ति की क्षमता की दृष्टि से भाषा विशुद्ध साहित्यिक और मुहावरों तथा लोकोक्तियों को सौष्ठव लिये हुए है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रसखान ने प्रचलित-अप्रचलित सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। इनके द्वारा तद्‌भव शब्दों के प्रयोग से भाषा को जीवन्तता मिली है, यथा – साहिबी, बाह मियां, पुरान, बिसासनी, भौल, सरूप, सूछम आदि। इनकी भाषा समास रहित है, जिसमें सरलता और बोधगम्यता बनी रहती है। मुहावरों का प्रयोग भी देखने योग्य है, जैसे – चखचारि भये, मूढ़ चढे, दिखावत आँख, गाल बजावत आदि।

2. अलंकार योजना – रसखान ने अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक और सहज रूप में किया है। कहीं साम्य स्थापित करने के लिये, कहीं सौन्दर्य की तुलना करने के लिए, कहीं स्थिति-साम्य स्थापन करने केलिये उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप आदि अंलकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। सीधी-सी बात और सीधी से व्यंजना उनके काव्य का उद्देश्य रहा है। शब्दालंकारों में यमक और अनुप्रास अलंकारों का प्रयोग किया है तथा अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि का प्रयोग किया गया है। कवि ने जितनी भी उपमाओं का प्रयोग किया है, ऐसा लगता है, जैसे उनको प्रकृति ने उनके काव्य में भेजा है, यथा – सूर्य, चन्द्रमा, छटा, दामिनी, आसमान, नदियाँ, रश्मियाँ, सागर, मीन, हाथी, कमल आदि शब्दों का प्रयोग।

अनुप्रास अलंकार –

''सेस, महेस, गनेस, दिनेस,
सुरेस हुँ जाहि निरंतर गावे॥
ताहि अहीर की छोहरिया,
छछिया भर छाछ पै नाच नचावै।''

यमक अलंकार –

''त्यों 'रसखानि' वही रसखानि,
जु है रसखानि सो है रसखानि।''

उपमा अलंकार –

''तिरछी बरछी सम मारत है,
दृग बान कमान सु कान लग्यो।''

पूर्णोपमा अलंकार –

''दमकै रवि कुण्डलि दामिनी से''

रूपक अलंकार –

''मोह कमान सौ जोहन कौ
खंजन नैन फंसे पिंजरा छवि।''

उत्प्रेक्षा अलंकार –

''छोड़े नहिं छिनहुं रसखान,
सु लागि फिरै द्रुम सो जनु बेली।''

अतिशयोक्ति अलंकार –

''ऐसे में आवत कान्ह सुने,
हुलसी सुतमी तरकी अंगिया की।
यों जग जोति उठी तन की,
उकसाई दई मनो ज्योति दिया की ॥''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

काव्यलिंग अलंकार –

"जप बार-बार तप संयम बयार-ब्रज,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हों नहीं प्यार, नहीं सैयो दरबार, चित,
चाह्यो न निहार्‌यो जौ पै नन्द के कुमार को॥

इस प्रकार कवि रसखान ने अनेक अलंकारों का स्वाभाविक व सुन्दर प्रयोग कर अपने काव्य में जो कर्णप्रियता और चमत्कार उत्पन्न किया है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है।

3. छंद योजना – भक्तिकाल व रीतिकाल में अधिकतर कवियों ने सवैया छन्द का प्रयोग किया है। इस छन्द के अन्तर्गत मत्तगयन्द, दुर्मिल, किरीट व मदिरा सवैया का प्रयोग मिलता है। "या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहुँ पुर को तजि डारौ" पद में मत्तगयंद छन्द का अति सुन्दर प्रयोग किया है। रसखान द्वारा रचित 'प्रेमवाटिका' ग्रंथ में 'दोहा' छन्द का ही प्रयोग किया गया है और कुछ 'सोरठा' छन्दों को काम में लिया है।

"प्रेम अगम अनुपम अमित, सागर सरिस बखान।
जो आवत यहि ढ़िंग बहुरि, जात नहीं रसखान॥"

रसखान की छन्द योजना अत्यन्त प्रवाहपूर्ण और प्रशंसनीय है। उन्होंने अपने छन्दों में छंद विधानानुसार वर्ण, मात्रा, यति, गति, लय, ताल, तुक तथा गणों का पूरा ध्यान रखा है। इस कारण इनके काव्य में नाद सौन्दर्य और गेयता का गुण स्वत: आ गया है। सवैया छन्द की पदावृत्ति एवं वर्णावृत्ति से काव्य में अत्यधिक कर्णप्रियता अथवा श्रुति-माधुर्य का गुण आ गया है, यथा –

"काहे को सोच करै 'रसखानि', कहा करिहै रविनन्द-विचारो,
कौन सी संक परी है, जुमाखनचाखन हारो सो राखन हारो।"
"तापर सुन्दर देव-वधू, नहिं बारत प्राण अबार लगावै।
ताहि अहीर की छौहरियाँ, छछिया भर छाछ पै नाच नचावै॥"

4. प्रतीक योजना – रसखान ने अपने काव्य में गूढ़ रहस्यात्मक प्रतीकों का प्रयोग नहीं किया है, किन्तु उनके कूट पदों तथा प्रहेलिकाओं में प्रतीक योजना दिखाई देती है। गंभीर भावों की अभिव्यक्ति, प्रेम तत्त्व का निरूपण, भक्ति भावना की अनन्यता के लिये प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। इन्होंने अपना नाम 'रसखान' या 'रसखानि' भी प्रतीकात्मक शब्द के रूप में प्रयोग किया है। इसी प्रकार 'सुजान' शब्द का प्रयोग उन्होंने अपनी प्रेयसी के साथ-साथ परमात्मा के प्रति अनन्य भक्ति भाव को व्यक्त करने के लिए किया है –

"वेई ब्रह्म जाहि सेवत है रेन-दिन,
सदाशिव सदा ही धरत ध्यान गाढे हैं।
वेई विष्णु जाके काज मानी मूढ राजा रंक,
जोति जाति ह्वै के सीत सह्यो अंग ठाढे हैं।"

5. रस योजना – कवि रसखान ने अपने काव्य में शृंगार रस को प्रमुख स्थान दिया है। श्रीकृष्ण की प्रेममाधुरी पर आसक्त गोपियों की मन:स्थिति का सुन्दर चित्रण कवि ने शृंगार रस को सहारा बनाकर किया है। शृंगार रस के साथ-साथ वात्सल्य रस को भी अत्यंत प्रभावशाली ढंग से काम में लिया है। 'शिवसिंह का राज्यारोहण' और युद्धवर्णन में कवि ने वीर रस को पर्याप्त स्थान दिया है –

शृंगार रस का संयोग पक्ष –

"टेरत हेरत हारि पर्‌यौ,
'रसखानि' बतायो न लोग लुगायन।
देख्यो दुर्‌यो वह कुंज कुटीर में,
बैठ्यो पलोटत राधिका पायन॥"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शृंगार रस का वियोग पक्ष—

''रसखानि सुन्यो है वियोग के ताप,
मलीन महादुति देह तिया की।
पंकज सो मुख गो मुरझाई,
लगै, लपटै विरहागि हिया की॥''

रसखान ने भक्ति-भावना एवं गोपियों की प्रेम-भावना से सम्बंधित सवैयों और कवित्तों में वात्सल्य रस तथा शृंगार रस का मिश्रित प्रयोग किया गया है। इस कारण उनके काव्य में अधिक कोमल भावानुभूति तथा सरसता आ गई है।

निष्कर्ष—रसखान का कलात्मक सौन्दर्य उनके भावपूर्ण कार्य को अधिक सशक्त और मधुर बनाने में सहायक रहा है। रसखान ने जो भी लिखा है उसमें सहज भावानुभूति और कलात्मकता है अतः रसखान का काव्य दोनों ही पक्षों की दृष्टि से अत्यंत प्रशंसनीय है।

प्रश्न-2. ''रसखान का लौकिक प्रेम भक्तिभावना से युक्त कृष्ण के अलौकिक प्रेम में रूपान्तरित हो गया'' इस कथन की पुष्टि करते हुए कवि की प्रेमभावना को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

अथवा

''रसखान की प्रेम पूरित भक्ति-भावना हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक अच्छी मिसाल है।'' कथन की व्याख्या कीजिये।

अथवा

रसखान के प्रेमाभक्ति की विशेषताओं को उद्घाटित कीजिये।

अथवा

रसखान की प्रेमाभूति पर सोदाहरण एक निबन्ध लिखिये।

उत्तर—गोस्वामी विठ्लदास द्वारा पुष्टिमार्गीय दीक्षा से सम्पन्न रसखान के मानस में वैष्णव धर्म के संस्कार पहले से ही व्याप्त थे। ये संस्कार समयानुसार कृष्ण भक्ति की तल्लीनता में पर्याप्त सहायक सिद्ध हुए।

प्रेम एक सहज मानवीय वृत्ति है, एक अतृप्त पिपासा है जो प्रिय की प्राप्ति में भी शान्त नहीं होती है। प्रेम प्रेमी और प्रेमिका दोनों में अभिन्नता का पक्षपाती है। प्रेम सदैव परवान चढ़कर बोलता है वह कभी मौन नहीं रहता है, प्रेम की अनेक भाषाएँ हैं। वह शब्दों की अपेक्षा चेष्टाओं, हाव-भावों की वाणी में अधिक गुनगुनाता है, जिसकी मधुर धुन कोई भी सहृदय आसानी से सुन सकता है, समझ सकता है। प्रेम कैसे भी अपने आप को मुखरित करके स्वयं को अभिव्यक्त कर ही लेता है। विशेष बात यह है कि प्रेमी को प्रेमाभिव्यक्ति में एक अनिर्वचनीय सुख की अनुभूति होती है। जिसका बार-बार पान करने पर ही वह नहीं अघाता और उसकी पिपासा बराबर बनी रहती है। रसखान एक प्रेमी जीव थे जिनका लौकिक प्रेम, प्रेम के चरम बिन्दु पर पहुँच कर भगवान् कृष्ण के सगुण रूप का उपासक बन बैठा। प्रेम आलम्बन चाहता है उसी के सहारे-सहारे वह परवान चढ़ जाता है। जिस प्रकार एक छोटी-सी बेल किसी भी वृक्ष की सामीप्य शक्ति से विकसित होती हुई विशाल रूप धारण कर फलीभूत हो जाती है, चाहे वह सहारा किसी कंटकयुक्त झाड़ी का ही क्यों न हो, उसका वेग रोके नहीं रूकता है। रसखान के प्रेम की बेल तो स्वयं प्रभु कृष्ण की छायादार भक्ति की टहनियों के सहारे रूप माधुरी की शीतल मन्द और सुगंधित बहारों में पलकर बड़ी हुई है। रसखान परम रसमय और रागमय भगवान् कृष्ण के रस-राग में पूर्णतया रंग गये थे और वे रस की खान बनकर स्पष्ट कर गये कि—

''प्रेम देव की छावहिं लखि, गये मियां रसखानि।''

रसखान की प्रेम पूरित भक्ति

हिन्दी साहित्य में शृंगार युक्त काव्यधारा का अपना एक विशेष महत्त्व है जिसमें आनन्द और उल्लास का अनोखा और मनमोहक रूप देखने को मिलता है। रसखान ने अपनी प्रेमपूरित भक्ति के लिये विविध आदर्शों और मनोभावों की अभिव्यक्ति की है। कवि रसखान की भक्ति भावना का प्रेम पूरित परिचय निम्नलिखित बिन्दुओं से दिया जा रहा है—

1. स्वतंत्रता—डॉ. दशरथ राज ने रसखान की स्वच्छन्द विचारधारा के संदर्भ में लिखा है कि ''रसखान ने मनोवेगों के प्रबल

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रवाह में बहकर ही कविताएँ लिखी हैं, उनके काव्य में प्रेम की जीवनगत स्वच्छन्दता तथा काव्यगत स्वच्छन्दता दोनों का साक्षात्कार होता है। उनकी दृष्टि प्रेमभाव की अनुभूति पर अधिक टिकी रही है। इसी से उसमें स्वाभाविकता और सजीवता के दर्शन होते हैं। उनके काव्य का अध्ययन करने पर हम उस निर्णय पर पहुँचते हैं कि उनकी अन्तर्दृष्टि प्रेमानुभूति को पहचानने में बड़ी व्यापक और सूक्ष्म थी। कोई भी भाव ऐसा नहीं था जिसे वे पकड़ नहीं पाये हों।''

प्रेम स्वच्छन्द वृत्ति का भाव होता है और अभिव्यक्ति में वही स्वच्छन्दता अपेक्षित होती है। प्रेमाभिव्यक्ति में एक ऐसा मन:संवेग होता है कि जिसके प्रवाह को रोका नहीं जा सकता है। प्रेमधारा के स्वच्छन्द कवियों की विशेषताएँ हमें रसखान की रचनाओं में मिल जाती हैं। इसी सूक्ष्म दृष्टि के कारण उन्होंने प्रेम की पूर्णता के लिये मानसिक व शारीरिक दोनों को ही आवश्यक माना है –

''दो मन इक होती सुन्यौ, पै वह प्रेम न आहि।
होइ जवै द्वै तनहुँ इक, सोई प्रेम कहाहि॥''

2. सामीप्य – सामीप्य प्रेम का आधार होता है। दिलों की नज़दीकियाँ प्रेम की गहराइयों को निरन्तर अथाह की ओर ले जाती हैं। रसखान भी नित्य अपने प्रिय कृष्ण का सामीप्य चाहते थे। उससे किंचित दूरी भी असह्य थी। विरह की कल्पना मात्र से उनका मन सिहर उठता था।

''अकथ कहानी प्रेम की, जानत लैली खूब।
दो तनहुँ जहँ एक भै, मन मिलाई महबूब॥''

कवि अपने प्रिय कृष्ण का सामीप्य प्राप्त करने के लिए तो जन्मदाता विधाता से भी कहने में भी नहीं चुकता है। वह जन्म-जन्मान्तरों के लिये उसे कृष्ण सामिप्य के लिये अनुबंधित कर देना चाहता है। इस सामीप्य के लिये कवि ने अपने जीवन की सम्पूर्ण वस्तुओं की सार्थकता को प्रिय के अनुरूप होने पर ही सिद्ध की है। उनका मानना है कि प्रिय को प्रिय लगने वाली वस्तु, उसका गुण ही महत्त्वपूर्ण है अन्यथा वह व्यर्थ है –

''प्रान वही जु रहै रिझि बा पर,
रूप वही जिहि बाहि रिझायौ।
सीस वही जिहिं वे परसै पग,
अंग वही जिहिंवा परसायौ॥''

''जान वही उन प्रान के संग औ,
मान वही जु करै मनमानी।
त्यों 'रसखानि' वही 'रसखानि',
जु है रसखानि सौ है रसखानि।''

कवि रसखान अपने प्रिय कृष्ण का सामीप्य पाने के लिये जन्म-जन्म तक कृष्ण के इर्द-गिर्द जीवन व्यतीत करने की प्रबल इच्छा से विधाता के सम्मुख याचना करता है –

''मानुष हौं तो वही रसखान,
बसौ ब्रज गोकुल गाव के ग्वारन।
जो पसु हौ तो कहा बस मेरौ,
चरौ नित नन्द की धेनु मँझारन।
पाहन हो तो वही गिरि को,
जो धर्‌यो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरौ करौं,
निति कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥''

सच्चे प्रेमियों को केवल अपना प्रिय ही प्रिय नहीं लगता बल्कि प्रिय की प्रत्येक वस्तु भी प्रियतम तुल्य होती है। वह उनके लिये

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

सम्पूर्ण सुखों का त्याग करने के लिये सदैव तत्पर रहता है –

''या लकुटी अरु कामरिया पर,
राज तिहूँ पुर कौ तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवौं निधि को सुख,
नन्द की गाय चराय बिसारौं।
'रसखानि' कबहुँ इन आँखिन सो,
ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हुँ कल धौंत के धाम,
करील के कुंजनि उपर वारौं।''

3. मनोभावों का विविध रूप – प्रेम में मानस संसर्ग की प्रधानता को मानने के कारण इस धारा के कवियों में अश्लीलता का दोष नहीं आ सका है, रसखान अपनी मनोदशा के विविध रूपों की अभिव्यक्ति में लीन रहे।

रसखान की 'प्रेम-वाटिका' उनके प्रेम विषयक सिद्धान्तों का वर्णन करती है। उनके अनुसार श्रुति, पुराण, आगम, स्मृति आदि सभी ग्रंथों का सार प्रेम है। उन्होंने बताया कि विषयानन्द और ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का मूल भी 'प्रेम' ही है, ज्ञान नहीं। वे प्रेम के बिना ज्ञान, कर्म, उपासना आदि को सिवाय अहंमन्यता के कुछ भी नहीं मानते हैं। उनका मानना था कि वेदों और शास्त्रों के पठन से कुछ भी नहीं होता है। प्रेम इन सबका मूल है। रसखान की दृष्टि में प्रेम गुण, रूप, यौवन, धन आदि की अपेक्षा नहीं करता है और उसमें स्वार्थ की गंध तक नहीं आती है। प्रेम कामना रहित होता है।

''बिन गुन जोवन रूप धन, बिन स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामना से रहित, प्रेम सकल रसखानि।''

4. स्वत: पूर्णता – प्रेम अपने आप में पूर्ण होता है, उसे कभी भी प्रतिदान की आशा नहीं होती है। प्रिय चाहे जैसा भी व्यवहार करे किन्तु प्रेमी के प्रेम व्यवहार में किसी प्रकार की कमी नहीं आती है। वह तो प्रेम में अपने प्रियतम को ही सब कुछ मानता है, उसी में उसके जीवन की समस्त भावनाएँ विलीन हो जाती हैं। कवि ने प्रेम की एकांगी भावना पर अधिक बल दिया है –

''एक अंगी बिनु कारन हीं, एक रस सदा समान।
गनै प्रियहि सर्वस्व जो, सोइ प्रेम प्रमान॥''

प्रेम तो वह सार-रत्न है जिसका न जानना कुछ भी न जानने के समान है और जिसे जानने के उपरान्त जानने के लिये कुछ भी शेष नहीं रह जाता है –

''जेहि बिन जानै कछुहि नहीं, जान्यो जात बिसेस।
सोई प्रेम जिहिं जानिकै, रहि न जात कछु सेस॥''

प्रेम ही ईश्वर है अथवा ईश्वर का रूप प्रेम ही है और इन दोनों का वही सम्बन्ध है जो सूर्य का धूप के साथ है जो वास्तव में एक होकर भी दो दिखाई देते हैं –

''प्रेम हरि को रूप है, त्यों हरि प्रेम स्वरूप।
एक होइ द्वै यों लसै, ज्यों सूरज और धूप॥''

प्रेम ऐसा पदार्थ है, जिसे पालने वाला स्वयं हरि है, वह स्वर्ग की कामना भी नहीं करता है –

''जेहिं पाये बैकुण्ठ अरु, हरिहुँ की नहिं चाहि।
सोई अलौकिक सुद्ध, सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि॥''

रसखान ने प्रेम को सरल और सीधा बताकर व्यक्त किया है –

''मन लीनो प्यारे चितै, पै छटांक नहीं देत।
यह कहा पाटी पढी, दल को पीछौ लेत।''

जहाँ रसखान ने प्रेम को सरल बताया है वहीं प्रेम के मार्ग को कठिन भी बताकर व्यक्त किया है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

''कमल तंतु सो छीन अरु, कठिन खड्ग की धार।
अति सूधो टेढो बहुत, प्रेम पंथ अनिवार॥''

रसखान का प्रेम मार्ग जितना कठिन है, उतना ही आनन्ददायक और रसपूर्ण है –

''अति सूक्षम कोमल अतिहि, अति नियरी अति दूरि।
प्रेम कठिन सब ते सदा, नित इक रस भरपूरि॥''

5. सूफ़ी प्रेमादर्श – मुसलमान और फ़ारसी का ज्ञाता होने के नाते कवि रसखान सूफ़ी-प्रेम भावना के सम्पर्क में भी आये थे। लैला का प्रेमादर्श उनके सूफ़ी प्रेमादर्श का ही प्रभाव है। ये भी सूफ़ी प्रेम कवियों की भाँति ही लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की ओर बढ़े हैं। रसखान भले ही श्रेष्ठ भक्त हों, किन्तु उनकी भक्ति-भावना से भी अधिक उनकी प्रेम-भावना ही अधिक प्रभावशाली रही है अतः वे प्रभु-भक्त कम और प्रेम-भक्त अधिक थे।

6. भक्तिभावना का रूप – कवि रसखान के कृष्ण केवल उनके आराध्य ही नहीं बल्कि सुजान प्रिय बन गये और उन्होंने अपने कृष्ण के प्रति अपने प्रेम भाव को कहीं गोपियों के माध्यम से तो कहीं राधा की प्रेमासक्ति के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। उन्होंने कृष्ण कन्हैया को केवल रास रचैया, मुरली बजैया, धेनु चरैया ही नहीं माना बल्कि उन्हें ब्रह्म रूप में स्वीकार कर वैष्णव धर्म को भी अपनाया है। कवि ने कृष्ण को स्वयं जगदीश्वर श्रीहरि विष्णु का अवतार माना है। उन्हें परम पिता परमात्मा मानकर अगम, अगोचर, अनादि, अनंत और निर्गुण निराकार भी माना है। वह तो ऐसी परम शक्ति है जिसका आज तक किसी ने पार नहीं पाया है। कवि ने इस परमात्मा को प्रेम तत्त्व में भी विद्यमान माना है, यथा –

''ब्रह्म में ढूंढ्यौ पुरानन गायन,
वेद रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यौ कबहुँ न कहूँ,
वह कैसे स्वरूप और कैसे सुभायन।
टेरत हेरत हारि पर्‌यो,
'रसखानि' बतायों न लोग लुगायन।
देख्यो दुर्‌यो वह कुंज कुटीर में,
बैठो पलोटत राधिका पायन।''

स्वाभाविक है कि जिस सहृदय में सच्चा प्रेम होता है उसके मन में सामीप्य की भी प्रबल अभिलाषा बनी ही रहती है। प्रिय की हर वस्तु प्रिय होती है। उसके कार्य, उसका स्थान, उसकी प्रत्येक गतिविधि प्रेमी को कोमल भाव प्रदान करती है। सदैव कृष्णमय जीवन बनाये रखने के लिए रसखान का प्रेमी मन क्या-क्या प्रयास नहीं करता है। जन्म जन्मान्तरों के लिये वह प्रभु कृष्ण के सुजान रूप को पाने के लिये अपने आप को दाँव पर लगा देता है। रसखान का प्रेम वास्तव में प्रेम की चरम स्थिति पर पहुँचने वाला माना गया है।

7.3 सारांश

हम कह सकते हैं कि रसखान का सम्पूर्ण काव्य उसकी प्रेमपूरित व रसपूरित भावनाओं से सराबोर है। उनकी इस प्रेम भावना में भक्ति का बीज निहित है और यही प्रेम समर्पण अनन्यता और एक निष्ठा से मिलकर प्रेम पूरित भक्ति-भावना को विकसित कर गया है। रसखान सही अर्थों में रस की खान है। इनके काव्य की पंक्ति-पंक्ति में रस का निर्झर प्रवाहित होता है और उसकी कल-कल ध्वनि सभी के मन को मोहित करने वाली व कृष्ण प्रेम में निमग्न करने वाली है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 8 : मीरांबाई

संरचना

8.0 कवि परिचय

8.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

8.2 महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर

8.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

8.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

8.2.3 निबंधात्मक प्रश्न

8.3 सारांश

8.4 नोट

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

8.0 कवयित्री परिचय

रेगिस्तान की मन्दाकिनी, प्रेम की पीर, विरह वेदना की अमर गायिका, कृष्ण भक्ति शाखा की चिरजीवी कोकिला मीरां का नाम हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन कृष्ण भक्ति काव्य स्वर्णिम अक्षरों से अंकित है जो युगों-युगों तक कृष्ण भक्तों के कण्ठ को रस स्वरों से रंजित बनाए रखेगा। कृष्ण प्रेम की कसक आज भी उनके विरह-गीतों के बोलों में सहृदय की धड़कनें तीव्र कर देती है। संगीतकारों के स्वरों की मर्मस्पर्शी झंकार बनकर उभरने लगती है। काव्य शास्त्रीय नियमों से ऊपर उठ कर उसकी तरंगिनी सरिता के अनवरत उच्छलन के समान रसिकों को सराबोर करती रहती है। वास्तव में प्रेम की पीर और कृष्ण-विरह की अनवरत धड़कन का दूसरा नाम ही 'मीरां' है।

मीरां का जन्म स्थल जोधपुर राज्य के अन्तर्गत 'मेड़ता' नामक स्थान माना जाता है। राव दूदाजी के चौथे पुत्र राव रत्नसिंह के यहाँ 'कुड़की' गाँव में इनका जन्म संवत् 1575 वि. में हुआ था। कुछ लोग इनका जन्म 1555 मानते हैं और कुछ विद्वान् संवत् 1560 के आसपास इनका अवतरण मानते हैं। ये रत्नसेन की इकलौती पुत्री थी। मीरां की माँ इन्हें शैशव अवस्था पार करने के साथ ही हमेशा के लिये छोड़ कर चली गई। ऐसी स्थिति में इनका लालन-पालन इनके परम वैष्णव भक्त पितामह राव दूदा ने ही किया। यही प्रभाव आगे चलकर मीरां के काव्य में कृष्ण को लक्ष्य बनाकर इनकी मधुर भक्ति के रूप में पूर्ण विकसित दिखाई देता है। शैशव के अबोध काल से ही मीरां का ध्यान भगवद्भक्ति की ओर रहने लगा। राधा ने तो शायद इस आयु में सोचा भी नहीं होगा कि कृष्ण उनके पति परमेश्वर बनेंगे, लेकिन मीरां शैशवकाल ने अनजान क्षणों से ही बाल गोपाल को अपना पति मान चुकी थी। ऐसा कहा जाता है कि एक बार बाल मीरां अपनी माँ के साथ किसी पड़ौसी के घर वैवाहिक कार्यक्रम में भाग लेने गई थी। वहाँ जब पहली बार मीरां ने 'दूल्हा' देखा तो अपनी माँ से उस विशिष्ट व्यक्तित्व के संदर्भ में जिज्ञासावश कुछ प्रश्न पूछे, मीरां की माँ उसे संतुष्ट करती रही किन्तु जब मीरां ने प्रश्न पूछा कि ''मेरा दूल्हा कहाँ है ?'' तो माँ कुछ समय तो निरुत्तर रही किन्तु वहाँ रखी हुई कृष्ण के बाल रूप की एक प्रतिमा की ओर इशारा कर उन्होंने कहा कि ''वह तेरा दूल्हा है।'' मीरां उसी क्षण से कृष्ण की ओर अपलक देखने लगी और नेत्र मार्ग से कृष्ण की मोहिनी छवि को हृदय में उतारती रही। कहा जाता है कि उसी पल से मीरां की भावना कृष्ण के प्रति पति भाव में दृढ़ हो गयी। समय के इन प्रबल संस्कारों के बाद ऐसा माना जाता है कि एक बार स्वप्न में मीरां अपनी कुछ बाल सखियों के साथ मेला देखने गई थी वहाँ से उसने अत्यंत सुन्दर श्रीकृष्ण की एक प्रतिमा खरीदी और घर पर ले आई। मीरां की एक सखी को वह प्रतिमा पसन्द आ गई, वह उसे मीरां से प्राप्त करने की जिद करने लगी। मीरां उसे देना नहीं चाहती थी, दोनों की छीना-झपटी में वह प्रतिमा ज़मीन पर गिरकर टूट गई तत्काल मीरां का स्वप्न टूट गया और वह हड़बड़ा कर विस्तर से उठी और कृष्णमूर्ति को संभाला। इस स्वप्न घटना के बाद से मीरां सदैव उस कृष्णमूर्ति के साथ आन्तरिक प्रेम भावनाओं से युक्त जुड़ गई और वह उसे अपने पास ही रखने लगी। मीरां को उस समय से कृष्ण के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। इस शैशवी वैराग्य भावना से घबराकर मीरां का ध्यान सांसारिकता

से मोड़ने के लिये केवल बारह वर्ष की आयु में ही इनका विवाह चित्तौड़ के महाराणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज के साथ सम्पन्न कर दिया खानवा के युद्ध में बाबर के विरूद्ध युद्ध करते हुए भोजराज ने वीरगति प्राप्त की। यहीं से वैधव्य का अभिशाप व भक्ति भाव और दृढ़ हो गया। परिणाम स्वरूप मीरां के मन में कृष्ण के प्रति अनुराग और अधिक बढ़ गया। अब वह पूर्णतया कृष्ण और उसकी भक्ति के प्रति समर्पित हो गई। श्रीकृष्ण को पति मानने वाली मीरां ने वैधव्य को स्वीकार ही नहीं किया। विधवा होने के बाद मीरां का अधिकांश समय साधु संग, कृष्ण नाम की चर्चा, भजन और कीर्तन में व्यतीत होने लगा। वह मन्दिर में जाकर कृष्ण की मूर्ति के आगे घंटों नृत्य किया करती थी।

मीरा कहती है - ''मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई॥''

मीरां का यह व्यवहार उनके देवर व राजघराने के अन्य सदस्यों को कतई पसन्द नहीं आया। मीरां को प्रारम्भ में तो प्रेम पूर्वक समझाया गया कि राजघराने की मान-मर्यादाओं का सम्मान करते हुए उन्हें स्वतंत्रता पूर्वक नहीं रहना चाहिये और कुल की ज्येष्ठ वधु होने के नाते भी उन्हें मर्यादाओं की रेखा पार नहीं करनी चाहिये किन्तु मीरां के दिल दिमाग पर तो कृष्ण भक्ति का भावावेश था। उन्होंने सम्पूर्ण मान-मर्यादाओं के बन्धन की कठोर जंजीरों को तोड़कर कृष्ण भक्ति के असीम आकाश मण्डल में आजाद पंछी की भाँति अपने आप को उड़ा दिया। इनके स्वच्छन्द आचरण और कृष्ण भक्ति से परेशान होकर मीरां को अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जाने लगी थी। यहाँ तक कि इन्हें मार देने के भी अनेक षडयंत्र रचे गये थे और इन्हें विष भी दे दिया गया था किन्तु ये बच गईं। यह भी जनश्रुति है कि पारिवारिक अत्याचारों से त्रस्त हो कर मीरां ने तुलसीदासजी को एक पत्र लिखा था और अपने जीवन सम्बन्ध में राय माँगी थी। तुलसीदास ने पत्र के उत्तर में ''जाके प्रिय न राम वैदेही'' वाला पद लिख कर भेज दिया था। किन्तु यह केवल भक्तों की कल्पना मात्र है, क्योंकि मीरां का समय तुलसीदास से बहुत पूर्व का रहा है। एक मान्यता यह भी रही है कि मीरां ''रैदास'' की शिष्या थी, किन्तु यह बात भी उचित नहीं लगती है, क्योंकि ''रैदास'' और मीरां के समय में 100 वर्षों का अन्तर है। यह सत्य है कि परिवार से त्रसित होकर मीरां वृन्दावन चली आई थीं और वहीं पर उन्होंने कृष्ण भक्ति की तथा साथ ही अनेक पदों की रचनाएँ भी की। वृन्दावन में लम्बे समय तक रहने के पश्चात् ये द्वारका चली गईं और वहीं पर संवत् 1663 में इनका स्वर्गवास हो गया था।

मीरां का काव्य भक्ति और प्रेम का काव्य है, इसमें जहाँ एक ओर कृष्ण भक्ति का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर प्रेम, एकाग्रता, त्यागशीलता भी दिखाई देती है। इनका सम्पूर्ण काव्य आत्मव्यंजक है, इन्होंने न केवल भक्ति और प्रेम के पद लिखे, अपितु अनेक ऐसे पदों का निर्माण भी किया है जो उनके जीवन की मार्मिक घटनाओं के चित्र प्रस्तुत करते हैं। इन चित्रों में हृदय की विवशता और द्वन्द्वात्मक स्थितियों का अंकन भी सरलता से किया जा सकता है। प्रकृति वर्णन के प्रति मीरां अधिक सतर्क दिखाई नहीं पड़ती हैं, फिर भी कहीं-कहीं उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत प्रकृति और पर्वों का वर्णन किया है। उनका वर्षा वर्णन बहुत ही आकर्षक हुआ है –

''झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन में उमग्यों मेरो मनवा, भनक पड़ी हरि आवन की।
उमड़-घुमड़ चहुँ दिस से आयो, दामण दमक झर लावन की॥''

'नरसीजी का मायरा', 'गीत गोविन्द की टीका', 'मीरां नी गरबी', 'रास गोविन्द', 'राग सोरठा', और 'मीरां के पद' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। 'नरसी जी का मायरा' में भक्त नरसी मेहता के भात भरने की कथा है। 'राग सोरठ' में मीरां के पदों के साथ-साथ कबीर तथा नाम देव के चुने हुए पद भी संकलित हैं। 'रास गोविन्द' की रचना भी अनुमानतः मीरां ने ही की है। 'मीरां नी गरबी' में रास मण्डली में गाने योग्य पदों का संकलन हैं, लगभग 200 पद मीरां द्वारा विरचित प्राप्त हुए हैं। कुछ विद्वान् मीरां के पदों की संख्या 500 प्राप्त हुए बताते हैं।

मीरां की कविताओं का प्रमुख स्वर भगवान् कृष्ण का प्रेम ही है। प्रेम की पीर, विरह वेदना, आत्मसमर्पण, आत्म निवेदन सभी कुछ मीरां की रचनाओं में समाहित है। प्रेम दीवानी मीरां का स्वर अनेकशः विरोधाभासों का अजस्र स्रोत-सा प्रतीत होता है। एक ही पद में मिलन का सुख और विरह का उत्कर्ष देखने को मिल जाता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मीरां के कुछ पदों में निर्गुण भक्तों की विचारधारा को भी देखा जा सकता है। सत्गुरु निरंजन, ज्ञानगली, निर्गुण सेज, सुरत की डोरी, पंचरंगी झालर और निरत आदि शब्द संत साधना के प्रभाव से ही उनके पदों में स्थान पा सके हैं। इनके पदों में दर्शन सम्बन्धी विचार मिलते हैं किन्तु मीरां दार्शनिक नहीं थीं। नारी हृदय की वेदना और वियोगानुभूतियों की अभिव्यंजना मीरां के काव्य में पूरी गहराई से मिलती है। इनकी वेदना में तीव्रता के साथ त्याग, समर्पण एवं निष्ठा का भाव भी पर्याप्त गहरा है।

सगुण प्रेम के विरह मिलन के प्रभाव एवं संस्पर्श ही अधिक प्रभावी हैं, उनकी माधुर्य भावना अनेक स्थानों पर सूरदास और तुलसीदास से भी आगे बढ़ती हुई दिखाई देने लगती हैं। मीरां तो स्वयं ही गोपी और राधा के रूप में कृष्ण के साथ मान-मनुहार और प्रेम-विरह भरी लीलाएँ करती हुई दिखाई देती हैं। कहीं-कहीं मीरां के पदों में रहस्यात्मकता भी स्पष्ट होती है किन्तु वह दुरुह नहीं है। वैसे मधुरा भक्ति में रहस्यात्मकता तो रहती ही है। मीरां की भाषा मुख्यत: राजस्थानी है, जिसमें ब्रज, गुजराती, खड़ी बोली, अवधी आदि अनेक भाषाओं का सरस-सम्मिश्रण दिखाई देता है। गीतिशैली का उत्कृष्ट रूप भी भली-भाँति देखा जा सकता है। साहित्यिकता का आधिक्य न रहते हुए भी अनुभूतियों की तीव्रता एवं निजीपन के कारण मीरां का गीतिमुक्तक काव्य चिरकाल के लिए सहृदयों की अमर धरोहर बन गया है। मीरां के पदों की लोक प्रियता इस बात की साक्षी है।

8.1 महत्त्वपूर्ण व्याख्याएँ

(पदावली)

(1)

भज मन ! चरण कँवल अविनासी।
जेताइ दीसै धरणि-गगन विच, तेताइ सब उठ जासी।
इस देही का गरब न करणा, माटी में मिल जासी।
यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड्या उड़ जासी।
कहा भयो है भगवा पहर्याँ, घर तज भये संन्यासी।
जोगी होई जुगत नहीं जाणी, उलटि जनम फिर आसी।
अरज करूँ अबला कर जोरे, स्याम ! तुम्हारी दासी।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फांसी।

शब्दार्थ – जेताई=जितने भी। धरणि=पृथ्वी। तेताइ=उतने ही। देही=शरीर। गरब=घमण्ड। सांझ=सायंकाल। भगवा=योगीवस्त्र। जुगति=युक्ति। अबला=कमजोर स्त्री। जम की फाँसि=मृत्यु का भय।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'मीरां' पाठ से लिया गया है। 'पदावली' से उद्धृत है। प्रस्तुत पद में मीरां अपने सर्वशक्तिमान आराध्य प्रभु कृष्ण की अनन्य और एकनिष्ठ भक्ति-भावना को स्पष्ट करती हुई संसार के नश्वर रूप को व्यक्त कर रही हैं।

व्याख्या – भक्तिमती मीरां अपने मन को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे मन ! तू अविनाशी प्रभु श्रीकृष्ण के चरण-कमलों का भजन और स्मरण कर। उसी से तेरा उद्धार होगा। इस पृथ्वी और आकाश के मध्य जो भी कुछ दिखाई दे रहा है। यह सब कुछ नाशवान है और शीघ्र ही एक दिन समाप्त हो जाने वाला है अर्थात् यह संसार क्षणिक है, नाशवान है। हमें अपने पार्थिव शरीर पर, इसके सौन्दर्य, इसकी शक्ति पर भी अहंकार नहीं करना चाहिये क्योंकि मानव शरीर मर्त्य है। यह शरीर अन्त में मिट्टी में विलीन हो जायेगा। मीरां कहती हैं कि यह संसार नाशवान् हैं, सम्पूर्ण चहल-पहल कुछ समय के लिए है, जैसे ही इस संसार के जीवन की साँझ होगी, यह चहल-पहल भी समाप्त हो जायेगी। ठीक वैसे ही, जैसे दिन भर खेली जाने वाली शतरंज की बाजियाँ साँझ होते ही सिमट जाती है। जो लोग भगवा वस्त्र धारण कर घर संसार को त्याग देते हैं और वैराग्य धारण कर लेते हैं, उससे कोई लाभ नहीं है। प्रभु प्राप्ति के लिये योगी बनना पर्याप्त नहीं है। जब तक योगीवृत्त और योगसाधना का ज्ञान नहीं होगा तब तक उसका भी कोई लाभ नहीं है। क्योंकि जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं होगी तब तक प्राणी इस संसार में जन्म-मरण के चक्र में फँसा ही रहेगा। मीरां अपने आराध्य प्रभु कृष्ण से विनम्र निवेदन करती हुई कहती हैं कि हे प्रभु ! मैं असहाय और शक्तिहीन नारी आपसे हाथ जोड़कर विनती करती हूँ कि मुझे अपनी दासी समझ कर यमराज के बन्धन से मुक्त कर दीजिये अर्थात् मुझे इस सांसारिक जन्म-मृत्यु के चक्र से स्वतंत्र कर दीजिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में संसार को नश्वर तथा अनित्य माना है और परमात्मा को सत्य और नित्य माना है।

2. मोक्ष मिलने पर प्राणी यमराज अर्थात् काल के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

3. पद में अनुप्रास, रूपक, उपमा और काव्यलिंग अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

3. भाषा सरल और प्रभावशाली है।

5. पद की गेयता, नादात्मकता भावानुकूल है।

(2)

मन रे परसि हरि के चरण।
सुभग सीतल कँवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण।
जिण चरण प्रहलाद परसै, इन्द्र पद्वी धरण।
जिण चरण ध्रुव अटल कीन्हें, राखि अपनी सरण।
जिण चरण ब्रह्माण्ड भेट्यो, नख सिखि सिरी धरण।
जिण चरण प्रभु परसि लीन्हें, तरी गौतम धरण।
जिण चरण काली नाग नाथ्यो, गोप लीला करण।
जिण चरण गोवर्धन धर्‍यो, इन्द्र को गरव हरण।
दासी मीरां लाल गिरधर, अगम तारण-तरण।

शब्दार्थ – परसि=स्पर्श। त्रिविध ज्वाला=तीन प्रकार के कष्ट (दैविक, दैहिक और भौतिक)। पद्वी=पद। भेट्यो=नापलिया। नख-सिख=पैर के नाखून से चोटी तक। गौतम धरण=गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या। नाथ्यों=मर्दन किया।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है। 'पदावली' के इस अवतरण में मीरां ने अपने आराध्य प्रभु श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों के प्रताप और उनकी महिमा का प्रभावशाली वर्णन किया है।

व्याख्या – मीरां अपने आराध्य प्रभु श्रीकृष्ण के प्रभु चरणों की अलौकिक महिमा और उनके महत्त्व को स्पष्ट करते हुए अपने मन को सम्बोधित कर कहती है कि हे मन! तू प्रभु श्रीकृष्ण के चरणों को स्पर्श कर और उनसे अनुराग बढ़ा, तभी तेरे जीवन का उद्धार होगा। प्रभु के चरण-कमल के समान कोमल हैं और जीवन में व्याप्त त्रिविध संतापों का शमन् करने वाले हैं। (सांसारिक मानव जीवन तीन प्रकार के कष्टों – दैहिक, दैविक और भौतिक से त्रसित रहता है) इन्हीं चरणों का आसरा भक्त प्रहलाद ने लिया था तो उसे देवराज इन्द्र के समान सम्माननीय पद प्राप्त हुआ। इन्हीं चरणों की असीम कृपा ने भक्त ध्रुव को अटल बना दिया। ये चरण सभी अनाथों को शरण देने वाले कृपालु हैं। इन्हीं चरणों ने तीनों लोकों को माप कर प्रभु के बावन अवतार के समय संसार को शोभा सम्पन्न बना दिया था। इन्हीं चरणों ने मुनि गौतम की पाषाण रूप में पड़ी पत्नी अहिल्या का उद्धार किया है। इन चरणों की शक्ति ने ही गोवर्धन पर्वत को धारण कर देवराज इन्द्र का अहंकार नष्ट कर ब्रजवासियों की रक्षा की थी। ये ही चरण गोपियों के साथ ब्रज में राज करने वाले हैं। मीरांबाई कहती हैं कि मैं तो गिरिराज पर्वत को धारण करने वाले प्रभु श्रीकृष्ण के इन्हीं चरणों की दासी हूँ। मेरे लिये तो ये ही चरण इस संसार सागर से मुक्ति दिलाने वाली नौका के समान हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में प्रभु के चरण कमलों की महिमा का वर्णन अनेक ऐतिहासिक उदाहरणों के साथ व्यक्त किया है।

2. मीरां की अनन्य भक्ति भावना और प्रभु के चरणों के प्रति अटूट निष्ठा और विश्वास को व्यक्त किया है।

3. प्रभु के भक्त वत्सल रूप का सोदाहरण चित्रण है।

4. व्यंजन क्रम की पुनरावृत्ति के कारण अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है, यमक और काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग भी दृष्टव्य है।

(3)

राम-नाम-रस पीजै,
मनवा! राम-नाम-रस पीजै।
तजि कुसंग सतसंग बैठि नित, हरि चरचा सुणि लीजै।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह कूँ, चित्त से बहाय दीजै।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, ता के रंग में भीजै।

शब्दार्थ – मनवा=मन। तजि=त्याग कर। कुसंग=बुरे लोगों का साथ अथवा कुसंगति। सतसंग=संतों की संगति। ता के=उसके।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से अवतरित है। इसमें भक्तिमती मीरां ने सत्संगति एवं ईश्वर भक्ति की महत्त्वपूर्ण प्रेरणा दी है।

व्याख्या – मीरां अपने मन को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे मन ! तू सदा प्रभु राम केनाम का स्मरण कर। भक्ति-रस का पान कर जिससे तेरा उद्धार हो सके। (यहाँ पर राम नाम से तात्पर्य दशरथ नंदन राम ही नहीं बल्कि परम् पिता परमेश्वर का नाम भी राम है।) तथा सदैव कुसंगति का परित्याग कर संतों के साथ सम्पर्क बना अर्थात् सत्संगति का अनुसरण कर और प्रभु की महिमा और उसके भजनादि का श्रवण कर अपने जीवन को सार्थक बना। हे मन ! जो सांसारिक विकार हैं, यथा – काम वासना, क्रोध, अहंकार, मोह और माया आदि को चित्त से निकाल दे। तभी तेरे जीवन का कल्याण होगा। मीरां कहती हैं कि मेरे प्रभु गिरिराज धरण श्री कृष्ण हैं। उन्हीं के प्रेम रंग में अपने आप को सराबोर अर्थात् निमग्न कर ले और जीवन को आनन्दमय बना ले।

विशेष – 1. मीरां ने अपने आराध्य के नाम-स्मरण और उसके गुण-गान का सरल विधि से महत्त्व बताया है।

2. अनुप्रास, रूपक और काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(4)

मैंने राम रतन धन पायो।
वसत अमोलक दी मेरे सतगुरु, करि किरपा अपनायो।
जनम-जनम की पूँजी पायी, जग में सबै खोवायो।
खरचै नहीं चोर नहीं लेवै, दिन-दिन बढत सवायो।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भव सागर तरि आयो।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, हरखि-हरखि जस गायो।

शब्दार्थ – रतन=रत्न। वसत=वस्तु। अमोलक=अमूल्य। किरपा=कृपा। सवायो=सवा गुना अधिक। सत=सत्य। खेवटिया=नाविक। भव सागर=संसार सागर। हरखि-हरखि=हर्षित मन से अथवा उल्लास पूर्वक।

प्रसंग – प्रस्तुत अवतरण हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' नामक पाठ वे अवतरित है जिसमें 'राम' नाम की महिमा और 'गुरु' के महत्त्व को स्पष्ट किया है, साथ ही हरि-भक्ति के सम्बन्ध में अपनी आस्था व्यक्त की है।

व्याख्या – भक्तिमती मीरां प्रभु भक्ति को प्राप्त कर अत्यन्त आनन्द का अनुभव करती हैं और वे अपने अन्त:करण के हर्षित भक्तिभाव को उल्लास पूर्वक व्यक्त करती हुई कहती हैं कि मैंने सांसारिक बहुमूल्य वस्तुओं से परे 'राम' नाम का अलौकिक भक्तिरत्न प्राप्त कर लिया है, यह रत्न अपने आप में अमूल्य है। यह रत्न मुझे अपने सच्चे गुरु की असीम कृपा द्वारा ही प्राप्त कर इसे अपने जीवन में अंगीकार किया है। इसे प्राप्त करके तो मुझे ऐसा लगता है कि मुझे जन्म जन्मान्तरों की पूँजी प्राप्त हो गई है। सांसारिक पूंजी तो चाहे कैसी भी हो, वह दिन-प्रतिदिन खर्च होती है किन्तु यह भक्ति रूपी पूंजी प्रतिदिन सवा गुनी अधिक बढ़ती है। इसे कोई छीन नहीं सकता है, चुरा नहीं सकता है। यह सदैव सुरक्षित रहती है। अब तो मुझे ऐसा भी लगने लगा है, जैसे सत्य की नाव में सवार होकर मैं इस संसार सागर से शनै:-शनै: पार उतर रही हूँ क्यों कि मेरी शरीर रूपी सत की नाव के नाविक स्वयं मेरे सत्गुरु हैं। मीरां कहती हैं कि मैं अपने प्रिय गिरधर गोपाल कृष्ण का निरन्तर गुणगान करती रहती हूँ, जिसमें मुझे अत्यंत आनन्द की अनुभूति होती है।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में मीरां ने 'राम' नाम को अर्थात् प्रभु स्मरण को अलौकिक अमूल्य 'रत्न' बताकर अपनी भक्तिनिष्ठा को स्पष्ट किया है।

2. गुरु कृपा का वर्णातीत महत्त्व स्पष्ट किया है।

3. प्रभु भक्ति को ही मोक्ष का सरल उपाय बताया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

4. अनुप्रास, वीप्सा, रूपक, यमक और काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग किया है।
5. पद की भाषा सरल और गेय योजना से युक्त है।

(5)

आली रे मेरे नैनां बाण पड़ी।
चित्त चढी मेरे माधुरि मूरति, उर बिच आन अड़ी।
कब की ठाढी पंथ निहारूँ, अपने भवन खड़ी।
कैसे प्राण पिया बिन राखूँ, जीवन मूरि जड़ी।
मीरां गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगड़ी।

शब्दार्थ – आली=सखी। नैनां=आँखों में। बाण=आदत। उर बिच=ह्रदय में। ठाढी=खड़ी हुई। मूरि जड़ी=मूल जड़।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है। मीरां ने अपने स्वभाव और भक्ति भावना का मनोहारी परिचय दिया है।

व्याख्या – मीरां अपनी सखी को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि हे सखी! श्रीकृष्ण की रूप माधुरी को देखने की मेरी आँखों को एक आदत-सी पड़ गई है अर्थात् मेरे नेत्रों का यह स्वभाव हो गया है कि ये सहज और निर्निमेष रीति से प्रभु कृष्ण की रूप माधुरी का निरंतर पान करते रहें। कृष्ण की मधुर छवि पूरी तरह से मेरे चित्त पर चढ़ चुकी है जो अब निकाले नहीं निकलती है। प्रभु श्रीकृष्ण की मनोरम मूर्ति अब मेरे ह्रदय में बीचों-बीच जाकर, तिरछी होकर गड़ गई है। (प्रभु कृष्ण के त्रिभंगी रूप का संकेत किया गया है) अब तो मेरे प्रियतम ही मेरे जीवन की जीवनदायिनी या संजीवनी बूटी है। मीरां कहती हैं कि मैं तो अब पूर्णतया श्रीकृष्ण को समर्पित हो चुकी हूँ। प्रेम के वास्ते उनके हाथों बिक गई हूँ। लोग तो मुझे पथभ्रष्ट बताने लगे हैं। अर्थात् मेरे प्रियतम कृष्ण के प्रेम निर्वाह में अनेक प्रकार की सांसारिक बाधाएँ हैं।

विशेष – 1. आराध्य के प्रति समर्पण भावना व्यक्त की गई है।
2. अलंकारों में अनुप्रास और रूपक है।
3. राजस्थानी मिश्रित शब्दावली भावानुकूल है।
4. भाव साम्य - सूरदास के भ्रमरगीत में भी इसी प्रकार का भाव देखने को मिलता है -
''डर में माखन चोर गड़े। अब कैसे हूँ निसकत नाही ऊधो। तिरछे ह्वै जो अड़े।''

(6)

राणाजी! गिरधर रा गुण गास्याँ।
गुरु प्रताप साधरी संगति, सहजे ही तिर जास्याँ।
म्हारे तो पण चरणामृत रो, नित उठ देवल जास्याँ।
कथा कीरतन सुण निसि बासर, महा प्रसाद ले पास्याँ।
सुनि सुनि वचन साध रा मुखरा, निरत कराँ और नाचाँ।
प्रेम प्रतीति जाप निसि बासर, बाहुरी न भौ जल आस्याँ।
लोक वेद री काणि न मानूं, राम तणै रंग राँचा।
नाव अमोलक इमरित रूपी, सिर के साटै लास्याँ।
उमहड माड्यौ म्हारे ऊपर, विष रो प्याला प्यास्याँ।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, पीवत मन न डुलास्याँ।

शब्दार्थ – गास्याँ=गायेंगे। साधरी=साधु-संतों की। सहजे=आसानी से। म्हारे=मेरे। पण=प्रतिज्ञा। देवल=मंदिर। निस बासर=रात-दिन। मुखरा=मुख से। निरत=नृत्य। काणि=मर्यादा। नाव=नाम। अमोलक=अमूल्य। साटें=बदले में। डुलास्याँ=विचलित करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है। प्रस्तुत पद में मीरां ने अपने आराध्य की कान्ता-भाव की भक्ति करने के लिए राणाकुल की मर्यादा का परित्याग करने की घोषणा की है।

व्याख्या – मीरां कहती हैं कि हे राणाजी! मैं तो अब सदैव श्रीकृष्ण भक्ति और उनका गुणगान करूँगी। सद्‌गुरु की कृपा के सागर को बिना परिश्रम के आसानी से पार कर जाऊँगी। मैंने प्रतिदिन प्रभु चरणामृत पीने की प्रतिज्ञा ली है और इसे पाने के लिए मैं प्रतिदिन मन्दिर जाऊँगी। मन्दिर जाकर ईश्वर की भक्ति कर, कथा-कीर्तन कर महाप्रसाद प्राप्त करूँगी। साधु-संतों के मुखारविन्दों से सदुपदेश सुनकर नृत्य करूँगी, खुशीयाँ मनाऊँगी। रात-दिन प्रभु का स्मरण कर निरन्तर उनका प्रेम जाप करती रहूँगी, जिससे पुन: मुझे इस संसार सागर में गोते नहीं लगाने पड़ें। मैं सांसारिक अथवा लोक वेदों की मर्यादाओं के बन्धन को भी नहीं मानुँगी और भगवान् के संयोगजन्य प्रेम में निरत रहूँगी। मेरे लिये प्रभु नाम अमृत समान है। मैं अपने सिर का सौदा करके भी वह अमृतपान करूँगी अर्थात् प्रभु भक्ति रूपी अमृत के लिये मैं अपने प्राणों को भी न्यौछावर कर सकती हूँ। मुझ पर तो प्रभु कृष्ण का जुनून सवार है, मैं अपने सच्चे प्रेम के वशीभूत होकर विष का पान करते हुए भी विचलित नहीं होऊँगी।

विशेष – 1. प्रेम-दीवानी मीरां की दृढ़ भक्ति-भावना व्यक्त हुई है।

2. पद में अनुप्रास, रूपक और काव्यलिंग अलंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

(7)

मैं जाण्यो नाहीं, प्रभु को मिलन कैसे होय री।
आये मेरे सजना फिरि गये, मैं अभागण रही सोई री।
फारूँगी चीर करूँ गल कंथा, रहूँ बैरागण होय री।
चुरियाँ फोरूँ, माँग बिखेरूँ, कजरा मैं डारूँ धोय री।
निसि वासर मोहिं विरह सतावै, कल न परत पल मोय री।
मीरां के प्रभु हरि अविनासी, मिलि बिछरो मत कोय री।

शब्दार्थ – चीर=वस्त्र। कंथा=चिथड़े। कल=शांति।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है, जिसमें कवयित्री ने अपने आराध्य प्रभु कृष्ण से साक्षात्कार करने के लिये समस्त सांसारिक सुखों का त्याग कर सन्यासिनी बन जाने की भावना व्यक्त की है।

व्याख्या – विरहिणी मीरां कहती हैं कि मैं आज तक इस बात से अज्ञान थी कि प्रिय प्रभु का मिलन कैसे होता है? अत: अब मेरे प्रभु मेरे पास आये तो मैं अज्ञान के अंधकार में अभागिन बनी सोती रही और वे मुझसे बिना मिले ही लौट गये। अब मैं अपने इन सुन्दर वस्त्रों को फाड़कर इनका परित्याग कर दूँगी और फटे-पुराने चिथड़ों को धारण कर बैरागिन बन जाऊँगी। मैं अपने सुहाग और सौन्दर्य की प्रतीक चूड़ियों को तोड़ दूँगी, माँग में लगी सिंदूर को मिटा दूँगी तथा आँखों में लगे काजल को साफ कर सन्यासिनी बन जाऊँगी। रात-दिन मुझे मेरे प्रभु का विरह सता रहा है और मुझे एक पल भी शांति नहीं मिल पा रही है। मीरां कहती हैं कि मेरे प्रभु तो अविनाशी हैं। मैं प्रभु से यह कामना करती हूँ कि कोई भी अपने प्रियतम से मिलने के बाद न बिछड़े अर्थात् प्रभु मिलन के बाद वियोग न हो। क्योंकि विरह का दु:ख बड़ा ही कष्टदायी होता है।

विशेष – 1. पद में राजस्थानी संस्कृति के रंग का परिवेश है।

2. मधुरा भक्ति की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

3. अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार प्रयुक्त हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(8)

देखो सैयां, हरि मन काठ कियो।
आवन कह गयो अजहुँ न आयो, करि वचन गयो।
खान-पान, सुध-बुध सब बिसरी, कैसे करि मैं जियो।
वचन तुम्हारे, तुमहीं बिसारे, मन मेरा हर लियो।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, तुम बिन फाटत हियो।

शब्दार्थ – सैयां=प्रियतम। काठ=कठोर। अजहुँ=आज भी। बिसरी=खो दी गई या भूल गई। बिसारे=भुला दिये। हियो=हृदय।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से लिया गया है जिसमें मीरां ने स्वयं को प्रभु कृष्ण की विरहिणी के रूप में प्रस्तुत कर अपनी प्रेमाभक्ति की व्यंजना की है।

व्याख्या – विरह व्यथित मीरां कहती हैं कि हे सखी! देखो, मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण मन के कितने कठोर हो गये हैं, उनकी मेरे प्रति उदासीनता इतनी हो गई है कि वे मुझसे मेरे पास आने का वचन देकर गये थे, किन्तु आज तक भी उन्होंने आकर मेरी सुधि नहीं ली है। उनके न आने के कारण मेरा खान-पान भी छूट गया है और मैं अपनी सुधि-बुधि भी खो बैठी हूँ। हे सखी! अब तुम ही बताओ कि मैं उनके बिना कैसे जीवित रहूँ ? अपने प्रियतम को उपालम्भ देकर सम्बोधित करती हुई मीरां कहती हैं कि हे स्वामी! तुमने अपने वचन को पूरा न करके स्वयं अपने ही संसार की अवहेलना की है। हे प्रियतम! तुम अपना वचन पूरा करना क्यों भूल गये ? मीरां कहती हैं कि मेरे स्वामी तो गिरधर नागर हैं, जिनके वियोग के कारण तो मेरा हृदय फटा जा रहा है।

विशेष – 1. पद में मीरां ने परम्परागत विरह व्यथा का सुन्दर वर्णन किया है।

2. भाषा सरल और स्वाभाविक रूप लिये हुए है।

(9)

दरस बिन दूखनि लागे नैन।
जब के तुम बिछरे प्रभु मोरे, कबहुँ न पायौ चैन।
सबद सुनत मेरी छतियां कांपै मीठे-मीठे बैन।
विरह कथा कासूं कहूँ सजनी, बह गई करवत ऐन।
कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैण।
मीरां के प्रभु कबरे मिलौगे, दुःख मेटण सुख दैण।

शब्दार्थ – दुखणि=दुःखी। नैन=नेत्र। चैन=सुख शांति। छतिया=हृदय। बैन=वाणी। कासूँ=किससे। मग=राह। छमासी=छः माह की।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है। मीरांकृत इस पद में उन्होंने अपनी विरह व्यथित स्थिति का वर्णन किया है।

व्याख्या – मीरांबाई कहती हैं कि हे प्रभु! आपके दर्शन के बिना मेरी अखियाँ दुखने लगी हैं अर्थात् अधिक परेशान हैं। हे प्रभु! जब से आप मुझसे दूर गये हैं तब से आज तक मुझे थोड़ी-सी भी शांति नहीं मिली है। मुझे जब-जब आपके मधुर शब्दों की भनक लगती है तब ही मेरा हृदय काँपने लगता है, मेरा हृदय जैसे फटने लगता है। मैं अपने विरह का दुःख किससे कहूँ ? मन तो ऐसा करता है कि आरे के नीचे बैठ कर आत्महत्या कर लूँ। हर पल मैं बेचैन रहती हूँ और हमेशा आपके आगमन की प्रतिक्षा करती रहती हूँ। आपके वियोग में मेरी एक-एक रात छः-छः माह की लम्बी अवधि के समान व्यतीत होने लगी हैं अर्थात् समय काटे नहीं कटता है। मीरां कहती हैं कि दुःखों का शमन करने वाले और सुख देने वाले प्रभु श्रीकृष्ण! आप मुझे कब मिलोगे ? जिससे विरह संताप दूर हो।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में मीरां की विरह-व्यथा का कारूणिक वर्णन किया गया है।

2. पद में अनुप्रास, वीप्सा और विनोदोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(10)

राम कहिये रे गोविन्द कहिये रे।
कंकर हीरा एकसार सा, हीरा किसकूं कहिये रे।
हीरापण तो जद ही जाणां, मेहँगा मोल बिकइये रे।
कोयल-कागा एक सरीखा, कोयल किसकूँ कहिये रे।
कोयलपन तो जद ही जाणू, मीठा वचन सुनहिये रे।
हंसा-बगुला एक सरीखा, हंसा किसकूँ कहिये रे।
जगतां भगतां के आवरे है, भगता किसकूँ कहिये रे।
भगतपणां तो जद ही जाणूँ बोल सबही का सहिये रे।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणा चित दइये रे।

शब्दार्थ – एकसार=एक जैसा। जद ही=जब ही। मोल=कीमत। सरीखा=समान। जगतां=संसार।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है। प्रस्तुत पद में मीरां प्रभु आगमन का संदेश सुनकर प्रसन्नता व्यक्त कर रही हैं।

व्याख्या – मीरां कहती हैं कि हमें निरन्तर प्रभु राम का और गोविन्द का स्मरण करते रहना चाहिये। इस संसार में कंकर और हीरा एक जैसे प्रतीत होते हैं। उन्हें देखकर दोनों में से हीरे की पहचान करना कठिन है। हीरे का हीरापन तो इसी बात से ज्ञात होता है कि वह कंकर की अपेक्षा बहुत मूल्यवान होता है। कौआ और कोयल शारीरिक दृष्टि से एक जैसे प्रतीत होते हैं। उनका काला रंग भी एक समान होता है। ऐसे में कोयल की पहचान कैसे करें? कोयल की पहचान तो उसकी मीठी और मधुर आवाज होती है। इसी प्रकार हंस और बगुला एक जैसे लगते हैं। इन दोनों में अन्तर यही है कि हंस पानी और दूध को अलग-अलग कर देता है। सांसारिक माया-मोह में फँसे हुए प्राणी तथा भक्तगत दिखने में तो एक समान प्रतीत होते हैं किन्तु भक्तों की सच्ची पहचान तो यही है कि वह सबके कटु वचन सुनकर भी प्रसन्न रहता है। मीरां कहती हैं कि मेरे स्वामी तो श्रीकृष्ण हैं, मैं निरन्तर उनके चरणों में ही निरत रहती हूँ।

विशेष – 1. कथन की सरलता दृष्टव्य है।

2. इस पद में अनन्य निष्ठा और समर्पण का भाव व्यंजित हुआ है।

3. अनुप्रास और काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

4. रस - भक्ति रस

(11)

आज हौं देख्यो गिरधारी।
सुन्दर बदन मदन की शोभा, चितवन अनियारी।
बजावै बंसी कुंजन में।
गावत तान तरंग रंग धुनि, नाचत ग्वालन में।
माधुरि मूरति है प्यारी।
बसी रहे निस-दिन ह्रदय में, टरै नहीं टारी।
ताहि पर तन धन मन बारी।
वह मूरति मोहनी निहारत, लोक लाज हारी।
तुलसी वन कुंजन संचारी।
गिरधर लाल नवल घट नागर, मीरां बलिहारी।

शब्दार्थ – हौं=मैंने। अनियारी=अनोखी। मदन=कामदेव। निहारत=देखना। संचारी=भ्रमण करना। टरै=हटना। नवल=नया। वारी=न्यौछावर करना।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से लिया गया है जिसमें मीरां ने श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का सुन्दर चित्रण किया है।

व्याख्या – आज मैंने गिरीराज पर्वत को धारण करने वाले प्रभु श्रीकृष्ण के दर्शन किये। मीरां प्रभु की रूप माधुरी का वर्णन करते हुए कहती हैं कि वे कामदेव के समान मनोहर सौन्दर्य से युक्त हैं। उनकी चितवन का सौन्दर्य भी अनुपम और अनोखा है। वे सदैव वृन्दावन के कुंजों में मुरली वादन करते रहते हैं, जब वे गाते हैं तो उनकी राग-रागनियों की मोहक धुन पर ब्रज के बाल-गोपाल भी नाचने लगते हैं। उस समय उनकी मधुर मूरति बहुत प्रिय लगती है जो रात-दिन मन में बसी रहती है। उसे मन में से चाह कर भी नहीं हटाया जा सकता है। मीरां कहती हैं कि मैं कृष्ण के उसी रूप माधुर्य पर अपना तन और मन तथा धन सब कुछ न्यौछावर करती हूँ। गिरधर श्रीकृष्ण की इस मोहिनी मूरति को देखकर मैंने सम्पूर्ण लोक-लाज, मान-मर्यादाएँ भी छोड़ दी हैं। वे सदैव तुलसी के वनों और कुंजों में संचार करते रहते हैं। प्रभु कृष्ण अत्यन्त सुन्दर हैं और लीला-विलास के अभिनय में अत्यन्त चतुर और निपुण हैं। मीरां कहती हैं कि मैं उनकी माधुरी मूरति पर बलिहारी जाती हूँ।

विशेष – 1. पद में श्रीकृष्ण के रसिक रूप का वर्णन किया है।

2. अनन्य भक्ति भावना की व्यंजना हुई है।

3. पद शैली और तुकान्त योजना का विशेष ध्यान दिया गया है।

4. अनुप्रास अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

(12)

या ब्रज में कछु देख्यो री टोना।
ले मटुकी सिर चली गुजरिया॥
आगे मिले बाबा नन्द जी को छोना।
दधि को नाम बिसरि गयो प्यारी।
ले लेहुँ री कोई स्याम सलौना॥
वृन्दावन की कुंज गलिन में।
आँख लगाय गयो मन मोहना।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर।
सुन्दर स्याम मधुर रस लोना।

शब्दार्थ – टोना=जादू। छोना=पुत्र। दधि=दही। विसरि गयो=भूल गया। सलोना=सुन्दर।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है। पदावली के इस पद में मीरां ने प्रभु कृष्ण के युवावय रूप सौन्दर्य और उसके प्रभाव का मनोहारी वर्णन किया है।

व्याख्या – मीरांजी प्रभु श्रीकृष्ण के प्रभावशाली रूप सौन्दर्य का वर्णन करती हुई गोपियों के शब्दों में कहती हैं कि हे सखी! इन वृन्दावन में तो कोई जादू-सा देखा गया है। एक ग्वालिन दही बेचने के लिये मटकी में दही लेकर अपने घर से निकली और वह ''दही लेलो-दही लेलो'' पुकारने लगी। थोड़ी ही देर बाद वह दही का नाम तो भूल गई और ''कोई स्याम सुन्दर लेलो-कोई स्याम सुन्दर लेलो'' कहने लग गई। जैसे ही उस गोपी ने कृष्ण के नटखट माधुर्य को देखा तो वह इतनी दीवानी हो गई कि अपने लक्ष्य को ही भूल गई। जब से वह मोहन कृष्ण वृंदावन की कुंज गलियों में आँख लगा गया तब से गोपियों की दशा कारुणिक हो गई है। मीरां कहती हैं कि प्रभु गिरधर नागर श्रीकृष्ण अत्यन्त सरस स्वभाव के हैं तथा उनकी लीलाएँ प्रेम रस से परिपूर्ण हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में गोपियों के माध्यम से कृष्ण के चमत्कारी रूप सौन्दर्य का आकर्षक वर्णन किया गया है।

2. पद में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग किया गया है।

3. शब्द योजना तुकान्त शैली के अनुरूप हैं।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(13)

आओ मन मोहन जी, जोऊँ थारी बाट।
खान-पान मोहे नेकु न भावै, नैनण लगे कपाट।
तुम आयो बिन सुख नहीं मेरे दिल में बहुत उचाट।
मीरां कहै मैं भई बावरी, छांड़ों नाहि निराट।

शब्दार्थ—वाट=इंतजार। नेकुन=थोड़ा-सा भी। कपाट=दरवाजा। उचाट=उच्चाटन। बावरी=पागल। निराट=निराश्रित।

प्रसंग—प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है। प्रस्तुत पद में मीरां की मनोदशा का वर्णन करते हुए विरह व्यथा को स्पष्ट किया है और कृष्ण प्रेम की सुन्दर कामना व्यक्त की है।

व्याख्या—मीरां कहती हैं कि हे प्रभु मनमोहन! अब आप अतिशीघ्र मेरे पास आकर मुझे दर्शन देने की कृपा करें। मैं निरन्तर आपकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। हे प्रियतम! आपके वियोग में मुझे खाना-पीना कुछ भी अच्छा नहीं लगता है और मेरे नेत्र सदैव आपकी प्रतीक्षा में द्वार पर ही लगे रहते हैं। मीरां कहती हैं कि आपके दर्शन के बिना सदैव मेरे मन में बेचैनी अथवा उच्चाटन-सा लगा रहता है और मैं पागल-सी हो गई हूँ। हे स्वामी! आप मुझे इस प्रकार निराश्रित न छोड़िये।

विशेष—1. विरह व्यथा का परम्परागत वर्णन किया है।

2. अनुप्रास व काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग किया गया है।

(14)

पिया बिन सूनो छै जी म्हारो देस।
ऐसा है कोई पीव सूँ मिलावे तन मन करूँ सब पेस।
तेरे कारण बन-बन डोलूँ, कर जोगण को भेस।
अवधि बवीती अजूँ न आये, पंडर हो गया केस।
मीरां के प्रभु कबरै मिलोगे, तजिदियो नगर नरेस।

शब्दार्थ—देस=जीवन रूपी संसार। पेस=अर्पित। पंडर=सफेद। केस=बाल।

प्रसंग—प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है। प्रस्तुत पद में प्रेम व्यथित मीरां की मनोदशा का चित्रण किया है।

व्याख्या—मीरां कहती हैं कि अब तो मेरे प्रियतम प्रभु श्रीकृष्ण के बिना सारा जीवन रूपी संसार ही वीराना हो गया है। क्या इस संसार में ऐसा कोई है, जो मुझे मेरे स्वामी से मिला दे अर्थात् श्रीकृष्ण के दर्शन करा सके। यदि कोई भी मुझे प्रभु से मिला दे तो मैं प्रभु चरणों में अपने आपको तन-मन से समर्पित कर दूँगी। मीरां अपनी विरह व्यथा को स्पष्ट करती हुई कहती हैं कि हे प्रियतम! मैं तुम्हारे कारण वन-वन भटक रही हूँ अर्थात् तुम्हें ढूंढने के लिये मैं जगह-जगह जा रही हूँ किन्तु तुम नहीं मिल रहे हो। मैंने जोगिन वस्त्र धारण कर लिये हैं और वैरागिन बन गई हूँ। आपने मुझसे मिलने की एक निश्चित अवधि तय की थी किन्तु आज तक भी आप नहीं आये। मेरी शारीरिक स्थिति भी खराब हो गई है अब तो बाल भी सफेद हो गये हैं अर्थात् विरहावधि बहुत अधिक हो गई है। हे प्रभु! मैंने आपके लिये सभी राजमहलों का सुख और राणा परिवार की मर्यादित नगरी का भी त्याग कर दिया है। हे स्वामी! आपके दर्शन मुझे कब होंगे?

विशेष—1. प्रस्तुत पद में मीरां के त्याग उसकी तपस्या और प्रभु कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम भाव को सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है।

2. प्रिया मिलन की लालसा, प्रवास चिन्तन, लौकिक सुख-भोग का त्याग तथा प्रियतम के प्रति उपालम्भ आदि भावों का मार्मिक चित्रण किया है।

3. विप्रलम्भ शृंगार का सुन्दर परिपाक हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(15)

बसौ मेरे नैनन में नन्दलाल।
मोहनि मूरति साँवरी सूरति, नैणा बने विसाल।
अधर सुधा रस मुरली राजत, उर बैजन्ती माल।
छुद्र घाण्टिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल।
मीरां के प्रभु संतन सुखदायी, भक्त बछल गोपाल।

शब्दार्थ – मोहनि=मोहित करने वाली। अधर=होंठ। उर=गले में। कटि=कमर। छुद्र घण्टिका=छोटी-छोटी घंटियाँ। नूपुर=घुँघरु।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है जिसमें मीरां अपने प्रभु कृष्ण की रूप माधुरी को अपने हृदय में बसाये रखने की कामना करती है।

व्याख्या – कृष्ण दीवानी मीरां कहती हैं कि हे नन्द के पुत्र कृष्ण ! आप सदैव मेरी नजरों के सामने रहो और सदैव मेरी आँखों में निवास करो अर्थात् आपकी मोहक छवि हमेशा मेरी आँखों में बनी रहे। मीरां प्रभु कृष्ण की माधुरी का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत करती हुई कहती हैं कि हे प्रभु श्रीकृष्ण ! आप की मूरति अत्यन्त मनमोहक है अर्थात् आपका रूप मन को मोहित करने वाला है। आपका श्यामवर्ण और बड़े-बड़े नेत्र बहुत ही सुन्दर हैं। आपके होठों पर अमृत रस प्रदान करने वाली मुरली विराजमान है, आपके वक्षस्थल पर वैयजन्ती माला शोभायमान हो रही है। कमर पर छोटी-छोटी घंटियाँ अत्यंत सुन्दर लग रही हैं तथा पैरों में पहनी हुई पायल की मधुर झंकार भी अत्यंत आनन्ददायी और रस से युक्त है। मीरां कहती हैं कि हे गोपाल ! आप भक्त वत्सल हैं और भक्तों को सुख पहुँचाने वाले हैं।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कृष्ण के रूप सौन्दर्य का बहुत ही सुन्दर और प्रभावकारी वर्णन किया है।

2. पद में गेयता और शब्द मैत्री प्रशस्य है।

3. रस - भक्ति रस

(16)

तनिक हरि चितवौ जी मोरी ओर।
हम चितवन तुम चितवत नाहीं, दिल के बड़े कठोर।
मेरे आसा चितवनि तुमरी, और न दूजी दौर।
तुम से हमकूं कबरे मिलौगे, हमसी लाख करोर।
ऊभी ठाढी अरज करत हूँ, अरज करत भयो भोर।
मीरां के प्रभु हरि अविनासी, देस्यू प्रान अकोर।

शब्दार्थ – तनिक=थोड़ा-सा। चितवौ=देखिये। अरज=विनती। भोर=सुबह। अकोर=न्यौछावर।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है जिसमें मीरां अपने आराध्य श्रीकृष्ण से अपनी ओर कृपा दृष्टि बनाये रखने की कामना करती हैं।

व्याख्या – मीरां कहती हैं कि हे प्रभु श्री कृष्ण ! थोड़ा हमारी ओर भी ध्यान दीजिये। हे हरि ! आप बहुत कठोर हृदय वाले हो, क्योंकि हम तो सदैव निर्निमेष आपके सौन्दर्य पर दृष्टि गढाए रहते हैं किन्तु आप हमारी ओर तनिक भी नहीं देखते हैं। हे स्वामी ! मेरी सम्पूर्ण अपेक्षाएँ आपकी ओर हैं, दूसरी ओर तो हमारा ध्यान ही नहीं जाता है। हे प्रभु आप हमें कब मिलोगे। मैं जानती हूँ कि आपके पास मेरी जैसी तो लाखों-करोड़ों हैं किन्तु मेरे लिये तो केवल एक आप ही हैं। आपसे मिलने की आशा में मैं काफी समय से खड़ी-खड़ी हाथ जोड़कर विनती कर रही हूँ। हे अविनाशी ! मैं अपने प्राणों को भी आपके दर्शन के लिये न्यौछावर कर सकती हूँ।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में मीरां की अनन्य भक्ति और सम्पर्ण की भावना का सुन्दर चित्रण है।

2. पद में अनुप्रास, यमक और काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

3. भावसाम्य - ''मोहि तुम एक, तुम मों सम अनेकों आहि कहाँ कंजु चंदहि चंकोख की कमी है।''

4. रस - भक्ति रस

5. भाषा - राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा।

(17)

पिया तेरे नाम लुभाणी हो।
नाम लेन तिरतां सुव्या, जैसे पाहन पाणी हो।
सुकरत कोई न कियो, बहु करम कुमाणी हो।
गणिका कीर पढावताँ, बैकुण्ठ बसाणी हो।
अरधनाम लियो, वाको अवध घटाणी हो।
गरुड छाड़ि, हरि धाइया, पसु जूण मिटाणी हो।
अजामेल से ऊधरे, जम त्रास नसाणी हो।
पुत्र हेतु पदवी दई, जग सारे जाणी हो।
नाम महातम गुरु दियो, परतीत पिछाणी हो।
मीरा दासी रावली, अपनी कर जाणी हो।

शब्दार्थ – लुभाणी=मोहित। तिरताँ=उद्धार होता। पाहन=पत्थर। सुकिरत=अच्छे कार्य। कीर=तोता। बैकुण्ठ=स्वर्ग। वाको=उसका। अवध=अवधि, समय। छांडि=छोड़कर। धाइया=दौड़े। पसु जूण=पशु की योनि। ऊधरे=पापी। त्रास=कष्ट। नसानी=नष्ट करना। पदवी=पद। महातम=महात्म्य।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है जिसमें मीरां ने प्रभु श्री कृष्ण के भक्त वत्सल्य रूप और उनके नाम स्मरण के महत्त्व को अनेक लौकिक उदाहरणों के साथ स्पष्ट किया है और अपनी अनन्य भक्ति भावना को व्यक्त किया है।

व्याख्या – भक्तिमती मीरां अपने आराध्य को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि हे प्रभु! मैं आपके नाम पर मोहित हो गई हूँ और उसी नाम की लोभी भी हो गयी हूँ। अपने अटूट विश्वास को व्यक्त करती हुई मीरां कहती हैं कि मैंने सुना है कि आपने नाम के स्मरण मात्र से प्राणी इस भवसागर से तर जाता है, इतना ही नहीं, बल्कि यह भी सुना है कि आपके नाम में ऐसी शक्ति है कि बड़े-बड़े शिलाखण्ड भी पानी में तैरने लग जाते हैं। (सेतुबन्ध रामेश्वर का पुल बनाते समय शिलाखण्डों पर 'राम' नाम अंकित किया गया, जिससे वे भी पानी में तैरने लगें।) मीरां कहती हैं कि गणिका (वेश्या) ने जीवन में कभी कोई पुण्य का कार्य नहीं किया, बल्कि उम्र भर वह व्यभिचार जैसा घृणित कार्य करती रही, फिर भी वह अपने तोते को राम नाम का पाठ पढ़ाते-पढ़ाते सद्गति को प्राप्त हुई। इसी प्रकार ग्रह की गिरफ्त में पड़े हुए हाथी ने भी अन्त समय में आपका आधा ही नाम लिया था, आपने न केवल उसके संकटों की असहनीय अवधि को कम किया था बल्कि अपनी प्रिय सवारी गरुड़ को छोड़कर पैदल ही भागकर उस हाथी की रक्षा की तथा हमेशा-हमेशा के लिये उसे पशु योनि से मुक्ति दिलाकर मोक्ष प्रदान किया हे प्रभु! आपने अजामिल जैसे पतित ब्राह्मण को यमराज की त्रास से मुक्ति दिलाकर मोक्ष प्रदान किया जिसका एकमात्र कारण यह था कि उसने मृत समय में अपनी सहायतार्थ अपने पुत्र नारायण को पुकार लिया था। आपका यह पतित पावन रूप संपूर्ण संसार को विदित है। हे प्रियतम! आपने अपनी शरण में आये हुए को विविध प्रकार से वरदान दिये हैं और अपने भक्तों की आस्था व विश्वास को समुचित सम्मान दिया है। मीरां कहती हैं कि हे स्वामी! मैं तो आपकी दासी हूँ, अत: मुझे अपना ही समझ लो और मेरा भी उद्धार करो। आपसे मेरी भी यही विनती है।

विशेष – 1. प्रस्तुत पद में कई अन्तर्कथाओं की पुष्टि की गई है।

2. भाषा अति सरल है।

3. रस - भक्ति रस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(18)

राम नाम रस पीजे, मनुआ राम नाम रस पीजे।
तजि कुसंग सत्संग बैठि नित, हरि चरचा सुण लीजे।
काम क्रोध मद लोभ मोह कूं चित्त से बहाय दीजे।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रंग में भीजे।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है। इस पद में भक्तिमती मीरां ने राम नाम का स्मरण और सत्संगति के महत्त्व को स्पष्ट किया है।

व्याख्या – मीरां अपने मन को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे मन ! तुम सदैव प्रभु राम नाम के स्मरण से प्राप्त आनन्द रस का पान करते रहो और कुसंगति का परित्याग कर सत्संगति का अनुसरण करो। साथ ही प्रभु का गुणगान करते रहो जिससे मन में व्याप्त सम्पूर्ण सांसारिक विकार यथा – काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि चित्त से निकल जायें। मीरां कहती हैं कि मेरे प्रभु तो गिरधर नागर हैं। उन्हीं के प्रेम और भक्ति रंग में मेरा मन रंगा रहे।

विशेष – 1. मीरा की भक्ति भावना का समर्पण रूप उभरा है।

2. भाषा सरल और शब्द विन्यास गेय है।

3. राम नाम की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है।

4. रस - भक्ति रस

(19)

मीरां मगन भई हरि के गुण गाय।
साँप पिटारा राणाजी भेज्या, मीरां हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखन लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणाजी भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, लागी हो अमृत अचाय।
सूल सेज राणाजी ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय।
साँझ भई मीरां सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।
मीरां के प्रभु सदा सहाई, राखे बिघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है। इसमें मीरां ने प्रभु भक्ति के सुफल का सत्य अनुभव व्यक्त किया है। अपने आराध्य की पावन कृपा देखकर मीरां निश्चित होकर भक्ति में लीन रहने लगी।

व्याख्या – मीरां कहती हैं कि मैं प्रभु श्रीहरि का गुणगान कर उसी में मग्न हो गई हूँ। हरि भक्ति में व्यवधान डालने के लिये राणा परिवार ने अनेक षड्यंत्र रचे थे, किन्तु हरि कृपा से सभी विफल रहे। एक बार राणाजी से सांप का पिटारा यह कहकर भेजा कि इसमें पूजा के पुष्प हैं। जब स्नान आदि से निवृत्त होकर मीरां ने उसे खोल कर देखा तो स्वयं हरि शालिगराम की मूर्त्ति के रूप में वहाँ विराजमान थे। एक बार राणाजी ने जहर का प्याला अमृत बताकर मीरां के पास भेजा था तो वह भी प्रभु कृपा से अमृत ही बन गया और मीरां उसे पीकर अमर हो गई। एक बार राणाजी ने शूलों का सेज मीरां को सुलाने के लिये भेजा और जब साँझ ढलने पर वह सोने लगी तो ऐसा लगा जैसे वास्तव में उस शैय्या पर फूल ही बिछा दिये गये हों। इस प्रकार मीरां कहती हैं कि मेरे प्रभु सदा मेरे सहायक हैं। मैं प्रभु के इस रूप पर बार-बार बलिहारी जाती हूँ।

विशेष – 1. मीरां के हरि भजन मार्ग में आने वाली बाधाओं का सरल उल्लेख है।

2. अनुप्रास, यमक और काव्यलिंग अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(20)

बदला रे तू जल भरि ले आयौ।
छोटी-छोटी बुन्दिन बरसन लागी, कोयल सबद सुनायौ।
गाजै-बाजै पवन मधुरिया, अंम्बर बदरा छायौ।
सेज सँवारी पिया घर आये, हिल मिल मंगल गायौ।
मीरां के प्रभु हरि अविनासी, भाग चल्यो जिन पायौ।

प्रसंग– प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है जिसमें प्रकृति के उद्दीपन रूप को चित्रित कर मीरां की पियामिलन की आकांक्षा को व्यक्त किया है।

व्याख्या– मीरां वर्षा ऋतु के बादलों को सम्बोधित कर उन्हें प्रेमपूर्वक आमंत्रित करती हुईं कहती हैं कि हे बादलों ! अब तुम जल्दी ही जल पूरित होकर आ जाओ। तुम्हारे आगमन पर छोटी-छोटी बूंदें बरसने लगेंगी और बागों में कोयल मधुर वाणी में कुहुँकने लगेंगी। शीतल पवन के झौंके शरीर को शीतलता पहुचाएँगे और समूचे गगन मण्डल में घने बादल छा जाएँगे। मीरां कहती हैं कि हे सखी ! मैंने अपने प्रियतम के लिए सेज सजा दी है। जब वे मेरे पास आयेंगे तो मेरी सारी सखियाँ मंगलगीत गाने लगेंगी। मीरां कहती हैं कि मेरे स्वामी तो अविनाशी कृष्ण हैं। यदि मेरा उनसे मिलन हो गया तो निःसंदेह मैं बड़ी भाग्यशाली अपने आपको समझूँगी। अर्थात् मुझ जैसे बिरले ही भाग्यशाली ऐसा प्रियमिलन प्राप्त कर सकेंगे।

विशेष– 1. प्रस्तुत पद में प्रकृति के उद्दीपन रूप का सजीव वर्णन किया गया है।

2. मीरा की प्रिय मिलन की सुन्दर अभिव्यक्ति की है।

3. भाषा सरल और शब्द विन्यास गेय है।

(21)

मेरो तो मन राम चरण सुखदाई।
जिन चरणन सों निकसी सुरसरी, शंकर जटा समाई।
जटा शंकरी नाम धर्यो है, त्रिभुवन तारन आई।
जिन चरणन की बिमल पादुका, भरत रहे लव लाई।
जो केवट कहँ पावन कीन्हों, जबप्रभु नाव चढाई।
दण्डक वन राम पावन कान्हों, मुनियन दु:ख मिटाई।
जो ठाकुर तिहुँ लोक को स्वामी, कपट कुरंग संग धाई।
कपि सुग्रीव बंधु भय व्याकुल, जा सिर छत्र धराई।
रिपु को अनुज विभीषन भेंट्यो, मीरां की बारी आई।

शब्दार्थ– सुरसरी=गंगा। जटा शंकरी=शिव की जटाओं में निवास करने वाली गंगा। त्रिभुवन=तीनों लोक। तारन=उद्धार के लिये। बिमल=पवित्र। पादुका=खडाउ। कुरंग=मृग। रिपु को अनुज=शत्रु रावण का भाई विभीषण।

प्रसंग– प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य-माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जिसमें प्रभु श्रीकृष्ण और राम के चरणों की महिमा का वर्णन कया गया है तथा मीरां के उद्धार की कामना की गई है।

व्याख्या– भक्ति रस में निमग्न मीरां प्रेम और भक्ति युक्त निवेदन करती हुई कहती हैं कि मेरा मन तो प्रभु श्रीराम के सुखदायी चरणों में रम गया है। जिन प्रभु श्रीहरि विष्णु के चरणों से पतित पावनी गंगा का आगमन हुआ और देवादि देव महादेव की जटाओं में समा गई तथा जिस गंगा ने जटा शंकरी नाम धारण किया। जिन प्रभु श्रीराम की चरण पादुकाओं से प्रेरणा प्राप्त कर भरत जी ने अयोध्या का राज्य चलाया और सदैव अपने हृदय में धारण किये रखा। प्रभु राम के जिन चरणों को केवट ने नाव में प्रभु को बिठाने

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

से पूर्व प्रेम पूर्वक प्रक्षालन कर अपना सकुटुम्ब उद्धार किया। प्रभु श्रीराम के इन्हीं चरण कमलों ने दण्डक वन को पवित्र किया और वहाँ के निवासी ऋषि मुनियों के समस्त संतापों का शमन किया था। तीनों लोकों के स्वामी प्रभु श्रीराम। जिनको इन्हीं चरणों के द्वारा कपटी मृग का रूप धारण किये हुए राक्षस मारीचि के पीछे भागना पड़ा और उसका भी उद्धार किया। जब बानर राज सुग्रीव अपने भाई बाली के प्रकोप से इधर-उधर छुपता हुआ भाग रहा था तो इन्हीं चरणों का सहारा लेकर वह कोप मुक्त हुआ और इन्हीं चरणों की कृपा से उसने किष्किन्धा का राज्य छत्र धारण किया था। अपने शत्रु रावण के अनुज विभीषण को भी इन्हीं चरणों का सहारा प्रभु ने दिया और लंकापति के रूप में विदित हुआ अतः प्रभु श्रीराम के चरण कमलों की असीम अनुकम्पा से सभी का कल्याण हुआ है। मीरांजी कहती हैं कि अब मेरी बारी है। इन चरणारविन्दों की कृपा से मेरा भी उद्धार हो जाएगा।

विशेष – 1. पद में मीरां ने अपनी आस्थानुरूप प्रभु के चरणों की महिमा का सुन्दर वर्णन किया है।

2. मीरां की अनन्य भक्ति भावना व्यक्त हुई है।

3. राम कथा से सम्बंधित वर्णन कर मीरां ने अपनी भक्ति भावना को प्रबल बना दिया है।

4. अनुप्रास और अर्थान्तरण न्यास अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है।

(22)

चलो मन गंगा यमुना तीर।
गंगा यमुना निरमल पाणी, सीतल होय सरीर।
बंसी बजावत गावत कान्हा, संग लिये बलवीर।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुण्डलि झलकत हीर।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पै सीर।

शब्दार्थ – तीर=किनारा। निरमल=पवित्र।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है जिसमें मीरां ने अपनी भक्ति भावना और कृष्ण की माधुरी पर न्यौछावर होने की प्रबल इच्छा को व्यक्त किया है।

व्याख्या – मीरां अपने मन को सम्बोधित करती हुई कहती हैं कि हे मन ! तुम गंगा और यमुना के किनारे पर चलकर निवास करो। वहाँ का जल इतना निर्मल है कि शरीर के सारे संताप समाप्त हो जाएँगे, साथ ही अपूर्व शीतलता और शांति प्राप्त होगी। यह वह किनारा है, जहाँ पर श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई बलरामजी के साथ जाते थे और बंसी बजाते थे। प्रभु श्रीकृष्ण के सिर पर मोर पंखों का मुकुट शोभायमान है, कानों में हीरे के कुण्डल सुशोभित होते है। मीरां कहती हैं कि वे ही गिरधर नागर मेरे स्वामी हैं। मैं उन्हीं के चरण कमलों में मस्तक नवा कर उन पर बलिहारी जाती हूँ।

विशेष – 1. पद में प्रेमाभक्ति की सुन्दर व्यंजना हुई है। 2. अनुप्रास और रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

(23)

आली म्हाँने लागे वृंदावन नीको।
घट-घट तुलसी ठाकुर पूजा, दरसन गोविन्द जी को।
निरमल नीर बहुत जमुना में, भोजन दूध दही को।
रतन सिंहासन आपु विराजै, मुकुट धर्‍यो तुलसी को।
कुंजनि-कुंजनि फिरत राधिका, सबद सुनत मुरली को।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिना नर फीको।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है जिसमें मीरां ने वृन्दावन नगरी के प्रति अपनी गहरी आस्था व्यक्त करते हुए वहाँ की विशेषताओं को स्पष्ट किया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

व्याख्या – मीरां कहती हैं कि हे सखी ! मुझे वृन्दावन नगरी और वहाँ का धार्मिक जन-जीवन बहुत ही अच्छा लगता है। वे कहती हैं कि वहाँ पर प्रत्येक घर में तुलसी की पूजा होती हैं और ठाकुरजी की पूजा होती है तथा प्रतिदिन गोविन्द देवजी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। यमुना नदी का जल बहुत ही पावन है और भोजन के रूप में वहाँ पर शुद्ध दूध और दही खाने को मिलता है। वहाँ के हर मंदिर में रत्न जड़ित सिंहासनों पर तुलसी मुकुट धारण किये हुए स्वयं श्रीकृष्ण ठाकुर रूप में विराजमान हैं। प्रत्येक कुंजों में राधा के भ्रमण का अनुभव होता है और प्रभु कृष्ण की मुरली की मधुर धुन सी सुनाई देती है। मीरांजी कहती हैं कि मेरे प्रभु तो गिरधर नागर हैं और उनकी भक्ति भजन के बिना मानव जन्म निरर्थक है।

विशेष –

1. प्रस्तुत पद में स्पष्ट किया है कि वृन्दावन जैसी धार्मिक भूमि में आवास करने से प्रभु दर्शन की लालसा बनी रहती है।
2. मीरां स्वयं लम्बे समय तक वृन्दावन भूमि में रमी रहीं जिससे वहाँ के धार्मिक जन-जीवन का अनुभव स्पष्ट होता है।
3. अनुप्रास, वीप्सा और विनोक्ति अलंकार का वर्णन किया गया है।

(24)

कोई कहे रे प्रभु आवन की।
आवन की, मन भावन की।।
आप न आवै, लिख नहीं भेजे, बाण पड़ी ललचावण की।
एहि दोउँ नैण कह्यो नहीं माने, नदिया बहै जैसे सावन की।
कहा कहूँ कछु बस नहीं मेरो, पाँख नहीं उड़ जावन की।
मीरां कहै प्रभु कबरे मिलौगे, चेरी भई हूँ तेरे दामन की।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है। प्रस्तुत पद में प्रेम दीवानी मीरां के प्रिय मिलन की प्रबल उत्कंठा और बेचैनी को प्रभावी ढंग से व्यक्त किया गया है।

व्याख्या – मीरां जी कहती हैं कि मैं प्रभु वियोग में अत्यधिक व्याकुल हो रही हूँ अतः कोई तो मुझे प्रभु आगमन का मनभावन संदेश सुनाये। प्रभु कृष्ण पर उपालम्भ डालती हुई वे कहती हैं कि न तो स्वयं आते हैं और न कोई संदेश ही लिख कर भेजते हैं। लगता है कि मुझे दर्शन के लिये ललचाने की उनकी आदत पड़ गई है। मैं अपने इन वियोगी नेत्रों को बहुत समझाती हूँ किन्तु मेरा कहना मानते ही नहीं हैं और रोते रहते हैं। इन आँखों से अश्रुजल सावन माह में प्रवाहित होने वाली नदियों की तरह से प्रवाहित होता रहता है। मीरां कहती हैं कि क्या करूँ, मेरा कुछ वश नहीं चलता है, अन्यथा पक्षी की तरह उड़कर अपने प्रियतम के पास पहुँच जाती। मीरां कहती हैं कि हे प्रभु ! आपके दर्शन मुझे कब होंगे। मैं तो आपके सहारे की ही दासी हूँ।

विशेष – 1. प्रियतम के विरह में प्रेयसी की विवशता एवं वेदना का मार्मिक चित्रण कर कान्ताभाव की भक्ति व्यक्त हुई है।
2. अनुप्रास, रूपक और दृष्टान्त अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

(25)

मैं हरि बिन क्यूँ जियूँ रे माई।
प्रिय कारण बौरी भई, ज्यूँ काठहिं घुन खाई।
ओखद मूल न संचरै, मोहि लाग्यो बौराई।
कमठ दादुर बसत जल मैं, जलही नैं उपजाई।
मीन जलके बिछुरे तन, तलफ करि मर जाई।
पीवँ ढूंढत बन-बन गई, कहूँ मुरली धुन पाई।
मीरां के प्रभु लाल गिरधर, मिलि गये सुखदायी।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

शब्दार्थ – बौरी=पागल । काठहि=लकड़ी । घुन=दीमक । ओखद=औषधि । कमठ=कछुआ । दादुर=मेंढक । मीन=मछली ।

प्रसंग – प्रस्तुत पद हमारी पाठ्य-पुस्तक ''प्राचीन काव्य माधुरी'' के 'मीरांबाई' पाठ से लिया गया है जो मीरां द्वारा रचित 'पदावली' से अवतरित है । इसमें मीरां ने अपने आराध्य को अपना प्रियतम मानकर अपनी विरह व्यथा का अनेक उदाहरणों के साथ वर्णन किया है । साथ ही अपनी विवशता को व्यक्त किया है ।

व्याख्या – मीरां अपनी सखी को सम्बोधित करती हुई कहती हैं, हे सखी ! मैं अपने प्रियतम कृष्ण के बिना कैसे जीवित रह सकती हूँ ? मैं तो प्रिय मिलन के बिना बावली सी हो गई हूँ । अन्दर ही अन्दर ऐसी कमजोर हो गई हूँ, जैसे लकड़ी में दीमक लग जाने से वह कमजोर और खोखली हो जाती है । अब मेरी दशा अत्यधिक दयनीय हो गई है, इस कारण किसी भी औषधि का शरीर पर प्रभाव नहीं पड़ता है । अब तो मुझे प्रेम रोग का पागलपन लग गया है । जिस प्रकार कछुआ, मेंढक आदि जल चर जीव जल में ही जन्म लेते हैं और उसी में बसे रहते हैं । मछली भी एक क्षण के लिये जल से पृथक नहीं रह पाती हैं और तड़प-तड़प कर मर जाती है । उसी प्रकार प्रियतम के बिना मेरे प्राण भी तड़प रहे हैं । अब तो जीवित रहने की आशा भी नहीं है । मैं अपने प्रभु के वियोग में उदास मन होकर वन-वन भटकती हूँ फिर भी उनकी मुरली की धुन सुनाई नहीं पड़ती है । मीरां कहती हैं कि मैं तो प्रभु कृष्ण की दासी हूँ उनके दर्शन से ही मुझे अपार सुख मिलता है ।

विशेष – 1. जैसे जलचर के लिये जल प्राणोषधि होती है वैसे ही प्रेयसी के लिये प्रिया का सामीप्य सुखदायक होता है ।

2. मीरां का विरहिणी कान्ताभाव व्यक्त हुआ है ।

3. अनुप्रास, उदाहरण और उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है ।

8.2 अभ्यास प्रश्नावली

8.2.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. लेखक कैलाश भट्ट ने भक्तिमती मीरां को 'रेगिस्तान की मन्दाकिनी' क्यों कहा है ?

मीरां का जन्म राजस्थान में जोधपुर जिले के अन्तर्गत 'मेड़ता' नामक गाँव में हुआ था जहाँ भौगोलिक दृष्टि से वर्ष भर में न्यूनतम वर्षा होती है और सूखा, रेगिस्तानी क्षेत्र है । मीरां ने प्रभु कृष्ण की भक्ति रूपी गंगा की प्रेमपूरित सलिलें प्रवाहित की और सुरीले मुक्त कण्ठ से निकलने वाले पदों के संगीतमय स्वरों के प्लावन से समूचे क्षेत्र को आनन्द की हरियाली से बाग-बाग कर दिया । इसीलिये मीरां को 'रेगिस्तान की मंदाकिनी' कहा गया है ।

प्रश्न-2. शैशव अवस्था में ही मीरां संस्कारों के दर्पण में झाँकती हुई दिखाई देने लगी थी । इसका प्रमुख कारण क्या था ?

उत्तर – मीरां की माता का स्वर्गवास इनके शैशव से सुकुमारी के क्षणों में हो गया था । ऐसी स्थिति में इनका लालन-पालन इनके पितामह रावदूदा के सान्निध्य में हुआ, जो परम वैष्णव भक्त थे । यही प्रभाव मीरां के कोरे व्यक्तित्व पर पड़ा ।

प्रश्न-3. ऐसे कौन-से कारण थे कि मीरां को बारह वर्ष की आयु में ही वैवाहिक बन्धन में बँधना पड़ा?

उत्तर – शैशव के अबोध काल से ही मीरां का ध्यान भगवद्भक्ति की ओर रहने लगा था और अबोध क्षणों से ही बाल-गोपाल को अपना पति मानने लगी थी तथा प्रारम्भ से ही उसे सांसारिकता से अलगाव-सा रहने लगा था । शैशवी वैराग्य भावना से घबरा कर इसका ध्यान सांसारिकता की ओर मोड़ने के लिये बचपन में ही मीरां का विवाह कर देना पड़ा था ।

प्रश्न-4. कृष्ण के पति मीरां का प्रेम भाव और अधिक गहरा कब से होने लगा था ?

उत्तर – मीरां के विवाहोपरान्त जब उनके प्रति भोजराज की मृत्यु हो गई तो मीरां का बाल मन प्रभु कृष्ण के प्रेम रंग में और अधिक गहरा हो गया ।

प्रश्न-5. मीरां ने गुरु कृपा से कौन-सा अमूल्य रत्न प्राप्त किया था ?

उत्तर – मीरां ने 'राम' नाम का 'अमूल्य रत्न' गुरु कृपा से प्राप्त किया था ।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न-6. मीरां को वृन्दावन क्यों अच्छा लगा ?

उत्तर – वृन्दावन का जनजीवन धार्मिक था, घर-घर में तुलसी और ठाकुर जी की पूजा होती थी तथा प्रतिदिन गोविन्द देव के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त होता था।

प्रश्न-7. मीरां की भक्ति भावना किस प्रकार की थी ?

उत्तर – मीरां की भक्ति माधुर्य भाव से युक्त कान्ता भाव की थी।

प्रश्न-8. मीरां के पदों का संकलन किस नाम से किया गया ?

उत्तर – 'मीरां पदावली' के नाम से मीरां की रचनाओं का संकलन किया गया।

प्रश्न-9. ''बसो मेरे नैनन में नन्दलाल'' पद में मीरां ने अपने आराध्य के किस रूप का वर्णन किया है ?

उत्तर – मीरां ने प्रस्तुत पद में श्रीकृष्ण के भक्त वत्सल, मनमोहक और उनके माधुरी रूप का वर्णन किया है।

प्रश्न-10. ''यह संसार चहर की बाजी, साँझ पड्या उठि जासी।'' के आधार पर संसार को मीरां ने किस रूप में प्रस्तुत किया है ?

उत्तर – मीरां ने संसार को नश्वर और अनित्य माना है। यह संसार जन्म व मृत्यु के नियमों पर चलने वाला है।

प्रश्न-11. मीरां के अनुसार ईश्वर भजन मानव के लिये क्यों आवश्यक है ?

उत्तर – भगवद् भजन के बिना मानव का जीवन निरर्थक है तथा मोक्ष प्राप्ति का लक्ष्य ईश्वर भक्ति ही है।

प्रश्न-12. मीरां ने अपने काव्य की रचना में कौन-सी भाषा का प्रयोग किया है ?

उत्तर – मूलतः मीरां का काव्य राजस्थानी भाषा में रचित है किन्तु गुजराती व अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग भी किया गया है।

प्रश्न-13. मीरां की काव्यशैली कौन-सी है ?

उत्तर – गीति-काव्य के अनुरूप मुक्तक शैली में मीरां के काव्य की रचना हुई है।

प्रश्न-14. ''पिया थारे नाम लुभाणी हो।'' मीरा प्रभु के नाम पर क्यों मोहित हुई?

उत्तर – प्रभु का नाम बहुत प्रभावशाली है। उसके प्रभाव से पतित से पतित व्यक्ति का उद्धार हो जाता है। यहाँ तक कि प्रभु के नाम का प्रभाव शिलाखण्डों को भी पानी में तैराने की क्षमता रखता है।

प्रश्न-15. ''अरज करूँ अवला कर जोरें स्याम तुम्हारी दासी'' प्रस्तुत पंक्ति में मीरां ने अपने आराध्य से क्या निवेदन किया है ?

उत्तर – मीरां निवेदन करती हैं कि वे सदैव उस पर कृपा दृष्टि बनायें रखें और मीरां को सांसारिक जन्म-मरण से मुक्त कर दें।

प्रश्न-16. **''मन रे परस हरि के चरण।**

सुभग सीतल कँवल-कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण''

प्रस्तुत पंक्ति में त्रिविध ज्वाला किन्हें बताया है ?

उत्तर – संसार में तीन प्रकार के कष्ट माने गये हैं – दैहिक, दैविक और भौतिक। ये ही त्रिविध ज्वाला है।

प्रश्न-17. ''या ब्रज में कछु देख्यो री टोना।'' – इस पद में मीरां ने ग्वालिनि की किस मनोदशा का वर्णन किया है ?

उत्तर – दही बेचने जाने वाली ग्वालिनी जब कृष्ण की रूप माधुरी को देख लेती है तो वह उसकी इतनी दीवानी हो जाती है कि 'दही' को बेचने की जगह ''कान्हा'' बेचने लगती है।

प्रश्न-18. ''मैं जान्यो नाहिं, प्रभु को मिलन कैसे होई'' पंक्ति में अज्ञान बश क्या हानि हुई?

उत्तर – मीरां प्रभु मिलन की रीति से अज्ञान होने के कारण कृष्ण के आगमन पर भी सोती रही और वे बिना मिले ही लौट गये।

प्रश्न-19. प्रिय मिलन की आशा में अपना कौन-सा रूप धारण कर लेने की ठान लेती है ?

उत्तर – मीरां सुहाग और सुखों के सम्पूर्ण संकेतों को नष्ट कर वैरागिन रूप धारण कर लेने की ठान लेती है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न-20. ''चलो मन गंगा यमुना तीर'' मीरां अपने मन को यमुना तट पर चलने के लिये क्यों कहती है?

उत्तर – मीरां के अनुसार यमुना के किनारे कभी-न-कभी निश्चित ही प्रभु कृष्ण अपने भाई बलराम के साथ गाते हुए अथवा बंसी बजाते हुए मिलेंगे। इसी संभावना से मीरां मन को यमुना किनारे चलने के लिये कहती है।

8.2.2 लघूत्तरात्मक प्रश्न

प्रश्न-1. वास्तव में ''प्रेम की पीर'' और ''कृष्ण विरह की अनवरत धड़कन का दूसरा नाम ही मीरां है।'' स्पष्ट करते हुए विरह-वर्णन की विशेषताएँ बताइये।

उत्तर – मीरां ने अपनी भक्ति भावना में कान्ताभाव को लिया है। इन्होंने अपने कृष्ण को प्रियतम, प्रवासी पति तथा औशिलिया प्रेमी बताकर दाम्पत्य रूप का प्रतिपादन अपने काव्य में किया है, परिणामत: मीरां का काव्य दोनों ही पक्षों से सौन्दर्य युक्त बन गया है। मीरां के प्रेम में प्रगाढ़ता, विरह, एकनिष्ठा, समर्पण, त्याग, असहनीय कष्ट और मिलन की लालसा कूट-कूट कर भरी हुई है। दरद दीवानी मीरां अपने प्रियतम को लुभाने हेतु अनेक प्रयास करती है। शैशव काल से लेकर जीवन के अंतिम क्षणों तक मीरां तिल-तिल कर अपना समय प्रिय वियोग में व्यतीत करती है। मीरां का दर्द कोई सामान्य दर्द नहीं होता है, उसमें असहनीय तड़प होती है, अनेक टीसें होती हैं, कसक होती है, भटकाव होता है, निराशा होती है, बिखराव होता है और इन सबसे ऊपर उठकर नारी का कोमल हृदय होता है। प्रवासी प्रियतम की चिर प्रतीक्षा का मर्म मीरां के अतिरिक्त भला और कौन समझ सकता है। एक अबला का घायल मन किस तरह प्रेम का मरहम पाने के लिये वन-वन भटकता है और अग्निपथ पर चलते-चलते दिशा विहीन दूरियों की वेदना को सहन करता है, मीरां के अतिरिक्त भला और कौन जान सकता है। प्रेम की पुजारिन के दिल की प्रेम-पीड़ा का अहसास शायद प्रभु श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं है। मीरां की भक्ति भावना का मूल आधार यही अनन्य प्रेम-निष्ठा, समर्पण-भाव और आत्मविश्वास है। मीरां का प्रेम अन्त में आनन्ददायक होने का आभास भी दिलाता आया है, इसी सहारे वह भक्ति मार्ग की कोमल राहगीर बिखरती नहीं हैं ''अँसुवन जल सींचि-सींचि प्रेम बेल बोई, अब तो बेल फैल गई, आनन्द फल होई।'' प्रेम की प्रगाढ़ता मीरां के मन को विचलित नहीं होने देती है। यद्यपि एक विरहिणी नायिका के लिये अनेक प्राकृतिक उपादान कष्टकारी होते हैं, प्रवासी प्रियतम का वियोग दु:खदायी होता है। आगमन की सूचना मिलने पर भी प्रिय का न आना कितना मार्मिक होता है यह तो मीरां का प्रेम दीवाना दिल ही जान सकता है। मीरां के विरह-वर्णन में इन सभी मर्मों का निवाण हुआ है तथा विरह की सभी दशाओं का समावेश कर मधुर भावों की अभिव्यक्ति हुई है। मीरां प्रभु कृष्ण की दासी बनकर, जोगिन बनकर, प्रियतमा बनकर, विरहिणी बनकर दर्शन मिलन-सुख की अभिलाषा करती है। इसी प्रसंग में वह लोक-आस्था का स्वर भी व्यक्त करती है। अत: कहा जा सकता है कि मीरां के काव्य में विरह-वर्णन अनेक विशेषताओं से मण्डित है और इसमें भी संदेह नहीं है कि ''प्रेम की पीर'' और ''कृष्ण विरह की अनवरत धड़कन का दूसरा नाम'' मीरां है।

प्रश्न-2. राणा परिवार द्वारा मीरां के भजन-कीर्तन का विरोध करने पर मीरां की मनोभावनाओं को पदावली के आधार पर वर्णित कीजिये।

उत्तर – मीरां के वैवाहिक जीवन का प्रारम्भ ही उसके भावी कष्टों का प्रारम्भ था। शैशव और युवती अवस्था के मध्य ही मीरां का लौकिक सौभाग्य उजड़ गया था। इनके पति भोजराज का देहान्त हो गया था। पति के स्वर्गवास के बाद मीरां ने बड़े साहस के साथ कृष्ण को अपना वास्तविक पति मान लिया था और वह स्वच्छन्द होकर प्रभु का भजन-कीर्तन करने लगी। यह सब राणा राज्य परिवार को अच्छा नहीं लगा, उन्होंने मीरां के इन क्रियाकलापों का विरोध किया और उस पर अनेक प्रकार के अंकुश लगाने प्रारम्भ कर दिये। इधर मीरां का रूप सौन्दर्य परिवार के कुछ मनचले युवकों के लिये वासनात्मक आकर्षण बना हुआ था। मीरां के द्वारा उन सब का विरोध और भक्ति भाव की मन मानी, दोनों ही मीरां के लिये लौकिक कष्टों का सबब बन गये थे।

मीरां के जीवन का एक मात्र आश्रय कृष्ण भक्ति था। मीरां ने राणा परिवार के प्रतिबन्धित जीवन यापन से अच्छा कृष्ण का भजन-कीर्तन, सत्संगति और सदुपदेश व ज्ञान प्राप्ति को माना। राणाजी ने यद्यपि मीरां के इन कार्यों में अनेक व्यवधान डाले। यहाँ तक कि मीरां को मारने के लिये अनेक षड्यंत्र भी रचे गये तथापि वह टस से मस नहीं हुई। कृष्ण की अटूट भक्ति और श्रद्धा ने मीरां को काफी सहारा दिया। यथा –

मीरां मगन भई हरि के गुण गाय।
सांप पिटारा राणाजी भेज्यो, मीरां हाथ दियो जाय।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

न्हाय धोय जब देखणलागी, सालिग राम गई पाय।
जहर का प्याला राणाजी भेज्यो, अमरित दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, लागी हों अमर अचाय।
सूल सेज राणाजी ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय।
साँझ भई मीरां सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।

मीरां को विश्वास हो गया कि प्रभु कृष्ण की कृपा अब उसके साथ है। इन घटनाओं के बाद तो मीरां भक्ति के विशाल गगन में आजाद पंछी की तरह प्रेम की सुरीली वाणी में चहकती हुई ऊँची उड़ान भरने लग गई। प्रेम दीवानी मीरां के दिल और दिमाग पर कृष्ण प्रेम का ऐसा ज़ुनून सवार हुआ कि उसने सम्पूर्ण लोक लाज व मान-मर्यादाओं को ताक में रख दिया और –

''पग घुँघरू बाँध मीरां नाँची रे''

वह वृन्दावन चली गई और वहाँ प्रभु कृष्ण की अबाध रूप से भक्ति करती हुई सद्गति को प्राप्त हुई।

प्रश्न- 3. ''तनक हरि चितवौ जी म्हारी ओर।' पद में निहित मीरां के मूल भाव को स्पष्ट कीजिये।

उत्तर – प्रस्तुत पद में मीरां ने प्रभु कृष्ण से सदैव कृपादृष्टि बनाए रखने का प्रेम निवेदन व्यक्त किया है। इस पद में मीरां की कान्ताभाव की भक्ति, समर्पणशीलता एवं उपालम्भ का मधुर स्वर मुखरित हुआ है। मीरां ने कृष्ण को कठोर हृदय बताया है और अपनी तरफ न देखने की शिकायत की है। मीरां ने यह भी निवेदन किया है कि प्रभु कृष्ण के अतिरिक्त उनके जीवन का अन्य कोई आश्रय नहीं है, ऐसे में प्रभु उनका विशेष ध्यान रखें। यद्यपि मीरां जानती हैं कि कृष्ण के पास उनकी जैसी लाखों-करोड़ों प्रेमिकाएँ हैं तथापि मीरां विश्वास पूर्वक प्रभु से उनके सामीप्य की कामना करती हैं। मीरां ने प्रभु को अविनाशी बताया है और अपने आपको उनकी दासी। वे अपने प्रियतम के चरण कमलों में रहने के लिये सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार हैं।

''ऊभी ठाढ़ी अरज करत हूँ, अरज करत भयो मोर।
मीरां के प्रभु हरि अविनासी, देस्यूँ प्राण अकोर।''

8.2.3 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न- 1. ''मीरां के काव्य में कला और भाव-पक्ष का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है।'' कथन की सोदाहरण पुष्टि कीजिये।

अथवा

मीरां के काव्य सौन्दर्य की सोदाहरण समीक्षा कीजिये।

उत्तर – हिन्दी साहित्य के भक्तियुगीन कृष्ण भक्त कवियों में भक्तिमती मीरां का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि मीरां का लक्ष्य मनभाविनी कविताओं की रचनाएं कर काल जगत् में यश प्राप्त करना नहीं था, अपितु उनका उद्देश्य तो भगवत्-भक्ति में तल्लीन होकर अपने आराध्य श्री हरि विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण का गुणगान करना और अपने निजी सांसारिक जीवन की मार्मिकता प्रकट कर अपना उद्धार चाहने की भावना को प्रकट करना था। मीरां अपने प्रभु कृष्ण की प्रेमासक्ति को पदों के रूप में व्यक्त करती रही और यह पद संग्रह ही उनका काव्य बन गया।

मीरां ने अपने आराध्य को ही अपना प्राण-प्रिय मानकर उन्हीं की प्रेरणा से अनेक पदों की रचनाएँ कीं। जिनमें प्रिय मिलन की प्रबल आकांक्षा, प्रतीक्षा, वेदना तथा अलौकिक आनन्द समाहित करती रही। उनकी रचनाओं में 'नरसी जी को मायरो', 'गीत गोविन्द' तथा 'राग सोरठ' प्रसिद्ध हैं। 'रास गोविन्द' में उन्होंने विभिन्न राग-रागनियों का सुन्दर प्रयोग किया है। यद्यपि मीरां द्वारा रचित अब तक लगभग ग्यारह रचनाएँ प्राप्त हुई हैं जिनमें कुछ तो पूर्ण हैं और कुछ अपूर्ण हैं। सभी रचनाओं की प्रामाणिकता संदिग्ध है किन्तु उनके द्वारा रचित 'मीरां की पदावली' ही प्रामाणिक है, जिसका संकलन और सम्पादन अनेक विद्वानों ने किया है।

मीरां का काव्य सौन्दर्य

मीरां का काव्य भक्ति और प्रेम का काव्य है। उसमें जहाँ एक ओर कृष्ण भक्ति का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है, वहीं दूसरी ओर प्रेम, अनन्यता, त्यागशीलता और समर्पण भी परिलक्षित होता है। मीरां का सम्पूर्ण काव्य प्रायः आत्मव्यंजक काव्य है। उन्होंने न केवल भक्ति और प्रेम के पद लिखे हैं, अपितु अनेक ऐसे पदों का निर्माण भी किया है, जो उनके निजी जीवन की मार्मिक घटनाओं के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

चित्र भी प्रस्तुत करते हैं। मीरां के काव्य में प्रमुख रूप से जो पद मिलते हैं, वे जीवन सम्बन्धी, रूप और लीला सम्बन्धी, प्रकृति वर्णन सम्बन्धी, रहस्य भावना सम्बन्धी, दर्शन सम्बन्धी और वियोग वर्णन से ओत-प्रोत हैं। कवयित्री रूप में इनके जीवन की हार्दिक विवशता और द्वन्द्वात्मक स्थितियों का आकलन भी सरलता से किया गया है। रूप वर्णन और लीला वर्णन से सम्बंधित पदों में कृष्ण के रूप और उनके लीला विहारी रूप को चित्रित किया गया है। प्रकृति वर्णन के प्रति मीरां अधिक सतर्क नहीं रही हैं, फिर भी कहीं-कहीं उद्दीपन भाव के अन्तर्गत प्रकृति और पर्वों का वर्णन किया गया है –

''झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन में उभग्यो मेरो मनवा, भनक पड़ी हरि भावन की।
उमड़-घुमड़ चहुँ दिस से आयो, दामण दमक झर लावन की।''

मीरां ईश्वर, जीव और माया के चक्रव्यूह में नहीं पड़ी क्योंकि वह दार्शनिक नहीं थी, उनका मन सामान्य नारी का मन था। इनकी भक्ति माधुर्य भाव की रही है अतः नारी हृदय की वेदना और वियोगानुभूतियों का अभिव्यंजना मीरां की काव्य में गहराई से मिलती है। इनके काव्य में विरह की तीव्रता तो है ही – त्याग, समर्पण, निष्ठा का भाव भी कम गहरा नहीं है।

''भावपक्ष में मीरां का काव्य सौन्दर्य''

1. रहस्यात्मक अनुभूति – मीरां ने अपने आराध्य कृष्ण को आध्यात्मिक रूप में अपना परम-प्रियतम और पति बताया है। उन्होंने अपने प्रिय को कहीं तो सगुण साकार बताकर उनके रूप माधुरी पर आसक्ति दर्शाई है और कहीं निर्गुण-निराकार बताकर परम ब्रह्म रूप में भक्ति की है। इनके काव्य में रहस्यवाद की अनुभूति सशक्त हुई है। इनका काव्य शृंगार प्रधान है, किन्तु उनका प्रेम लौकिक न होकर अलौकिक है। वे कृष्ण के रूप पर आसक्त हैं किंतु भावावेश में उनका प्रियतम सदैव उनके हृदय में निवास करता हुआ दिखाई देता है, यथा –

''बिन करताल पखावन बाजै, अणहद की झनकार रे।
बिन सुर राग छतीसूं गावै, रोम-रोम रंग सार रे॥''
''म्हारा प्रिया म्हारे हियड़े बसतां, ना आवा ना जाती।''

2. राम नाम का महत्त्व – मीरां ने अपने काव्य में गुरु की महिमा, सत्संग का महत्त्व, संसार की निस्सारता तथा लोक जीवन के अंधविश्वास पर अनेक विचार व्यक्त किये। मीरां ने कहा कि गुरु की परम कृपा के बिना भक्ति असंभव है। मन की चंचल वृत्ति को गुरु ज्ञान द्वारा ही रोका जा सकता है, क्योंकि एकाग्र मन भक्ति का मूल है, इसीलिये गुरु को नाम रूप से परिचय कराने वाला बताया है। ईश्वर के नाम को सत्संग की भाँति मुक्तिदायक बताया है –

''राम नाम रस पीजै मनुवा राम नाम रस पीजै।
तजि कुसंग सत्संग बैठ नित, हरि चरचा सुण लीजै॥''

मीरां तो राम के नाम पर मोहित हो जाती है। उनके प्रभु का नाम तो इस संसार में ऐसी नाव है जिसका सहारा लेकर पतित से पतित व्यक्ति भी संसार सागर से पार उतर सकता है। राम का नाम तो इतना प्रभावशाली है कि जिसके प्रताप से शिलाखण्ड भी जल में तैरने लगते हैं –

''नाम लेत तिरताँ सुव्या, जैसे पाहन पाणी हो।''

प्रभु नाम का प्रताप तो इतना है कि एक बार 'हरि' नाम उच्चारण मात्र से जीवन का लक्ष्य ही प्राप्त हो जाता है, चाहे जीवन भर कोई भी पुण्य का कार्य नहीं किया हो –

''सुकीरत कोई न कियो, बहुत करम कुमाणी हो।
गणिका कीर पढावताँ, बैकुण्ठ बसाणी हो॥''

प्रभु के नाम का एक बार उच्चारण करने से –

''अजामेल से ऊधरे, जम त्रास नसाणी हो।
पुत्र हेत पदवी दई, जग सारा जाणी हो॥''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

यदि जीवन में एक बार प्रभु का आधा नाम भी मन से ले लिया तो वह भी मोक्षदायी होता है –

"अरध नाम लियो बाको, अवध घटाणी हो।
गरुड़ छाँड़ि, हरि धाइया, पसु जूण मिटाणी हो॥"

इसी लिये मीरां ने प्रभु नाम का ही सहारा लिया, जिससे वे अपने जीवन का उद्धार कर सकें –

"मेरा मन रामहि राम रटै रे।
राम नाम जप लीजे प्राणी, कोटिक पाप कटै रे।"

मीरां ने प्रभु के नाम को अलौकिक और अनमोल रत्न कहा है –

"पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।"

3. भक्ति भावना – कृष्ण भक्तों में मीरां का नाम भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। मीरां की भक्ति-भावना कान्ता-भाव की है। इनका लौकिक प्रेम विभिन्न परिस्थितियों के टेढ़े-मेढे मार्गों से विचरण करता हुआ अलौकिक प्रेम में बदल गया और प्रभु कृष्ण के श्री चरणों में जाकर ठीक उसी प्रकार एकाकार हो गया जिस प्रकार पर्वतों के कंकरीले विकट मार्गों से गमन करती हुई नदी सागर में पहुँच कर एकाकार हो जाती है। मीरां ने अपने प्रभु कृष्ण को प्रियतम के रूप में मानकर शृंगार रस की जो मार्मिक अभिव्यक्ति की है तदनुसार उनकी भक्ति मधुराभाव की मानी जाती है। यद्यपि मीरां का प्रेम अलौकिक है तथापि उसमें दाम्पत्य भाव और कान्ता-भाव से स्पष्ट प्रमाण स्वयं बोलते हैं –

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।"

मीरां का प्रेम परवान चढ़ा हुआ था, वह कृष्ण की दीवानी थी। वह सदैव अपने प्रेमी को अपनी आँखों में बसाये रखना चाहती थी और अपने सावरे के रंग में रंग कर दुनिया की लोक-लाज से बेखबर रहना चाहती थी। यहां तक कि वह अपने पैरों में घुँघरू बाँधकर अपने प्रिय कृष्ण को रिझाने के लिये मन्दिरों में स्वतंत्रता पूर्वक नृत्य किया करती थी।

"पग घुँघरू बाँध मीरां नाची रे
लोग कहे मीरां भई बावरी, सास कहे कुल नासी रे।"

मीरां के पदों में दास्य भावना भी प्रकट हुई है, ऐसे पदों में आत्मा की तुच्छता प्रधान हो जाती है। किन्तु मीरां ने अपने नटवर नागर को ही अपने जीवन का केन्द्र बनाया। कभी तो उन्होंने मिलन के गीत गाये और कभी विरह वेदना से युक्त।

4. विरहानुभूति और मिलन सुख – मीरां की रचनाओं में भक्ति के दो रूप मिलते हैं – विरह और मिलन। कृष्ण के विरह में मीरां जीवन भर आठ-आठ आँसू रोई हैं और सदैव उनसे मिलने के लिये आकुल रही है।

"विरहणी बैठी रंग महल में, मोतियन की लड़ पोवै।"

मीरां का प्रियतम चिर प्रवासी है, इसलिये मीरां की रचनाओं में आकांक्षा, अकुलाहट तथा वेदना के अनेक मर्मस्पर्शी चित्र मिलते हैं –

"जोगिया निसि दिन जोऊँ थारी बाट।
पाँव न चाले पंथ दुहैलो, आढा औघट घाट।"

"सखी म्हारी नींद नसाणी हो।
पिय रो पंथ निहारत, सिगरी रैण विहाणी हो।"

मीरां सदैव वियोगजन्य अन्तर्वेदना से व्याकुल रहती है। उसे एक पल के लिये भी चैन नहीं मिलता है। अपनी विरह वेदना को वह किसी से कह भी नहीं सकती है, ईश्वर से सदैव मिलन का आग्रह बना रहता है –

"दरस बिन दुखन लागे नैण।
सबदाँ सुनताँ म्हारी छतियाँ काँपे, मीठो थारो बेन।
विरह विथा कासौ कहूँ सजनी, पेठाँ करवत ऐण।"

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इस विरह में पोषितपतिका स्वकीया नायिका की मधुर सुरभि है। इसी कारण इनकी विरह वेदना में अधिक मार्मिकता है। मिलन के अनुभव में सुकोमलता भी दिखाई देती है –

''म्हारा ओगलिया घर आया जी।
तन की ताप मिटी सुख पाया, हिल मिल मंगल गाया जी।
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूँ मेरे आणंद छाया जी।''

5. गंभीर भावों की अभिव्यक्ति – मीरां के काव्य में भावों की क्लिष्टता और जटिलता का बोझ कहीं पर नहीं है। हृदय के सरल उद्‌गारों को इन्होंने सीधे, सरल तरीके से ही व्यक्त कर दिया है। इनके सारे पदों में प्रेम और विरह की भावना व्यक्त हुई है, लेकिन कहीं भी भावों का उथलापन या उलझन नहीं है।

कला-पक्ष में मीरां का काव्य-सौन्दर्य –

यद्यपि मीरां के काव्य में भावपक्ष की प्रधानता अधिक है और कला-पक्ष लगभग गौण है फिर भी सौन्दर्य की दृष्टि से हम कला-पक्ष को भी प्रशंसनीय मानते हैं। मीरां के पदों में एक-विरहिणी के भावों का रंग-विरंगा रूप स्वाभाविक है, उन्होंने वेदना, व्यथा और करुणा का स्वर अपनी रचनाओं में दिया है, काव्य का सौन्दर्य तो खुद-ब-खुद समाहित हो गया है तथापि मीरां के इस पक्ष को प्रस्तुत बिन्दुओं के आधार पर व्यक्त कर सकते हैं –

1. मुक्तक – मीरां का सम्पूर्ण काव्य मुक्तक शैली में लिखा गया है। ईश्वर भक्ति में लीन रहते हुए मीरां को समय-समय पर जो अनुभूतियाँ हुई, उन्हीं को उन्होंने स्वतंत्र पदों के रूप में व्यक्त कर दिया है। उनके पदों में उनकी निजी एवं हार्दिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना हुई है। इस लिये उनमें भावों की तीव्रता है।

2. गेयता का गुण – मीरां के सभी पद गेय हैं। उनके हृदय प्रेम भावना पदों में बँधकर संगीतमय हो गई हैं। अपने पदों में गीति तत्त्व के आग्रह से ही मीरां ने उनमें कुछ परिवर्तन किये हैं। मीरां के पदों में तीव्र अनुभूति, कोमल शब्द और प्रवाहमयता की अधिकता है, इन्हीं तत्त्वों के सामंजस्य से काव्य में संगीत का माधुर्य आ गया है। इनके पदों को कोई भी गाये, उनमें संगीत अपने आप ही बहता चला जायेगा। इनके पद अलग-अलग रागनियों में गाये जा सकते हैं, वैसे इनके पदों में लोकगीतों के शब्दों का प्रयोग नहीं है जिससे पदों में रोचकता और लयबद्धता स्वत: आ गई है।

3. भाषा – मीरां के पदों की भाषा राजस्थानी है, जो 'कलात्मकता' से बिल्कुल दूर है। भाषा में गुजराती, पंजाबी आदि प्रान्तीय भाषाओं के कुछ शब्द आये हैं जिनसे काव्य के सौन्दर्य और भावों के अभिव्यक्त सौन्दर्य में वृद्धि हुई है। पदों में ब्रज भाषा के शब्दों की अधिकता है। मिश्रित भाषा का मूल कारण यह है कि मीरां विभिन्न क्षेत्रों में घूमती रही और वहाँ के विभिन्न शब्द इनकी भाषा में सम्मिलित हो गये।

4. अलंकार योजना – मीरां के काव्य में सब कुछ स्वाभाविक हैं, कृत्रिमता कुछ भी नहीं है। इनका काव्य प्राय: निरंलकृत है, क्योंकि मीरां को अलंकार शास्त्र का कतई ज्ञान नहीं था, फिर भी कुछ अलंकार स्वत: उनके काव्य में आ गये, यथा –

अनुप्रास अलंकार – **''जोगी होय जुगत नहीं जाणी,**
उलटि जनम फिर आसी।''

रूपक अलंकार – **''भज मन चरण-कमल अविनासी''**

उपमा अलंकार – **''ज्यूँ चतक घण कूँ रटै, मछरी ज्यूँ पानी हो''**

5. प्रतीक विधान – मीरां के काव्य में अलौकिक प्रेम भावना के कारण रहस्यात्मकता है जिससे कई पदों में सुन्दर प्रतीकों की योजना भी दिखाई देती है –

''त्रिकुटी महल में बना झरोखा,
सुन्न महल में सुरत समाऊँ।''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

प्रस्तुत उदाहरण में 'सुन्न महल' में प्रतीकात्मकता है। इसी तरह ''पंचरंग चोला'', ''बड़े घर का ताला'' पारिभाषिक प्रतीक है।

8.3 सारांश

हम कह सकते हैं कि मीरां का काव्य कोमल भावों एवं ह्रदय की मार्मिक अनुभूतियों से युक्त है, जिसमें स्वाभाविकता और सहजता है। भाव-पक्ष सशक्त एवं कला-पक्ष गौण है। गेयता, सरसता एवं माधुर्य के कारण मीरां का काव्य सौन्दर्य आज भी जन-जन को आकर्षित कर रहा है।

8.4 नोट

कुछ प्रश्न परीक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, जिनके उत्तर लगभग समानता लिये हुए हैं। केवल प्रस्तुत करने में सामान्य फेर-बदल किया जा सकता है, ऐसे प्रश्नों के उत्तर बिन्दु विद्यार्थियों की सुविधा के लिये दिये जा रहे हैं, जिनका विवरण स्वयं लिखें —

प्रश्न-2. मीरां की भक्ति भावना पर प्रकाश डालते हुए सिद्ध कीजिये कि उनके पदों में माधुर्य-भाव की अनन्यता है।

उत्तर — बिन्दुओं में —

1. मीरां का सामान्य जीवन परिचय।

2. मीरां की काव्य साधना।

3. मीरां की भक्ति-भावना —

(अ) कृष्ण का रूपमाधुर्य

(ब) प्रियतम रूप में कृष्ण भक्ति

(स) निर्गुण-सगुण भक्ति

(द) माधुर्य-भाव की भक्ति

(य) नाम गुण-स्तवन

विस्तृत जानकारी के लिये निबन्धात्मक प्रश्न संख्या 1 का उत्तर देखें।

प्रश्न-3. ''मीरां का काव्य मन की तीव्र वेदना है और भावों की करुणात्मक मार्मिकता का काव्य है।'' इस कथन को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

अथवा

गीति काव्य की दृष्टि से मीरां के काव्य की सभी विशेषताओं की सोदाहरण समीक्षा कीजिये।

उत्तर — बिन्दुओं में —

1. मीरां का सामान्य परिचय

2. भक्ति भावना एवं काव्य साधना।

3. काव्य में गीति-काव्यत्व —

(1) वेदना की तीव्र अनुभूति

(2) संगीतात्मकता

(3) भावों की कोमलता व गम्भीरता

(4) भाषागत मधुरता

(5) मुक्तक शैली

(6) निष्कर्ष

उत्तर के लिये निबन्धात्मक प्रश्न में भाव-पक्ष और कला-पक्ष की विवेचन को देखें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न-4. मीरांबाई के विरह वर्णन की विशेषताएँ बताइये।

उत्तर – बिन्दुओं में –

1. मीरां का सामान्य परिचय

2. भक्ति-भावना का रूप

3. प्रियतम रूप में कृष्ण भक्ति

4. श्रृंगार वर्णन

काव्यगत विशेषताओं के भाव-पक्ष की समीक्षा पर चिन्तन कर लिखें।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

इकाई- 9 : काव्यशास्त्र

काव्य शास्त्र का इतिहास और परम्परा

संरचना

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 काव्य की परिभाषा
9.3 काव्य के भेद
9.4 काव्य गुण
9.5 काव्य गुण का अर्थ
9.6 अलंकार
9.7 अलंकार के भेद
9.8 शब्दालंकार के भेद
9.9 अर्थालंकार के भेद
9.10 शब्द शक्ति
9.11 काव्यशास्त्र से संबंधित महत्त्वपूर्ण प्रश्न

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.0 प्रस्तावना

भारतीय काव्यशास्त्र ऐतिहासिक दृष्टि से अति प्राचीन है और इसके रूप की विशालता भी अति विस्तृत है। लिखित ग्रंथ के रूप में भरत मुनि की प्रसिद्ध रचना 'नाट्यशास्त्र' काव्यशास्त्रीय क्षेत्र का प्रथम ग्रंथ माना गया है। इसमें रचित नाटक के तत्त्वों के साथ-साथ काव्यांगों पर भी सूत्र लिखे गये हैं। भरत मुनि के पश्चात् आचार्य भामह ने 'काव्यालंकार' नामक ग्रंथ की रचना की, जिसमें सभी काव्यशास्त्रीय नियम-सिद्धान्त कारिकाओं में लिखे गये हैं। भामह के ग्रंथ पर उद्भट ने 'भामह विवरण' नामक भाष्य ग्रंथ रचा। इसके पश्चात् रुद्रट, वामन आदि आचार्यों ने इस परम्परा का अनुसरण कर काव्यालंकारों की रचना की।

पुरातन काल में समूचा साहित्यशास्त्र अलंकारशास्त्र के नाम से अभिहित होता था। उस समय प्रायः सभी ग्रंथकार अपने अपने ग्रंथों के नाम ''काव्यालंकार'' शब्द देकर ही रखते थे। जैसे भामह का 'काव्यालंकार', उद्भट का 'काव्यालंकार-सार-संग्रह', वामन का 'काव्यालंकार सूत्र' कुन्तक का 'काव्यालंकार', रुय्यक का 'अलंकार-सर्वस्व' आदि। यह भी कहा जा सकता है कि 'साहित्य' शब्द भी नया नहीं है। आज से लगभग 1500 वर्ष पूर्व भामह के 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' इस काव्य लक्षण ने ही साहित्य शब्द को 'काव्य-शास्त्र' के लिये प्रयोजित किया, ऐसा प्रतीत होता है।

भारतीय विचार शास्त्र प्राचीन काल से 'पद-वाक्य-प्रमाण शास्त्र' के रूप में चले आ रहे हैं। पदों के विचारशास्त्र को व्याकरण अथवा शब्द शास्त्र कहते हैं। वाक्य के विचारशास्त्र को मीमांसा कहा जाता है। वेद के दो भाग हैं – पूर्व भाग अर्थात् संहिता-ब्राह्मण और उत्तर भाग अर्थात् उपनिषद्। इन दोनों का विचार-शास्त्र क्रमशः 'पूर्वमीमांसा' और 'उत्तर मीमांसा' के नाम से अभिहित है। इसी प्रकार से प्रमाणों के विचार-शास्त्र को 'नया-शास्त्र' कहा जाता है।

इसी क्रम में आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श, आचार्य आनन्द वर्धन ने 'ध्वन्यालोक', आचार्य मम्मट ने 'काव्य प्रकाश' क्षेमेन्द्र ने 'सरस्वती कण्ठाभरण' व 'औचित्यविचारचर्चा', पंडितराज जगन्नाथ ने 'रसगंगाधर' एवं कविराज विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' नामक साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थ की रचना की। इस प्रकार भोजराज, जयदेव, धनिक मुकुल भट्ट, महिम भट्ट, कुन्तक, अभिनव गुप्त आदि ने काव्यशास्त्र के क्षेत्र में लक्षण-ग्रन्थों की रचना करके इस परम्परा का संवर्धन किया।

भारतीय काव्यशास्त्र का मूल स्वरूप संस्कृत के लक्षण ग्रंथों में दिखाई देता है। इसी से प्रभावित होकर हिन्दी में भी काव्यशास्त्रीय चिन्तन के रूप में नवीन लक्षण-ग्रंथों का निर्माण हुआ। हिन्दी के रीतिकाल में तो आचार्य परम्परा के निर्वाह हेतु केशवदास आदि अनेक कवियों ने लक्षण तथा लक्षण ग्रंथों की रचनाएँ कीं। इस प्रकार सभी काव्यांगों पर प्रकाश डालते हुए भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा आज भी चली आ रही है।

9.1 उद्देश्य

हम कह सकते हैं कि समीक्षा अथवा समालोचना के लिए जो सिद्धान्त बनाए जाते हैं अथवा काव्य या साहित्य के विविध रूपों को परिभाषित करने के लिये जो नियम बनाए जाते हैं, उन्हें ही साहित्य शास्त्र या काव्यशास्त्र के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार काव्यशास्त्र में साहित्य रचना के सिद्धान्त, नियम, भेद-उपभेद, रस, नीति, रीति, गुण, अलंकार, काव्य-प्रयोजन, काव्य-कारण आदि सभी पक्षों के नियम रहते हैं और उनके आधार पर काव्य-रचना तथा समीक्षा करने के निर्देश दिये जाते हैं।

9.2 काव्य की परिभाषा

विभिन्न विद्वानों ने काव्य को अपने-अपने मतों से अवगत कराने का प्रयास किया है –वैसे अभीष्ट अर्थ को संक्षेप में स्पष्ट करने वाली पदावली को काव्य कहा जा सकता है, क्योंकि वक्तव्य विषय को सुन्दर ढंग से प्रतिपादित करने वाला नपा-तुला, सार्थक एवं अन्वित पद समूहात्मक वाक्य काव्य कहलाता है।

आचार्य दण्डी ने काव्य का लक्षण बताते हुए कहा है कि ''इष्ट अर्थ से व्यवछिन्न पदावली को काव्य कहते हैं।''

आचार्य रगणी के अनुसार – ''अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द 'काव्य' कहलाता है।''

आचार्य विश्वनाथ ने 'रसयुक्त वाक्य' को ही काव्य माना है। आचार्य मम्मट के अनुसार – ''अदोष, गुणवान अलंकत शब्दार्थ वाला वाक्य ही 'काव्य' है।''

पंडितराज जगन्नाथ अपने काव्य ''रसगंगाधर'' में कहते हैं – ''रमणीयार्थप्रतिपादक: शब्द: काव्यम्''।

हिन्दी साहित्य में समालोचना सिद्धान्त के जनक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि ''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिये मनुष्य की वाणी, जो भी शब्द-विधान करती है, उसे काव्य कहते हैं।''

काव्य रसोयुक्त होता है। काव्य में रस इस भव्य शरीर के सुयश के समान है, शब्द इसके प्राण हैं, अर्थ इसका मन है, छन्द इसके चरण हैं और अलंकार इसका सौन्दर्य है। काव्यकारों की भावनाओं को काव्य के लिये समर्पित करते हुए –

''ऊँच-नीच और कर्म बस चलौ जात संसार।
रहत भव्य भगवन्त जस, नव्य काव्य सुखसार॥
रहत न घर बर धाम, धन सरवर तरुवर कूप।
जस शरीर जग में अमर, भव्य काव्य रस रूप॥
शब्द जीव तिहिं अर्थ मनु, रसमय सुजस शरीर।
चलत चहुँ जुग छन्द गति, अलंकार गम्भीर॥''

9.3 काव्य के भेद

काव्य कई प्रकार के हो सकते हैं। इसके भेद स्पष्ट करने के लिये कई दृष्टिकोण अपनाये जा सकते हैं, यथा – रचना की दृष्टि से, भाव की दृष्टि से, विषय दृष्टि से, प्रभाव की दृष्टि से, उद्देश्य की दृष्टि से और कोटि की दृष्टि से। संस्कृत साहित्य में कोटि की दृष्टि से काव्य को तीन भागों में बाँटा गया है – उत्तम काव्य, मध्यम काव्य और अधम काव्य। उत्तम काव्य में व्यंग्य अथवा ध्वनि का प्राधान्य रहता है, मध्यम काव्य में व्यंग्य गुणीभूत रहता है और अधम काव्य में शब्द का अर्थ या चमत्कार रहता है। रचना की दृष्टि से काव्य दो प्रकार का होता है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

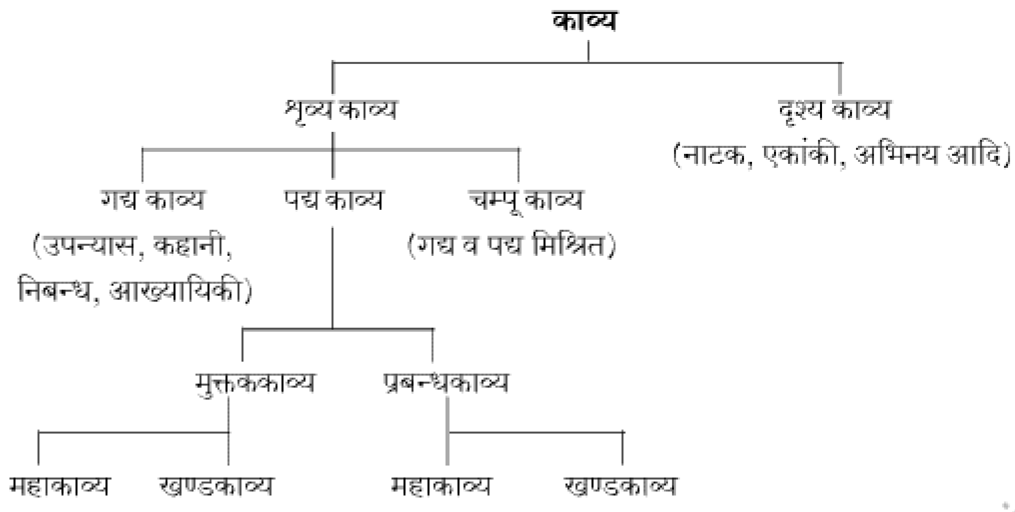

9.4 काव्य गुण

9.4.1 काव्यगुण का स्वरूप

काव्यगुणों पर काव्यशास्त्रीय दृष्टि से सर्वप्रथम विचार आचार्य भरत के 'नाट्यशास्त्र' में उपलब्ध होता है। दस काव्य दोषों के उपरान्त भरत ने उनके विपर्यय को 'काव्यगुण' कहा है। काव्यगुणों के संदर्भ में आचार्य भामह की उद्‌भावना सर्वथा मौलिक रही है। काव्यालंकार में माधुर्य, ओज और प्रसाद – इन तीनों का उल्लेख किया गया है। इनका आधार पदों के समास को माना गया है अत: उपर्युक्त तीन काव्यगुणों को भामह ने संगठनाश्रित माना है। आचार्य 'वामन' गुण को काव्य का उत्कृष्ट धर्म मानते हैं। गुण काव्य की आत्मा रीति में वैशिष्ट्य का आधान करने वाला धर्म है।

राजशेखर ने गम्भीरत्व, अवैस्वर्य अर्थात् स्वर भंग दोष का अभाव, तार एवं मन्द्र स्वर की निर्व्यूढि तथा संयुक्त वर्णों के लावण्य को गुण माना है।

अग्निपुराण में गुणों के संदर्भ में लिखा है कि – ''गुण को काव्य में कान्ति का आधान करने वाला 'धर्म' कहा गया है। जो गुण स्वत: काव्य की चारुता की वृद्धि करते हैं, वे परम उत्कृष्ट गुण हैं।

9.4.2 काव्य गुण का अर्थ

रस को काव्य की आत्मा माना गया है, उसी प्रधानभूत रस के नित्य धर्म को गुण कहा जाता है।

''रसस्यांगित्वमाप्तस्य धर्मा: शौर्यादयो यथा।''

साहित्य दर्पण के अनुसार जिस प्रकार हमारे शरीर में आत्मा प्रधान है, उसी प्रकार काव्य में रस प्रधान हैं। जिस प्रकार से आत्मा का धर्म शूरत्व और वीरत्व है, उसी प्रकार रस का धर्म गुण है। गुण रस के उत्कर्ष के प्रधान कारक होते हैं। रस के अभाव में काव्य नीरस माना जाता है अथवा यों कहें कि रस विहीन काव्य बिना खुशबू के पुष्प की भाँति होते हैं।

काव्य के गुणों की स्थिति नित्य या स्थिर मानी जाती है। इसलिये गुण और रस काव्यात्मा के स्थायी धर्म हैं। गुण काव्य के आत्मभूत रसादि रूप अर्थ में रहकर उसका उत्कर्ष संवर्धन करते हैं। अलंकार किसी भी काव्य के कटक-कुण्डल आदि आभूषण की तरह हैं। वे काव्य के शरीर शब्द और अर्थ को आभूषित करते हैं। व्यक्ति की अचल आत्मा में अचल भाव से रहकर उसका उत्कर्ष साधन करने वाले शौर्य आदि धर्म की तरह जो धर्म काव्य के अंगीरस में अविचल भाव से रहते हुए उसमें उत्कर्ष का आधान करते हैं उन्हीं को गुण कहा जाता है।

काव्य गुणों के विषय में आचार्यों में मतभेद है कि उनकी संख्या कितनी है ? आचार्य भामह ने काव्य के तीन गुण स्पष्ट किये हैं। आचार्य दण्डी ने गुणों की संख्या दस बताई है। बामनाचार्य ने दस शब्दगत और दस अर्थगत भेद बताए हैं। भोजराज ने चौबीस

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

गुण माने हैं। आचार्य मम्मट के मत को प्रायः सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है कि काव्य गुण तीन हैं – 1. माधुर्य गुण, 2. ओज गुण और 3. प्रसाद गुण।

1. माधुर्य गुण – आचार्य मम्मट के अनुसार चित्त की द्रवित अवस्था को माधुर्य कहा जाता है। जब शृंगारादि रसों की अनुभूति से चित्त की आर्द्रता का संचार होता है तो उसे माधुर्य गुण कहा जाता है। यह गुण शृंगार, करुण, विप्रलम्भ एवं शान्त रसों के उत्तरोत्तर प्रकर्ष अवस्था में रहता है।

जिस प्रकार धर्म से ज्ञान और दर्शन अनावृत्त होते हैं, सहज आनन्द स्फुरित होता है और अपराजित वीर्य उपलब्ध होता है। उसी प्रकार माधुर्य गुण शान्त रस में प्रकर्षता प्राप्त करता है।

जब माधुर्य का स्रोत प्रस्फुटित होता है तो प्राणी मात्र के प्रति आत्मौपम्य का भाव जाग्रत हो जाता है।

काव्य में माधुर्य गुण – जहाँ पर ट, ठ, ड, ढ को छोड़कर तथा रेफ और लम्बे समासों को त्याग कर मधुर अभिप्राय वाली रचना की गई हो, वहाँ रचना में माधुर्य गुण होता है। अर्थात् जिस रचना से अन्तःकरण आनन्द से द्रवित हो जाता हो, उसमें माधुर्य गुण होता है। इस गुण का प्रयोग संयोग शृंगार रस से करुण में, करुण से विप्रलम्भ में तथा विप्रलम्भ शृंगार से शान्त रस में अधिकाधिक होता है –

मंद-मंद चढि चैल-निसि चँद चारु।
मंद-मंद चाँन्दनी पसरत लतन तें॥
मंद-मंद जमुना तरंगिनी हिलौरें लेते।
मंद-मंद मोद मंजु-मंजुलिका-सुमन ते॥

2. ओज गुण – ओज का अर्थ है – बल, पौरुष, प्रताप, वीर्य, शक्ति, सामर्थ्य, आभा, प्रकाश, चमक, तेज तथा दीप्ति। जिस काव्य श्रवण से चित्त का विस्तार होता हो तथा मन में तेज की वृद्धि होती हो उसे ओज गुण कहते हैं। आचार्य मम्मट ने बताया कि "जो गुण मन में उत्साह, वीरता आदि को जागृत करे, उस दीप्ति प्रधान गुण को ओज गुण कहते हैं। इसका उत्तरोत्तर विकास – वीर, वीभत्स तथा रौद्र रसों में देखा जाता है। इन रसों के आस्वादन में दीप्ति की उत्पत्ति होती है।"

प्रस्तुत विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि ओज गुण की दो विशेषताएँ हैं – बाह्य और अभ्यन्तर। बाह्य में शब्दों के बाहरी रूप – कठोर शब्दों, जैसे – द्वित्व वर्ण, संयुक्त वर्ण, 'र्क', 'र्च', एवं रकार युक्त 'द्र' आदि वर्णों, ट, ठ, ड, ढ, ण से बने शब्दों तथा लम्बे-लम्बे समासों द्वारा काव्य की रचना होती है। तथा अभ्यन्तरिक रूप में उत्साह, वीर्यत्व, सामर्थ्य आदि गुणों का विकास, जिससे चित्त में विस्तार होता हो।

इस गुण का प्रयोग वीर, रौद्र, भयानक तथा वीभत्स रस में किया जाता है –

"दिल्लिय दलन गंजाई के, सिव सरजा निरसंक।
लूटि लियो सूरति सहर, बंक बक्करि अति डंक।
बंक बक्करि अतिडंकडंक्करि अस, सक्क करि खल।
सोचच्चकित भरोचच्चलित, विमोचच्चख चल।"

3. प्रसाद गुण – प्रसाद का अर्थ है प्रसन्नता या विकसित होना। श्रवण मात्र से ही जो रचना चित्त में व्याप्त हो जाये उसे प्रसाद गुण कहते हैं। प्रसाद सभी रसों में परिव्याप्त रहने वाला गुण माना गया है। आचार्य मम्मट ने इस संदर्भ में कहा है कि "सूखे ईंधन में अग्नि के सदृश अथवा स्वच्छ वस्त्रों में स्वच्छ जल के समान जो सहसा चित्त में व्याप्त हो जाये, वह सभी रसों व सभी रचनाओं में रहने वाला प्रसाद गुण है। इसमें ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं, जिनके श्रवण मात्र से ही अर्थ की प्रतीति होती है।

शृंगार, करुण और शांत रसों के आस्वादन से चित्त का विस्तार होता है तथा हास्य, अद्‌भुत एवं भयानक रस की अनुभूति से चित्त का विकास होता है। प्रसाद गुण तीन दशाओं में प्रकर्ष लाता है अतः वह सभी रसों में स्थित रहने वाला होता है। इसे गुणों का राजा या शिरोमणी कहा गया है –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

उठो हिन्दुओ अपने बल को संभालो।
दशा हिन्दी भाषा की कुछ देखो भालो।
जमाने के धक्कों से इसे बचा लो।
सपूती दिखा दो, झपट कर उठा लो।
सहित प्रेम छाती से, उसको लगा लो।
हृदय के सिंहासन पर इस को बिठा लो।

9.5 अलंकार

'अलंकार' दो शब्दों से मिलकर बना है – अलं+कार। जिसका शाब्दिक अर्थ है – शोभा+बढ़ाने वाला। अर्थात् शोभा बढ़ाने वाले तत्त्व को अलंकार कहा जाता है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति विशेष के सौन्दर्य की वृद्धि के लिये सुन्दर वस्त्रों, आभूषणों तथा अन्य सामग्री की आवश्यकता होती है वैसे ही काव्य में रोचकता, कर्णप्रियता एवं चमत्कार उत्पन्न करने के लिये अलंकार योजना की आवश्यकता होती है। अलंकार के संदर्भ में अनेक विद्वानों ने अलग-अलग परिभाषाएँ देकर उसके अर्थ और महत्त्व को स्पष्ट करने का प्रयास किया है जिनमें संस्कृताचार्य विश्वनाथ ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि ''जिसके द्वारा अलंकृत किया जाये, वही अलंकार है, जैसे **''सिय मुख ससि भये नयन चकोरा''** पंक्ति में सीताजी के मुख सौन्दर्य को अलंकृत शब्दों में अभिव्यक्ति दी गई है। इस प्रकार अलंकार काव्य की शोभा बढ़ाने वाला धर्म है, किन्तु काव्य में इसकी स्थिति स्थिर अथवा आवश्यक नहीं मानी है, क्योंकि जब व्यंग्यार्थ या ध्वनि अथवा रस की प्रधानता रहती है, तब यह अलंकार विधान आवश्यक नहीं माना जाता है।

यद्यपि संस्कृताचार्यों से लेकर हिन्दी आचार्यों तक सभी ने अलंकारों को काव्य का शोभावर्धक धर्म कहा है, किंतु इन विद्वानों की परिभाषाएँ आपस में मेल नहीं खाती हैं। आचार्य दण्डी ने अलंकार की परिभाषा देते हुए कहा है कि – **''काव्यशोभा करान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते''** अर्थात् काव्य के शोभाकारक सभी धर्म अलंकार कहे जाते हैं। देखा जाये तो यह अत्यधिक स्थूल है, इसमें 'धर्म' पद की व्याख्या नहीं की गई है। हिन्दी के रीतिवादी आचार्य केशव ने कहा है कि **''भूषण बिन न विराजई कविता, बनिता, मित्त''।** इस लक्षण में भी अलंकारवादी प्रवृत्ति का प्राधान्य है। वस्तुतः, अलंकार काव्य के बाह्य शब्द-शरीर और अर्थ की शोभा बढ़ाने वाले हैं और ये निहित अस्थिर धर्म है। रस काव्य की आत्मा है और अलंकार उसके उपकारक माने जाते हैं अतः शब्दगत चमत्कार या अर्थगत चमत्कार द्वारा जो काव्य का उत्कर्ष बढ़ाकर शोभादायक होते हैं, उन्हें ही 'अलंकार' कहा जाता है।

आचार्य भामह के समय में अलंकारवादी आचार्यों ने अलंकारों को काव्य में विशेष महत्त्व दिया है। उन्होंने कहा कि जिस प्रकार रमणी का शरीर अलंकारों के बिना शोभित नहीं है, उसी प्रकार काव्य भी शब्द सौन्दर्य और अर्थ सौन्दर्य के बिना रूखा है। 'अग्निपुराण' में अलंकारों से विहीन वाणी को विधवा के समान श्रीविहीन माना है। **''अर्थालंकार रहिता विधवैव सरस्वती।''** हम यह भी कह सकते हैं कि ''रस के अंगभूत शब्दार्थ के आश्रित रहने वाले सौन्दर्य तत्त्व ही 'अलंकार' कहलाते हैं।''

विशेष बात यह है कि अलंकार काव्य के केवल सौन्दर्यवर्धक बाह्य धर्म हैं। इसके अनिवार्य अंग नहीं। अतः यह कहा जा सकता है कि काव्य में जहाँ 'रस' और 'भाव' की मार्मिक व्यंजना हो, वहाँ पर अलंकारों के प्रयोग का कारण अनपेक्षित है। जो नायिका स्वयं सुन्दरांगा हो उसके लिये सौन्दर्य प्रसाधनों की आवश्यकता नहीं होती है। इसी प्रकार जो काव्य सरल और भावपूर्ण है, उसके लिये भी अलंकारों की आवश्यकता नहीं रहती है। किन्तु सहज सुन्दर नारी यदि एक दो अलंकार धारण कर ले तो वे उसकी सौन्दर्य वृद्धि ही करेंगे। यह सत्य है कि जो अलंकार स्वाभाविक रूप से न आकर बलात् लाये जाते हैं, वे काव्य में चमत्कार उत्पन्न न करके उसे एक भद्दापन रूप ही प्रदान करेंगे।

मानव एक सौन्दर्योपासक प्राणी है। वह अपनी सभी कृतियों को मनोरम स्वरूप देना चाहता है, इसी प्रयोजन से अलंकार की विशेष योजनाओं को काव्य में समाहित करता है। कृत्रिम साज-सज्जा तथा बाह्य परिधानों की सहायता से जिस प्रकार कामिनी के नैसर्गिक सौन्दर्य की वृद्धि होती है, उसी प्रकार निःसंदेह अलंकारों का प्रयोग यथास्थान स्वतः समुचित रूप में किया गया हो तो वे काव्य-सौन्दर्य की श्रीवृद्धि ही करेंगे।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

काव्य के लिये अलंकार हैं न कि अलंकार के लिये काव्य। **''उस सोने को जारिये, जासों टूटे कान।''** कहावत के अनुसार वे अलंकार किस काम के जो अर्थ प्रतीति में बाधक हों और भाव सौन्दर्य को नष्ट करते हों अत: अलंकारों का प्रयोग काव्य में निहित भावों के अनुकूल होना चाहिये न कि अलंकारों के अनुकूल भावानुसार।

9.6 अलंकार के भेद

अलंकार का प्राचीनतम और मान्यतम विभाजन शब्द और अर्थ के आधार पर किया है। इस आधार पर अलंकारों को तीन भागों में विभाजित किया गया है – 1. शब्दालंकार, 2. अर्थालंकार, 3. शब्दार्थालंकार अथवा उभयालंकार। यह त्रिधा-विभाजन ''शब्दपरिवृत्तिसहत्व'' के आधार पर किया गया है।

9.6.1 शब्दालंकार – जब अलंकार शब्द विशेष पर आश्रित होता है और उस शब्द के परिवर्तन को वह सहन करने में असमर्थ रहता है, अर्थात् उस शब्द विशेष के स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द स्थापित कर देने से अलंकार का अस्तित्व ही समास हो जाये वहाँ शब्दालंकार होता है। अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि जिस काव्य में शब्दों की विशेष योजनाओं के द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया जाये वही योजनाएँ 'शब्दालंकार' हैं।

9.6.2 अर्थालंकार – जो अलंकार शब्द विशेष पर आश्रित न होकर अर्थ विशेष पर आश्रित होते हैं और शब्दापरिवृत्ति को सहने में पूर्णतया समर्थ होते हैं अर्थात् यदि वहाँ पर किसी भी शब्द के स्थान पर उसका अन्य पर्याय रख दिया जाये तो अलंकार का अस्तित्व समास न होता हो, वहाँ 'अर्थालंकार' होता है। या हम यह भी कह सकते हैं कि जिस काव्य में अर्थों की विशेष योजना के द्वारा चमत्कार उत्पन्न किया जाये वहाँ अर्थालंकार होते हैं। यह अलंकार किसी शब्द विशेष पर नहीं अपितु अर्थ विशेष पर निर्भर करता है।

9.6.3 उभयालंकार – उभय शब्द न्यूनतम दो का सूचक होता है, ये दोनों अलंकार शब्दालंकार भी हो सकते हैं, दोनों अर्थालंकार भी और दोनों मिलकर भी हो सकते हैं। जब दो या दो से अधिक अलंकार एक स्थान पर मिले हुए हों, तो उन्हें 'उभयालंकार' कहते हैं। यह मेल भी दो प्रकार का होता है – नीर-क्षीर के समान और तिल-तन्दुल के समान। जब अर्थालंकार 'नीर-क्षीर' के समान एक दूसरे के अंश बन जायें अर्थात् एक अलंकार अंगी (प्रधान) हो जाये और दूसरा अंग (गौण) हो जाये तब उसे संकर या मिश्रित अथवा उभयालंकार कहा जाता है।

जब दोनों अलंकार तिल और तंदुल के समान परस्पर निरपेक्ष भाव से अवस्थित हों, अर्थात् जिस प्रकार तिल और चावल के मिश्रण को देखने मात्र से उसकी स्वतंत्र अवस्थिति और सापेक्षित न्यूनाधिक्य स्पष्ट हो जाता है, उसी प्रकार जहाँ पर सहृदय को विभिन्न अलंकारों का स्पष्ट बोध हो जाये और उनकी परस्पर स्वतंत्रता भी ज्ञात हो जाये संसृष्टि नामक उभयालंकार हो जाता है।

9.7 शब्दालंकार के भेद

9.7.1 अनुप्रास अलंकार – ''व्यंजन की आवृत्ति ही अनुप्रास है।'' एक या अनेक व्यंजनों की आवृत्ति, उनका रस के अनुकूल पास-पास और बार-बार निबन्धन या न्यास ही 'अनुप्रास' कहलाता है। यदि किसी काव्य में व्यंजनावृत्ति न हो तो वह चमत्कारिक हो ही नहीं सकता है अत: अलंकार के लिये व्यंजनों की आवृत्ति आवश्यक है जिसे हम अनुप्रास कहते हैं। इस प्रकार अनुप्रास के तीन रूप हो सकते हैं – 1. एक व्यंजन की अनेक बार आवृत्ति, 2. अनेक व्यंजनों की एक बार आवृत्ति तथा 3. अनेक व्यंजनों की अनेक बार आवृत्ति।

''अनुप्रास'' शब्द – अनु+प्र+अस्+धञ् के योग से निष्पन्न हुआ है, जिसका शाब्दिक अर्थ है – समान ध्वनियों या वर्णों की आवृत्ति।

वास्तव में इस अलंकार में वर्णनीय रस के अनुकूल व्यंजनों के क्रमिक विन्यास का ही विधान है। स्वरों की विषमता होने पर भी व्यंजनों की समता भी अनुप्रास ही कही जायेगी। अनुप्रास अलंकार के पाँच भेद भारतीय काव्य शास्त्र में मान्य हुए हैं –

(क) वृत्यनुप्रास – जहाँ पर एक या अनेक वर्णों की बार-बार आवृत्ति हो, वहाँ 'वृत्यनुप्रास अलंकार' होता है, जैसे –

(अ) **''तरनि-तनुजा-तट तमाल तरुवर बहु छाये।**
झुके फूल सों जल परसन हित मनहु सुहाये॥''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

(ब) "**रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम।**"

प्रस्तुत उदाहरणों में 'त' तथा 'र' वर्ण की क्रमश: पांच और चार बार आवृत्ति हुई है, अत: यहाँ पर 'वृत्यनुप्रास अलंकार' है।

(ख) छेकानुप्रास – जहाँ पर दो या दो से अधिक व्यंजनों की बिना व्यवधान के बार-बार आवृत्ति हो, जैसे – "**कानन कठिन भयंकर भारी**" प्रस्तुत उदाहरण में 'क' तथा 'भ' दो-दो बार आवृत्त हैं तथा 'कानन कठिन' में तथा 'भयंकर भारी' में छेकानुप्रास है।

(ग) श्रुत्यनुप्रास – जहाँ पर एक ही स्थान से उच्चरित व्यंजनों की आवृत्ति हो वहाँ 'श्रुत्यनुप्रास' कहलाता है, जैसे– "**दिनान्त था, थे दिननाथ डूबते।**" प्रस्तुत उदाहरण में अनेक वर्णों का एक साथ प्रयोग हुआ है, अत: श्रुत्यनुप्रास है।

(घ) अन्त्यानुप्रास – छन्द के चरणान्त में स्वर-व्यंजन की समानता को अन्त्यानुप्रास कहा जाता है, जैसे – "**काली काली अलकों में, आलस-मद-मत पलकों में।**" प्रस्तुत उदाहरण में "अलकों में – पलकों में" तुक है, यही अन्त्यानुप्रास है।

(च) लाटानुप्रास – शब्द और अर्थ की अभिन्नता में भी तात्पर्य मात्र के भेद को 'लाटानुप्रास' कहते हैं। वस्तुत: इस अलंकार में शब्द व अर्थ दोनों ही पुनरुक्ति होती है, किन्तु अन्वय करने पर तात्पर्य बदल जाता है, जैसे –

"पिता बड़ा, यदि पुत्र लोक-यश का अधिकारी।
पिता बड़ा यदि, पुत्र लोक-यश का अधिकारी।"

प्रस्तुत उदाहरण में अन्वय करने पर दोनों वाक्यों के परस्पर विरुद्ध अर्थ निकलते हैं।

9.7.2 यमक अलंकार – 'यमक' शब्द का अर्थ है – यम या जुड़वा उत्पन्न दो जीवों की प्रतिकृति या जोड़ा; इसलिये दो या बहुत से अक्षरों की अन्तर्विहीन या अन्तर पर आवृत्ति शोभाजनक होने से 'यमक अलंकार' कहलायेगी।

जहाँ पर एक ही शब्द की बार-बार आवृत्ति हो और प्रत्येक बार उसका भिन्न अर्थ प्राप्त हो वह यमक अलंकार है। शब्द एक स्थान पर सार्थक और दूसरे स्थान पर निरर्थक अथवा दोनों स्थानों पर सार्थक या निरर्थक भी हो सकते हैं। यमकअलंकार छन्द के एक चरण में या उस चरण के एक भाग में होता है। सभी चरणों में रहने वाला यमक समस्त पादगत यमक कहलायेगा। एक चरण में रहने वाला यमक एक देशीय कहलायेगा।

"भिन्न-भिन्न अर्थों को प्रकट करने वाले समान शब्दों की क्रमश: आवृत्ति ही यमक अलंकार है।" जैसे –

(अ) "सारंग ले सारंग चली, कर सारंग की ओट।"

"सारंग" शब्द की तीन बार आवृत्ति हुई है जिसका अर्थ प्रत्येक के साथ क्रमश: स्त्री, दीपक, आँचल है।

(ब) "कनक-कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय।"

"कनक" शब्द की दो बार आवृत्ति हुई है जिसका अर्थ प्रत्येक के साथ क्रमश: 'सोना' और 'धतूरा' है।

(स) **"उरबसी मेरे ह्रदय की, उरबसी तुम पर निछावर।**
ज्वार जीवन में उठा दो, रूप दर्शन मुस्करा कर॥"

"उरबसी" शब्द की दो बार आवृत्ति हुई है जिसका अर्थ क्रमश: ह्रदय में बसी हुई और उर्वशी नामक अप्सरा है। अत: यहाँ पर यमक अलंकार प्रस्तुत हुआ है।

9.7.3 श्लेष अलंकार – "जहाँ पर एक शब्द के विभिन्न संदर्भों में अनेक अर्थ निकलते हों वहाँ 'श्लेष अलंकार' होता है।" अथवा जहाँ एक ही शब्द में अनेक अर्थ छुपे हुए हों या निहित हों उसे 'श्लेष अलंकार' कहते हैं।" जैसे –

(अ) **"रहिमन पानी राखिये, बिन पानी सब सून।**
पानी गये न ऊबरे मोती मानुष चून॥"

प्रस्तुत उदाहरण में 'पानी' शब्द का तो एक ही बार प्रयोग हुआ है, किन्तु इस शब्द के तीन अर्थ अलग-अलग संदर्भ में भिन्न-भिन्न हैं, यथा – पानी का पुनरागमन नहीं होता है –

मोती का पानी=चमक। मानुष का पानी=इज्जत और चून का पानी=जल। अत: यहाँ पर श्लेष अलंकार है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(ब) **''बलिहारी नृप कूप की, गुण बिन बूँद न देय।''**

प्रस्तुत उदाहरण में गुण शब्द श्लिष्ट है, जिसके दो अर्थ निकलते हैं – गुण (नृप पक्ष में) रस्सी (कूप पक्ष में) अतः यहाँ श्लेष अलंकार हैं।

अर्थ श्लेष में शब्द के कई अर्थ नहीं होते हैं। शब्द का अर्थ एक ही होता है, किन्तु वह विभिन्न पक्षों में आवश्यकतानुसार बदल जाता है, जैसे –

''रंचहि सो ऊँचे चढै, रंचहि सो घटि जाहिं।
तुला-कोटि खल दुहुन की सदृश रीति जग माहिं॥''

प्रस्तुत उदाहरण में तराजू की डण्डी और दुष्ट की समानता की गई है। केवल प्रकरण से यहाँ 'ऊँचे चढे' का अर्थ तराजू की डण्डी के पक्ष में ऊँचा होना और दुष्ट के पक्ष में घमण्ड करना है। इसी प्रकार 'घटिजाहि' का अर्थ तराजू के लिये नीचा होना और दुष्ट के लिये विनाश की ओर या अवनति की ओर या पतन की ओर जाना है। यह अर्थ 'श्लेष' है।

9.7.4 स्वाभावोक्ति अलंकार – किसी दृश्य, वस्तु अथवा बाल चेष्टाओं का स्वाभाविक वर्णन होने पर 'स्वाभावोक्ति' अलंकार होता है, जैसे –

''आँगन में लाल सलोना है।
बिखरी अलकें
मुख पे लटकें
अवलोकति में एक टोना है।
ऊँची कर के उँगली छोटी,
कहता माँ दो ओटी ओटी
लग जाय न दीठि कहीं शिशु को,
दिया मस्तक स्याम डिठौना है।''

प्रस्तुत उदाहरण में शिशु की चेष्टाओं का स्वाभाविक चित्रण किया गया है अतः यहाँ स्वाभावोक्ति अलंकार है।

9.7.5 वक्रोक्ति अलंकार – यह दो शब्दों से मिलकर बना हुआ है – वक्र+उक्ति अर्थात् टेढा-मेढा कथन। जब वक्ता के द्वारा कहे गये भावपूर्ण वाक्यों अथवा कथन का श्रोता के द्वारा जान-बूझ कर टेढा अर्थ ग्रहण किया जाये तथा तदनुरूप ही प्रत्योत्तर दिया या समझाया जाये वहाँ पर वक्रोक्ति अलंकार कहलाता है, जैसे –

राधा – ''को तुम हौ, इत आये कहाँ ?''
कृष्ण – 'हरि' मैं राधे।
राधा – ''बन्दर को कहा काम यहाँ।''
कृष्ण – घनश्याम कहावत हैं हम तौ।
राधा – 'बादल' हौ तो कितहुँ बरसौ।
कृष्ण – ''चित्त चोर कहावत हैं हम तौ।''
राधा – चोर हौ तो वहाँ जाओ जहाँ धन है सरसों।

प्रस्तुत उदाहरण राधा-कृष्ण संवाद के अन्तर्गत राधा के द्वारा कृष्ण के शब्दों का जान-बूझकर टेढा अर्थ लगाया गया है, यथा – हरि=बन्दर, घनश्याम=काले बादल, चित्त चोर=मन को चुराने वाले। अतः यहाँ पर वक्रोक्ति अलंकार है।

9.8 अर्थालंकार के भेद

9.8.1 उपमा अलंकार – वर्णनीय वस्तु के गुणों का उत्कर्ष दिखाने के लिये किसी प्रसिद्ध वस्तु के साधर्म्य (समान गुण) योजनानुसार समानता होने पर उपमा अलंकार होता है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जिस वस्तु से समानता दी जाये, वह अपने गुण के लिये लोक प्रसिद्ध हो। ऐसा न होने पर उपमा की जगह पर केवल उपमाभास ही होगा। यथा – ''रमणी के पैर सारस के समान हैं'' इसमें उपमा नहीं है, केवल आभास है क्योंकि सारस के पैर सौन्दर्य के प्रतीक नहीं बल्कि सौन्दर्यहीनता के प्रतीक हैं।

''मनोहारी माधुर्य ही उपमा है।'' अर्थात् जहाँ पर कुछ सामान्य (अभिन्न) हो और कुछ विशेष (भिन्न) हो, वह सादृश्य का विषय होता है – 'गौ-गौ के समान है'। उसमें उपमा नहीं है। उपमा एकांश में होती है, सर्वांश में नहीं। मुख और चन्द्रमा परस्पर भिन्न वस्तुएँ हैं, किन्तु एकांश (मनोज्ञता) में समानता है, इसलिये इसकी समानता का विषय उपमा है।

शब्दालंकारों में श्लेष और अर्थालंकारों में उपमा। ये दोनों ऐसे अलंकार हैं जो स्वयं अलंकार होकर अन्य अलंकारों को भी चमत्कृत करते हैं। उपमा की श्रेष्ठता और महत्त्व के विषय में प्रायः सभी आचार्य एक मत हैं – राजशेखर का मत है कि उपमा सम्पूर्ण अलंकारों में शिरोरत्न के समान काव्य की सम्पदा है और कवि वंश की माता के समान है –

''अलंकार शिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसम्पदाम्।
उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम॥''

उपमा के विवेचन में भरतमुनि ने सादृश्य शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने उपमा की परिभाषा में कहा है कि ''काव्यबँध में सादृश्य के आधार पर गुण-आकृति के आश्रय से जो तुलना की जाती है, वही उपमा है।''

आचार्य भामह और वामन के अनुसार – ''उपमान और उपमेय की गुणलेश से की गई समता को उपमा कहा जाता है।''

आचार्य मम्मट के अनुसार – ''साधर्म्यमुपमा भेदे'' अर्थात् उपमेय और उपमान में भेद होने पर उनके साधर्म्य का वर्णन ही 'उपमा' कहलाता है।

अर्थालंकार में उपमा अलंकार प्रमुख है। क्योंकि यह अनेक अलंकारों का आधार है। उपमेयोपमा, अनन्वय, प्रतीप, रूपक, संदेह, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान, स्मरण, अपह्नुति, सहोक्ति, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, निदर्शना, व्यतिरेक, दृष्टान्त, दीपक, तुल्ययोगिता, प्रतिवस्तुपमा आदि सभी अलंकार उपमा पर आधारित हैं –

''उपमेय, उपमान, साधारण गुण-धर्म और वाचक शब्द – इन चारों अंगों का उपादान या शब्दशः कथन होने पर ही वह पूर्णोपमा है।'' प्रस्तुत परिभाषा से उपमा के चार तत्त्वों की पुष्टि होती है।

उपमा अलंकार के तत्त्व या अंग –

1. उपमेय – वह प्रस्तुत (सादृश्य) वस्तु, जिसका वर्णन किया जा रहा हो।

2. उपमान – वह अप्रस्तुत (अदृश्य) वस्तु जिससे उपमेय की तुलना की जा रही हो।

3. साधारण गुण-धर्म – उपमेय (प्रस्तुत वस्तु) की उपमान (अप्रस्तुत वस्तु) के साथ जिन सामान्य (समान) गुण विशेष से तुलना की जा रही हो उसे साधारण गुण-धर्म कहते हैं, अर्थात् समानता दर्शाने वाले समान गुण ही साधारण गुण-धर्म हैं।

4. वाचक-शब्द – उपमेय और उपमान के बीच समानता बताने वाले सादृश्यमूलक शब्दों को वाचक शब्द कहते हैं। यथा – 'सा', 'से', 'सी', 'सम', 'सारिस', 'समान', 'सदृश्य' आदि।

उपमा अलंकार के भेद – वैसे तो इस अलंकार के अनेक भेद माने गये हैं, किन्तु चार भेद ही मान्य हैं – 1. पूर्णोपमा, 2. लुप्तोपमा, 3. रसालोपमा और 4. मालोपमा।

1. पूर्णोपमा – जहाँ पर उपमेय, उपमान, गुण-धर्म और वाचक शब्द – चारों अंगों का क्रमशः उल्लेख होता हो वहाँ पर पूर्णोपमा अलंकार है। इसके भी दो भेद होते हैं – 1. श्रोती और 2. आर्थी। उपमा वाचक शब्दों को दो भागों में विभाजित किया गया है – इव, वा आदि तथा तुल्य, सदृश, सम आदि। इनमें – इव, वा आदि शब्द उपमान के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं और कान में पड़ते ही साधारण धर्म के सम्बन्ध रूप सादृश् का बोध करा देते हैं। इन्हें श्रोती उपमा कहते हैं। इसी तुल्य, सदृश, सम आदि उपमा-वाचक कभी उपमेय के साथ अन्वित होते हैं, कभी उपमान के साथ और कभी दोनों के साथ ही। अतः उनके प्रयोग में आर्थी उपमा होता है। इन दोनों के पुनः तीन-तीन भेद माने गये हैं – वाक्यगत, समासगत तथा तद्धितगत। इस प्रकार पूर्णोपमा में छः भेद होते हैं –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

पूर्णोपमा

- श्रौती
  - वाक्यगा
  - समासगा
  - तद्धितगा
- आर्थी
  - वाक्यगा
  - समासगा
  - तद्धितगा

इस प्रकार पूर्णोपमा में चारों तत्त्वों का क्रमशः समावेश होता है –

''दो दिवस रह कर कुटी में आग सी सुलगा गये हैं।
दीप सा उर जल रहा है, कह दो तुम ही कैसे बुझाऊँ॥''

अतः यहाँ उर-उपमेय, दीप-उपमान, सा=वाचक शब्द तथा जलरहा=समान धर्म होने से पूर्णोपमा है।

2. लुप्तोपमा अलंकार – जहाँ पर उपमा के चारों अंगों – उपमेय, उपमान, गुण-धर्म और वाचक शब्द में से एक, दो, तीन का शब्दशः कथन न किया जाये अर्थात् एक या अधिक अंश लुप्त हो वहाँ पर लुप्तोपमा अलंकार है। लुप्तोपमा के भेदों को हम इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं (आचार्य मम्मट के अनुसार) –

लुप्तोपमा

- धर्म लुप्तोपमा
- वाचक लुप्तोपमा
- उपमान लुप्तोपमा
- धर्मवाचक लुप्तोपमा
- धर्मोपमान लुप्तोपमा
- वाचकोपमेय लुप्तोपमा
- वाचकोपमान लुप्तोपमा

नोट – हमारे पाठ्यक्रम में लुप्तोपमा के निम्नलिखित भेद ही पूछे जायेंगे –

1. धर्म लुप्तोपमा – प्रस्तुत की अप्रस्तुत के समता में साधारण धर्म का कथन न होने के कारण धर्मलुप्तोपमा अलंकार है, यथा –

''कनक लता-सी प्राण प्रिय, नैननि को सुख देत।''

प्रस्तुत उदाहरण में प्राण-प्रिय=उपमेय, कनक-लता=उपमान, सी=उपमावाचक है। वर्ण आदि साधारण-धर्म न होने से यहाँ 'धर्मलुप्तोपमा' है।

2. वाचक लुप्तोपमा – उपमा-वाचक शब्द का कथन न होने पर 'वाचक लुप्तोपमा' होता है, यथा –

''कमल कोमल-मुख तुम्हारा, है दृगों में बस रहा।''

प्रस्तुत उदाहरण में मुख=उपमेय, कमल=उपमान, कोमल=साधारण गुण धर्म। सदृश आदि शब्द के न होने से वाचक लुप्तोपमा है।

3. उपमान लुप्तोपमा – उपमान का अभाव होने पर उपमान लुप्तोपमा होती है, यथा –

''जिहि तुलना तुहि दीजिये, सुवरन सौरभ माँहि।
कुसुम तिलक चम्पक अहो ! हौ महिं जानौ ताहि॥''

प्रस्तुत उदाहरण में उपमान का कथन न होने से उपमान लुप्तोपमा है।

4. उपमेय लुप्तोपमा – प्रायः उपमेय लुप्तोपमा नहीं होती है, क्योंकि उपमेय का ही उत्कर्ष दिखाने के लिये उपमा की ही सार्थकता है। यह अवश्य है कि कहीं-कहीं उपमेय के न होने का आभास हो जाता है, जैसे –

''दो दिवस रह कर कुटी में, आग सी सुलगा गये।''

प्रस्तुत उदाहरण में 'प्रणयस्मृति' की समानता 'आग' से की है, जिसका कथन नहीं है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

9.8.2 रूपक अलंकार

जहाँ पर उपमेय (प्रस्तुत) में उपमान (अप्रस्तुत) का अभेद रूप में आरोप हो, वहाँ पर रूपक अलंकार है। अर्थात् जहाँ पर उपमेय को उपमान न मिले और उपमेय को ही उपमान का रूप दे दिया जाये वहाँ पर 'रूपक' अलंकार होता है, यथा –

''ऊरध स्वास समीर तेज अति, सुख अनेक द्रुम डारे।
बदन सदन में बसे बचन खग, ऋतु पावस के मारे।''

रूपक में एक वस्तु पर दूसरी वस्तु का आरोप किया जाता है या यों कहें कि एक वस्तु को दूसरी वस्तु बना दिया जाता है। वस्तुतः उपमेय पर उपमान का आरोप किया जाता है, यथा –

''वंदौ चरण-कमल हरिराई'' में चरणों को कमल का रूप अर्थात् चरण (उपमेय) पर कमल (उपमान) का आरोप है, इसी प्रकार – कमलनयन, चन्द्रमुखी, सूर्यमुखी, करकमल आदि।

रूपक के प्रमुख भेद – रूपक के मुख्य रूप से दो भेद हैं – 1. ताद्रूप्य रूपक, 2. अभेद रूपक।

इसी प्रकार अभेद रूप के भी तीन प्रकार होते हैं। उनको हम इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं –

रूपक
- ताद्रूप्य रूपक
- अभेद रूपक
  - सांग या सावयव रूपक
  - परम्परित रूपक
  - निरंग रूपक

1. ताद्रूप्य रूपक – उपमेय को उपमान का दूसरा रूप कहा जाने पर, जैसे –

''हास चन्द्रिका झरत मधु, हृदय ताप हरिलेत।
प्राण-प्रिया मुख अपर शशि, निसि-वासर सुख देत।''

प्रस्तुत उदाहरण में ''अपरशशि'' कहकर ''प्राण-प्रिया के मुख'' को शशि उपमान का दूसरा रूप कहा जाने के कारण 'ताद्रूप्य रूपक' है।

2. अभेद रूपक – उपमेय पर उपमान का अभेद आरोप होने से अभेद रूपक होता है। इस का तात्पर्य – एकता है। इसमें भेद होने पर भी अभेद होता है, यथा – चन्द्रमुखी, मृगनयनी चन्द्रमा और मुख, मृगनयन और नायिकानयन अलग-अलग हैं किंतु एकता है अतः अभेद रूपक है।

(अ) साँग या सावयव रूपक – उपमेय पर उपमान का अंगों सहित आरोप होने पर साँग रूपक होता है।

इसमें प्रस्तुत वस्तु (उपेय) पर अप्रस्तुत वस्तु (उपमान) का आरोप होता है साथ ही उपमेय के अंगों का भी आरोप होता है, यथा –

''अरध सांस समीर सोई, विरहातप धूरि उड़ावत है।
हिय की सरसी जल हीन गई, मनमीन महा अकुलावत है।
सुख के सिंगरे द्रुम सूखि गये, एक चाह की छाँह जुड़ावत है।
विरहा झरि घेरि चहुँ दिसि से, निसवासरि मोहि-जरावत है॥''

प्रस्तुत उदाहरण में विरह पर झर (ग्रीष्म की लपट) का अंगों सहित आरोप है।

(ब) परम्परित रूपक – एक आरोप दूसरे आरोप का कारण होने से परम्परित रूपक अलंकार होता है – **''हृदय-गगन में रूप-चन्द्रिका बन कर उतरों मेरे''** प्रस्तुत उदाहरण में दो रूपक हैं – एक 'हृदय' और 'गगन', दूसरा 'रूप' और 'चन्द्रिका' का। यहाँ रूप को चन्द्रमा इसलिये कहा है क्योंकि पहले हृदय को गगन कह दिया गया है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

(स) निरंग रूपक – अंगों से रहित केवल उपमान का उपमेय पर आरोप होने से निरंग रूपक होता है –

''गीत हिंडोला नित्य सजाऊँ, आकर रूपसी झूलो।
अधरों में मुस्कान बनो तुम, आकर जाना भूलो।''

प्रस्तुत उदाहरण में गीत पर हिंडोलना का अंग रहित आरोप होने से निरंग रूपक अलंकार है।

9.8.3 उत्प्रेक्षा अलंकार

जहाँ पर उपमेय (प्रस्तुत) में उपमान (अप्रस्तुत) की संभावना व्यक्त की जाती हो तथा जिसे स्पष्ट करने के लिये मानो, मनहु, जानो, जनहु, कीधौ आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है वहाँ पर उत्प्रेक्षा अलंकार होता है, यथा –

कौतुक विलोकि लोकपाल, हरिहर विधि,
लोचनति चका चौंधि चित्तनि खमार सो।
बल कीधौ बीर रस, धीर कै साहस के,
तुलसी सरीर धरे सबनिको सार सो।

प्रस्तुत उदाहरण में महावीर हनुमान के बल को वीररस में संभावित किया है।

''सिय मुख मानहु मधुर मयंक।''

पंक्ति में सीताजी का मुख के सौन्दर्य में चाँद के मधुर सौन्दर्य की संभावना व्यक्त की है।

उत्प्रेक्षा

वस्तुत्प्रेक्षा हेतुत्प्रेक्षा फलोत्प्रेक्षा

(क) वस्तुप्रेक्षा – उपमेय में 'उपमान' की संभावना अर्थात् एक वस्तु में दूसरी मानने को वस्तुत्प्रेक्षा कहते हैं –

''प्राण प्रिया मुख जगमगाती, नीले अंचल चीर।
मनहुँ कलानिधि झलमलै, कालिन्दी के नीर।''

प्रस्तुत उदाहरण में मुख को कलानिधि अर्थात् चन्द्रमा तथा नीले अंचल में कालिन्दी अर्थात् यमुना नदी की संभावना है।

(ख) हेतुत्प्रेक्षा – अहेतु में हेतु अर्थात् अकारण को कारण मानकर सम्भावना करने को हेतुत्प्रेक्षा कहते हैं –

''मनौ कठिन आँगन चली, ताते राते पाँय।''

सुकुमारियों की पगतलियाँ स्वाभाविक ही लालिमायुक्त होती हैं परन्तु कठोर आँगन पर चलने के कारण को संभावित किया है।

(ग) फलोत्प्रेक्षा – अफल में फल की संभावना की जाने को फलोत्प्रेक्षा कहा जाता है –

''मनहु विविध तन अच्छ छवि, स्वच्छ राखिवे काज।
दृग-पग पोंछ न को किये, भूषण पायंदाज।''

9.8.4 अतिशयोक्ति अलंकार

जब किसी उपमेय (प्रस्तुत) का वर्णन इतना अधिक बढ़ा-चढ़ा कर दिया जाये कि सीमा या मर्यादा का उल्लंघन हो जाता हो, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है। यह शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है – अतिशय+उक्ति=बढ़ा-चढ़ा कर+कथन। अर्थात् लोक सीमा का उल्लंघन करने वाली उक्ति को अतिशयोक्ति कहते हैं। जैसे –

पत्रा ही तिथि पाइये, बा घर के चहुँ वास।
नित प्रति पून्यो ही रहत, आँगन ओप उचास॥

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रस्तुत उदाहरण में नायिका के रूप सौन्दर्य का वर्णन इतना बढ़ा-चढ़ा कर किया गया है कि वह अपने आप में अतिशय है, क्योंकि संसार में ऐसी सुन्दरी कोई भी नहीं मिलेगी कि जिस घर में वह रहती है वहाँ आस-पास पूर्णिमा के दिवस जैसी प्रकाशमय छटा बनी रहे और तिथि देखने के लिये पंचांग का सहारा लेना पड़े। इसी प्रकार –

''हनुमान की पूँछ में, लग न पाई आग।
लंका सारी जल गई, गये निशाचर भाग॥''

प्रस्तुत उदाहरण में लंकादहन के समय हनुमान की पूँछ आग से बिल्कुल प्रभावित नहीं होती है, जबकि सम्पूर्ण स्वर्ण नगरी जलकर राख हो जाती है। यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण है।

अतिशयोक्ति अलंकार के भेद –

अतिशयोक्ति

रूपकातिशयोक्ति | भेदकातिशयोक्ति | सम्बन्धातिशयोक्ति | चपलातिशयोक्ति | असम्बंधातिशयोक्ति | अक्रमातिशयोक्ति

1. रूपकातिशयोक्ति – जहाँ पर उपमेय का लोप कर दिया जाये और उपमान के कथन द्वारा ही उपमेय का बोध कराया जाये, जैसे – ''कनक-लता पर चन्द्रमा, धरे धनुष द्वै बाण।'' प्रस्तुत उदाहरण में शरीर, मुख, भृकुटि, कटाक्ष आदि उपमेयों का लोप करके लता, चन्द्रमा, धनुषबाण इन उपमानों के द्वारा ही नायिका के अंगों का बोध कराने में ही रूपकातिशयोक्ति अलंकार बन जाता है।

2. भेदकातिशयोक्ति – जहाँ पर उपमेय में उपमान से कोई अनोखापन या भेद न हो, किन्तु अन्य शब्दों के द्वारा भेद स्पष्ट किया जाये, जैसे –

''अनियारे दीरघ दृगनि, किती न तरुनि समान।
वह चितवन औरे कछु, जोहि बस होत सुजान॥''

प्रस्तुत उदाहरण में 'औरे' शब्द के द्वारा उपमान को उपमेय से भिन्न कहा जाने के कारण भेदकातिशयोक्ति है।

3. सम्बन्धकातिशयोक्ति – दो वस्तुओं में असम्बन्ध होने पर भी सम्बन्ध का होना वर्णन होने पर 'सम्बन्धातिशयोक्ति' होती है, जैसे –

''फहरहि महलन उच्च निशाना।
जिन महँ अटकहिं विबुध विमाना॥''

प्रस्तुत उदाहरण में झण्डे और विमानों में किसी प्रकार का सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध का होना वर्णित किया है, अत: यहाँ पर 'सम्बन्धकातिशयोक्ति' है।

4. असम्बन्धातिशयोक्ति – दो वस्तुओं में सम्बन्ध होने पर भी असम्बन्ध दर्शाया जाये वहाँ 'असम्बन्धातिशयोक्ति' होती है, जैसे –

''उरोज फल तेरे अली, क्षण क्षण अधिक है बढ रहे।
युग बाहु की लतिकान में, ऐ री न ये समा रहे॥''

नायिका के स्तनों का दोनों भुजाओं के मध्य भाग में होने का प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, किन्तु उन स्तनों का अति विस्तार दिखाकर असम्बन्ध प्रस्तुत किया है अत: यहाँ पर 'असम्बंधातिशयोक्ति' अलंकार है।

5. चपलातिशयोक्ति अलंकार – यदि कारण के पश्चात् तुरन्त ही कार्य हो रहा हो वहाँ पर चपलातिशयोक्ति अलंकार है, यथा –

''तब शिव तीसर नैन उधारा।
देखत काम भयहु जरि धारा॥''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रस्तुत उदाहरण में शिव के नेत्र खुलते ही कामदेव नष्ट हो जाता है।

6. अक्रमातिशयोक्ति – जहाँ पर कारण और कार्य का एक साथ होना दर्शाया जाये वहाँ पर 'अक्रमातिशयोक्ति' अलंकार होता है, यथा –

''प्रिय परदेस प्रयांन संग, तजे विरहिणी प्राण।''

प्रस्तुत उदाहरण में प्रिय का ''परदेस प्रयान'' और विरहिणी का प्राण त्याग करना एक साथ दर्शाया है।

7. अत्यन्ताशियोक्ति – यदि कारण से पहले ही कार्य होने वर्णन किया जाये, यथा –

''विरहिणी के लोचनों से, बह न पाई अश्रुधारा।
गृह गाँव परिजन बह गये, जलमय हुआ संसार सारा॥''

प्रस्तुत उदाहरण में अश्रुधारा प्रवाहित होने से पूर्व ही घर, गाँव व परिजनों का बह जाना तथा सम्पूर्ण संसार का जलमग्न हो जाना आदि कार्य का वर्णन होने से यहाँ अत्यन्ताशयोक्ति अलंकार है।

9.8.5 अपह्नुति अलंकार

जहाँ पर उपमेय का निषेध कर उपमान की स्थापना की जाये वहाँ पर 'अपह्नुति' अलंकार होता है। अथवा जहाँ पर किसी वस्तु अथवा व्यक्ति (उपमेय) के वास्तविक रूप को छुपा लिया जाये और उसका अवास्तविक रूप प्रकट कर दिया जाये वहाँ पर अपह्नुति अलंकार होता है –

''उम्र अभी कुल तेईस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी।
हमको जीवन देने आई, बन स्वतंत्रता नारी थी॥''

प्रस्तुत उदाहरण में रानी लक्ष्मीबाई के मानवीय रूप को छुपाकर उसके अवतारी रूप को प्रस्तुत किया है, अतः यहाँ 'अपह्नुति' अलंकार है। इसी प्रकार –

''शीतलता शशि में नहीं, शीतलता मुख चन्द्र।''

यहाँ पर चन्द्रमा में शीतलता का निषेध करके मुख चन्द्र में उसकी स्थापना की गई है।

अपह्नुति अलंकार के भेद –

अपह्नुति अलंकार

शुद्धापह्नुति | हेत्वापह्नुति | पर्यस्तापह्नुति | छेकापह्नुति | कैतवापह्नुति | भ्रान्तापह्नुति

9.8.6 भ्रान्तिमान अलंकार

सादृश के कारण उपमेय में उपमान का भ्रम होने से भ्रान्तिमान अलंकार होता है।

भ्रान्ति से अभिप्रायः एक वस्तु को देखकर उसके भ्रम में किसी अन्य वस्तु को समझ लेना है। इसमें किसी वस्तु में उसके सादृश अन्य वस्तु का कवि की प्रतिभा द्वारा स्थापित चमत्कारी भ्रम होता है। इसमें सादृश वस्तु के कारण जो वस्तु नहीं है, उसका निश्चय सा हो जाता है अर्थात् उसके प्रति भ्रम हो जाता है। अतः कह सकते हैं कि सादृश को देखकर अदृश के प्रति चित्त में स्थिर भाव अर्थात् भ्रम हो जाये उसे 'भ्रान्तिमान' अलंकार कहते हैं।

''पाँव महावर देन को नाइन बैठी आय।
पुनि-पुनि जानि महावरी, एडी मीडत जाय।''

प्रस्तुत उदाहरण में नायिका के पैरों की स्वाभाविक लालिमा को देखकर नाइन को एडी में महावरी का भ्रम हो जाता है। इसी प्रकार –

''नाक का मोती अधर की कान्ति से, बीज दाडिम का समझ कर भ्रान्ति से।
देख कर सहसा हुआ शुक मौन है, सोचता है अपर शुक यह कौन है॥''

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रस्तुत उदाहरण में उर्मिला के नाक के मोती को देखकर तोता भ्रमित हो जाता है। अत: यहाँ पर 'भ्रान्तिमान' अलंकार है।

9.8.7 व्यतिरेक अलंकार

जब उपमेय में उपमान से अधिक गुण कथन हो वहाँ पर 'व्यतिरेक' अलंकार होता है।

उपमा में उपमेय (प्रस्तुत) और उपमान (अप्रस्तुत) में समान धर्म के कारण समानता का कथन होता है। लेकिन व्यतिरेक में उपमेय को उपमान से अधिक उत्कर्ष वाला दिखाया जाता है, जैसे –

''चन्द्र नहीं कर सकता क्षण भी, प्रिया बदन की समता।
चन्द्र प्रकाशित होता निशि में, यह दिन-रात विकसता॥
चन्द्र कलंकी जग में विश्रुत, विरहिणी को दु:खकारी।
निष्कलंक मम प्रिया बदन, मृदु बोलनि में सुखकारी॥''

प्रस्तुत उदाहरण में उपमान (चन्द्रमा) से उपमेय (प्रिया मुख) के अधिक उत्कर्ष का वर्णन किया गया है। चन्द्रमा तो केवल रात्री में ही प्रकाशित होता है, किन्तु प्रिया मुख तो दिन-रात प्रकाशित रहता है। चन्द्रमा कलंकी है तथा विरहिणी को दु:ख देने वाला है, किन्तु प्रिया मुख निष्कलंक और मृदु वचनों से सुख देने वाला है।

इसी प्रकार –

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन पर कहा न जाना॥
निज परताप द्रवै नवनीता। पर दु:ख द्रवै सुसंत पुनीता॥

प्रस्तुत चौपाई में उपमान (नवनीत) से उपमेय (संत हृदय) के उत्कर्ष का वर्णन किया गया है, अत: यहाँ पर 'व्यतिरेक' अलंकार है।

9.8.8 संदेह अलंकार

सादृश्य के कारण होने वाला, जिनमें परस्पर विरोध भासित होता हो, ऐसी समान बल वाली अनेक कोटियों का अवगाहन करने वाला ज्ञान सुन्दर होने पर संदेह अलंकार बन जाता है। अत: सादृश्य के कारण होने वाला और निश्चय तथा संभावना इन दोनों में से किसी एक के रूप में न होने वाला बोध संदेह अलंकार कहलाता है। सुस्पष्ट शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि उपमेय को देखकर उपमान के प्रति चित्त में अस्थिरता अन्त तक बनी रहे वह 'संदेह' अलंकार होता है, जैसे –

''सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है,
नारी ही की सारी है कि सारी ही की नारी है।''

प्रस्तुत उदाहरण में हस्तिनापुर के युवराज दुर्योधन के आदेश पर कौरवपुत्रों के द्वारा पांचाली के वस्त्र हरण के समय उनकी साड़ी का अन्त न होते देखकर यह संदेह उत्पन्न हो गया था अत: यहाँ संदेह अलंकार है। इसी प्रकार –

तारे आसमान के हैं आये मेहमान बनि। केशों में निशा ने मुक्तावलि सजाई है॥

अथवा

बिखर गयौ है चूर-चूर ह्वै, कै चन्द्र किंधौं
यहाँ तो घर-घर दीप मालिका सुहाई है।

आदि में संदेह अलंकार है।

9.8.9 दृष्टान्त अलंकार

उपमेय, उपमान और साधारण धर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव कथन होने पर 'दृष्टान्त' अलंकार होता है।

इस अलंकार में पहले एक बात कहकर फिर उससे मिलती-जुलती दूसरी बात उदाहरण रूप में कही जाती है। इसमें दो वाक्य होते हैं – एक उपमेय वाक्य और दूसरा उपमान वाक्य होता है, अर्थात् दोनों में भिन्न-भिन्न धर्म होते हुए भी बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव का होना अनिवार्य है, जैसे –

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

''परी प्रेम नन्द लाल कै, हमहिं न भावत जोग।
मधुप राजपद पाइ कै, भींख न मागत लोग॥''

प्रस्तुत पंक्ति में एक बात कि ''हम नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण के प्रेम में जीवित हैं, हमें अब आपका योग अच्छा नहीं लगता है'' और दूसरी बात उसी से मिलती-जुलती कही गयी है – ''हे उद्धव ! राजा का पद पाने के बाद लोग भिक्षा नहीं माँगते हैं।'' अत: यहाँ दृष्टान्त अलंकार है।

9.8.10 अन्योक्ति अलंकार

अन्य+उक्ति – अर्थात् दूसरों पर ढाल कर कहा गया कथन जब कोई वाक्य सीधे किसी व्यक्ति से न कहकर किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति विशेष पर ढाल कर कही जाये वहाँ पर अन्योक्ति अलंकार होता है, जैसे –

नहिं पराग नहीं मधुर मधु, नहिं विकास ऐहिं काल।
अली कली ही सों बन्ध्यो, आगे कौन हवाल॥

प्रस्तुत दोहे में दरबारी कवि बिहारी ने महाराज जयसिंह से कली व भौंरे के माध्यम से उन्हें अपने कर्तव्य का बोध कराया है।

''माली आवति देखि कै, कलियाँ करी पुकारि।
फूले-फूले चुन लिये, काल्हि हमारी बारि॥''
''चलती चक्की देखि के हिया कबीरा रोय।
दौ पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय॥''

प्रस्तुत उदाहरणों में क्रमश: जीवन की नश्वरता और सांसारिक नश्वरता को कबीर ने बहुत ही रोचक ढंग से व्यक्त किया है, अत: यहाँ पर अन्योक्ति अलंकार है।

9.8.11 दीपक अलंकार

जहाँ पर प्रस्तुत (उपमेय) और अप्रस्तुत (उपमान) एक ही धर्म कथन हो तो वहाँ पर दीपक अलंकार होता है, जैसे –

देखे ते मन ना भरे, तन की मिटे न भूख।
बिन चाखे रस ना मिले, आम, कामिनी, ऊख॥

प्रस्तुत उदाहरण में 'कामिनी' और अप्रस्तुत 'आम और ऊख' का 'बिन चाखे रस न मिले' एक ही धर्म कहा जाने के कारण 'दीपक' अलंकार है।

9.9 शब्द-शक्ति

वाक्यों में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ जानने के लिये जिस वृत्ति को काम में लिया जाता है, उसे शब्द-शक्ति कहते हैं। साहित्य के प्रत्येक शब्द में अनेक भाव समाहित होते हैं और सभी भाव शब्द के तज्जन्य अर्थ पर निर्भर करते हैं। अर्थों व भावों का समायोजन किसी भी शब्द की शक्ति का रूप होता है। अत: बुद्धि का वह व्यापार या बुद्धि की वह क्रिया, जिसके द्वारा किसी शब्द का निश्चयार्थक बोध हो, उसे शब्द-शक्ति कहते हैं। काव्याचार्यों के अनुसार सभी शब्दों को उनके अर्थ व भावों की दृष्टि से तीन भागों में विभाजित किया है – 1. ऐसे शब्द, जो वाच्य दिशा बोध कराते हैं वे वाचक शब्द होते हैं, 2. जो लक्ष्य बोध कराते हैं वे लक्षक कहलाते हैं तथा 3. जिनसे व्यंग्य भाव की अभिव्यक्ति होती है, वे शब्द व्यंग्यार्थ कहलाते हैं। अत: वाचक, लक्षक और व्यंजक ये तीनों शब्दों के प्रकार माने गये हैं। इन्हें क्रमश: वाच्यार्थ, व्यंग्यार्थ और लक्ष्यार्थ कहा जाता है। इन अर्थों का ज्ञान कराने वाली तीन शक्तियाँ हैं, जिन्हें हम अभिधा, लक्षणा और व्यंजना कहते हैं।

9.9.1 अभिधा शक्ति

यह साक्षात् सांकेतिक अर्थ (मुख्यार्थ) का बोध कराने वाली शक्ति है। इसे प्रथम या मुख्य शब्द-शक्ति माना गया है। पूर्व संचित ज्ञान अथवा शब्द कोष के आधार पर शब्द को सुनते ही जिस अर्थ का बोध हो, उसे हम 'वाच्यार्थ' कहते हैं। अभिधा शक्ति से जिन शब्दों का अर्थ-बोध होता है, ये तीन प्रकार के होते हैं – रूढ़, यौगिक और योग-रूढ़। अभिधा से निकलने वाले अर्थ को अभिधेयार्थ,

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

मुख्यार्थ अथवा वाच्यार्थ भी कहते हैं और उक्त अर्थ को व्यक्त करने वाले शब्द को वाचक कहते हैं, इससे अनेकार्थवाची शब्दों के अर्थ का निर्णय किया जाता है।

उदाहरण – ''वहाँ पर गणेश बैठा हुआ है।'' इस वाक्य का सीधा-सादा अर्थ बोध हो रहा है कि वहाँ पर गणेश नाम का व्यक्ति बैठा हुआ है, किंतु यदि यह कहा जाये कि ''उसका बुद्धि परीक्षण क्यों करते हो वह तो स्वयं गणेश है।'' इस वाक्य में हम गणेश शब्द का अर्थ सामान्य व्यक्ति के नाम से नहीं लगायेंगे अपितु बुद्धि विधाता श्रीगणेश जी की तीक्ष्ण बुद्धि से लगायेंगे। जो कि उसका मुख्यार्थ न होकर लक्ष्यार्थ माना जाएगा। इस प्रकार हम अभिधा शक्ति से शब्द का अर्थ वाच्यार्थ ही ग्रहण करेंगे।

9.9.2 लक्षणा शक्ति

यदि किसी शब्द के वाच्यार्थ से असली अर्थ की प्राप्ति नहीं हो तो उसी से सम्बंधित दूसरे अर्थ को ग्रहण किया जाता है, इसे हम लक्ष्यार्थ कहते हैं। **''लक्ष्यार्थ को बताने वाली शब्द शक्ति को लक्षणा शक्ति कहते हैं।''** लक्षणा में मुख्यार्थ का बोध होता है और उससे सम्बंधित अन्य अर्थ लक्ष्यार्थ या लाक्षणिक लिया जायेगा।

लक्षणा शक्ति शब्द की रूढ़ि या प्रयोजन के कारण होती है, इस प्रकार लक्षणा शक्ति के तीन बीज होते हैं – 1. मुख्यार्थ का बोध, 2. मुख्यार्थ का लक्ष्यार्थ से सम्बन्ध और 3. रूढ़ि या प्रयोजन में से कोई एक कारण –

''फली सकल मन-कामना, लूट्यो अगनित चैन।
आहु अंचे हरिरूप सखि, भये प्रफुल्लित नैन॥''

प्रस्तुत उदाहरण में 'मनोकामना' कोई फलीभूत होने वाला वृक्ष नहीं है और 'चैन' कोई धन-दौलत का खजाना नहीं है कि जिन्हें लूटा जा सके। इसी प्रकार कृष्ण का माधुरी रूप कोई 'पेय पदार्थ' नहीं है कि जिसका आचमन किया जा सके। इस प्रकार हम सबका अर्थ लक्ष्यार्थ रूप में ग्रहण करते हैं। लक्षणा के दो प्रमुख भेद होते हैं – 1. रूढ़ि लक्षणा और 2. प्रयोजनवती लक्षणा। इन दोनों मुख्य भेदों के कुछ उपभेद हैं जिनकी संख्या के संदर्भ में आचार्यों में मतभेद हैं। आचार्य विश्वनाथ से रूढ़ि लक्षणा के सोलह तथा प्रयोजनवती के चौंसठ भेद बताए हैं।

9.9.3 व्यंजना शक्ति

''जिस शब्द शक्ति से व्यंग्यार्थ का बोध होता है, उसे हम व्यंजना शक्ति कहते हैं।'' कभी-कभी वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ के अतिरिक्त किसी विलक्षण या चमत्कारी अर्थ का बोध होता है उसे व्यंग्यार्थ कहा जाता है –

''तू ही सांच द्विजराज है, तेरी कला प्रमान।
तो पर सिब किरपा करी, जान्यो सकल जहान॥''

प्रस्तुत पंक्तियों में द्विजराज, कला और शिव में श्लिष्टार्थ लगाने पर भिन्न अर्थ की प्रतीति होती है। अत: शिवजी ने कवि भूषण की कविता पर प्रसन्न होकर उन्हें दान दिया है। यहाँ पर व्यंग्यार्थ भी व्यक्त हुआ है।

''नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास एहिं काल।
अली कली ही सों बन्ध्यों, आगे कौन हवाल॥''

प्रस्तुत उदाहरण में अली (भौरा) कली (अध खिला फूल) से क्रमश: – रस-रंग का लोभी राजा तथा अविकसित यौवनांगी रानी – व्यंग्यार्थ है जो चमत्कारी अर्थ देता है, अत: यहाँ पर व्यंजना शक्ति है।

9.10 काव्यशास्त्र से सम्बंधित महत्त्वपूर्ण प्रश्न

प्रश्न-1. काव्यशास्त्र का इतिहास स्पष्ट करते हुए इसकी परम्परा पर प्रकाश डालिये।

अथवा

काव्यशास्त्र की परिभाषा देते हुए इसके इतिहास और परम्परा को स्पष्ट कीजिये।

अथवा

काव्यशास्त्र के इतिहास पर एक निबन्ध लिखिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

प्रश्न- 2. काव्य-गुणों की परिभाषा देते हुए इनका काव्य में महत्त्व स्पष्ट कीजिये।

अथवा

काव्य गुण के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए प्रमुख काव्य शास्त्रियों के इस संदर्भ में विचार व्यक्त कीजिये।

प्रश्न- 3. ओज गुण और माधुर्य गुण को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न- 4. काव्यगुण किसे कहते हैं? स्पष्ट करते हुए प्रसाद गुण की व्याख्या कीजिये।

प्रश्न- 5. अलंकार का काव्य में महत्त्व स्पष्ट कीजिये।

अथवा

''अलंकार विहीन काव्य विधवा के समान श्रीविहीन हैं।'' इस कथन को स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न- 6. अलंकार का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसकी परिभाषा प्रस्तुत कीजिये।

अथवा

अलंकार की परिभाषा देते हुए इसका अर्थ प्रतिपादित कीजिये।

प्रश्न- 7. अलंकार के भेद बताइये।

अथवा

शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकारों की समीक्षा कीजिये।

प्रश्न- 8. यमक और श्लेष अलंकार के भेद को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न- 9. उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकार को स्पष्ट करते हुए इनके भेद बताइये।

प्रश्न- 10. उपमा अलंकार के चार अंगों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न- 11. अतिशयोक्ति अलंकार किसे कहा जाता है ? अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके भेद बताइये।

प्रश्न- 12. भ्रान्तिमान अलंकार को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न- 13. निम्नलिखित युग्मों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये—

1. रूपक और उपमा। 2. यमक और अनुप्रास। 3. अपह्नुति और स्वभावोक्ति।

प्रश्न- 14. संदेह और भ्रान्तिमान अलंकार में सोदाहरण अन्तर बताइये।

प्रश्न- 15. अन्योक्ति अलंकार किसे कहते हैं ? स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न- 16. अनुप्रास अलंकार के भेद सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न- 17. ''शब्द-शक्ति'' का अर्थ स्पष्ट करते हुए व्यंजना शब्द-शक्ति को सोदाहरण समझाइये।

प्रश्न- 18. व्यंजना और लक्षणा शब्द-शक्ति को सोदाहरण अन्तर की दृष्टि से स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न- 19. 'अभिधा' शब्द-शक्ति किसे कहते हैं स्पष्ट कीजिये।

प्रश्न- 20. शब्द-शक्ति कितने प्रकार की होती है ? अर्थ व उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिये।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूँ–341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

स्नातक (प्रथम वर्ष)

विषय : हिन्दी साहित्य

प्रथम पत्र :

भक्तिकालीन काव्य साहित्य

संवर्ग

संवर्ग–1	:	हिन्दी काव्य काल
संवर्ग–2	:	कबीर एवं जायसी
संवर्ग–3	:	सूरदास एवं तुलसी
संवर्ग–4	:	रसखान एवं मीरांबाई
संवर्ग–5	:	काव्य का इतिहास

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

विशेषज्ञ समिति

1. **प्रो. नन्दलाल कल्ला**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राज.)

2. **प्रो. वेदप्रकाश शर्मा**
   नूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   महाराजा गंगासिंह विश्वविद्यालय, बीकानेर (राज)

3. **प्रो. जगमालसिंह**
   पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग
   मेघालय विश्वविद्यालय, मेघालय (आसाम)

4. **डॉ. ममता खाण्डल**
   सहायक आचार्या, हिन्दी विभाग,
   राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय, किशनगढ, (राज.)

5. **प्रो. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी**
   निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय
   जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज.)

6. **प्रो. समणी ऋजुप्रज्ञा**
   वेभागाध्यक्ष एवं आचार्या, जैन विश्वभारती संस्थान,
   लाडनूँ (राज.)

लेखक
कैलाश भट्ट 'आकाश'

संपादक
प्रोफेसर नन्दलाल कल्ला

कापीराइट
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

नवीन संस्करण : 2017

मुद्रित प्रतियां : 2000

प्रकाशक
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं–341306 (राज.)

Printed at
M/S Nalanda Offsets, Jaipur

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अनुक्रमणिका

अध्याय	पृष्ठ संख्या
भूमिका	**1-10**
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा हिन्दी काव्यकाल का विभाजन– 1. आदिकाल 2. पूर्वमध्यकाल 3. उत्तर मध्यकाल 4. आधुनिककाल	
भक्तिकालीन काव्य का इतिहास	**11-28**
प्रेरक परिस्थितियाँ, काव्यधाराएँ, प्रवृत्तियाँ, विशेषताएँ इत्यादि।	
1. कबीर	**29-53**
कवि-परिचय, पद-व्याख्याएँ, काव्यगत विशेषताएँ, समाज सुधारक रूप, भक्ति भावना तथा प्रश्नोत्तर	
2. जायसी	**54-76**
कवि-परिचय, सिंहलद्वीप वर्णन-खण्ड टीका सहित, काव्यगत विशेषताएँ, विरह-वर्णन, भक्ति-भावना तथा प्रश्नोत्तर	
3. सूरदास	**77-105**
कवि-परिचय, पद-व्याख्याएँ, भक्तिभावनाएँ, काव्य सौन्दर्य तथा प्रश्नोत्तर	
4. तुलसीदास	**106-129**
कवि-परिचय, पद-व्याख्याएँ, काव्य सौन्दर्य, भक्ति भावना तथा प्रश्नोत्तर	
5. रसखान	**130-160**
कवि-परिचय, पद-व्याख्याएँ, काव्यगत विशेषताएँ तथा प्रश्नोत्तर	
6. मीरांबाई	**161-186**
कवयित्री-परिचय, पद-व्याख्याएँ, काव्यगत विशेषताएं, भक्ति भावना तथा प्रश्नोत्तर	
7. काव्य का इतिहास	**187-204**
काव्य का अर्थ, परिभाषाएँ, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, काव्यगुण, अलंकार तथा शब्द-शक्तियाँ	

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun